साहित्य अकादेमी की हिंदी त्रैमासिक किताब

समकालीन भारतीय साहित्य

32

वर्ष: ८ अंक: ३२ अप्रैल-जून १९८८

साहित्य अकादेमी

का

महत्त्वपूर्ण प्रकाशन

हिन्दी कहानी-संग्रह

हिन्दी कहानी ने अपनी विकास यात्रा में अनेक पड़ाव लाँघे हैं। एक ओर वह भारतीय साहित्य की मानवतावादी परम्परा से जुड़ी रही है, दूसरी ओर वह आज के जीवन से साक्षात् करती हुई आधुनिक भावबोध को आत्मसात करती रही है। सबसे बड़ी बात है कि वह जीवन से गहरे जुड़ती चली गयी है। यह तो नहीं कहा जा सकता कि सन् सैंतालीस के बाद हिन्दी कहानी ने नया रुख अपनाया। साहित्य में ऐसी रेखाएँ नहीं खींची जा सकतीं। लेकिन इतना जरूर कह सकते हैं कि जहाँ पहले की प्रवृत्तियों का आग्रह धीरे-धीरे शिथिल पड़ता गया, वहाँ नयी-नयी प्रवृत्तियाँ सामने आने लगीं और धीरे धीरे कहानी अपनी विकास प्रक्रिया में नयी ज़मीन तोड़ने लगी और उसके साथ नये-नये आयाम जुड़ने लगे।

प्रस्तुत संग्रह में स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी कथाकारों की प्रतिनिधि कहानियों का चयन किया है प्रतिष्ठित कथाकार भीष्म साहनी ने। उनकी लम्बी भूमिका के साथ संकलित कथाकार हैं : **फणीश्वरनाथ रेणु, मोहन राकेश, अमृतलाल नागर, हरिशंकर परसाई, अमृतराय, अमरकान्त, भीष्म साहनी, कमलेश्वर, राजेन्द्र यादव, रामकुमार, मार्कण्डेय, शेखर जोशी, कृष्णबलदेव वैद, शैलेश मटियानी, शिवप्रसाद सिंह, कृष्णा सोबती, निर्मल वर्मा, मन्नू भंडारी, उषा प्रियंवदा, गिरिराज किशोर, हृदयेश, शानी, रामदरश मिश्र, ज्ञानरंजन, मुद्राराक्षस, रमाकांत, गोविन्द मिश्र, काशीनाथ सिंह, असग़र वजाहत और मिथिलेश्वर।**

पचास रुपये

साहित्य अकादेमी की हिन्दी त्रैमासिक किताब

सम्पादक

शानी

संपर्क : साहित्य अकादेमी,
रवीन्द्र भवन, ३५, फ़ीरोजशाह रोड,
नई दिल्ली-११०००१
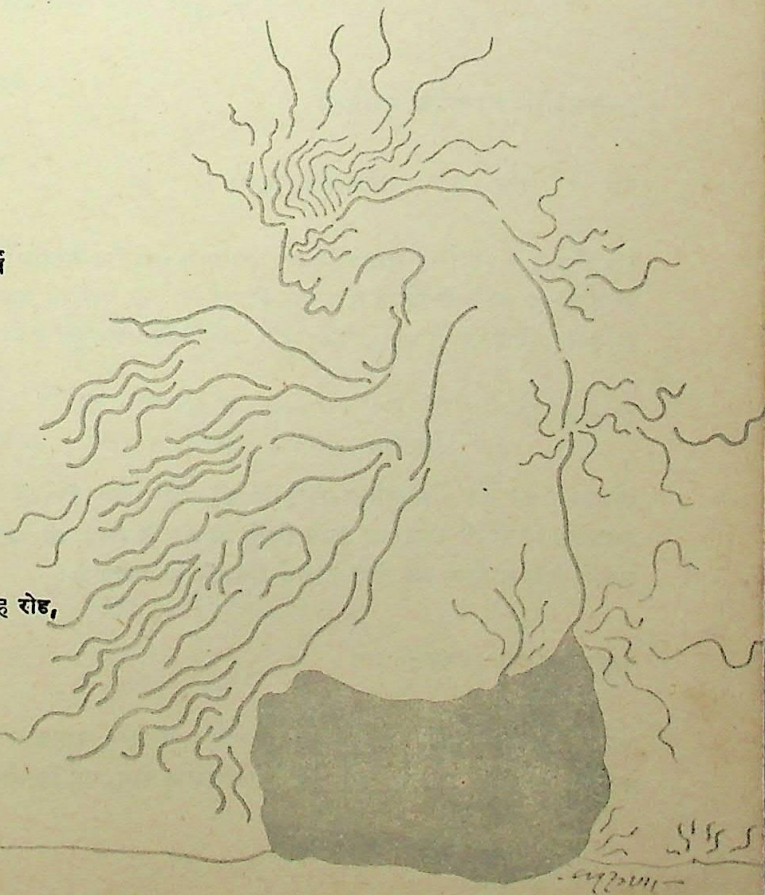
समकालीन भारतीय साहित्य

वर्ष : ८ अंक : ३२ अप्रैल-जून १९८८

इस पत्रिका में प्रकाशित सामग्री मूलतः विभिन्न भारतीय भाषाओं के समसामयिक साहित्य का प्रतिनिधित्व करने के उद्देश्य से प्रस्तुत की गई है। यह साहित्य अकादेमी की तथा सम्पादक की नीतियों व विचारों को प्रतिबिम्बित करे—यह आवश्यक नहीं है।

आवरण सज्जा : करुणानिधान

एक प्रति : पाँच रुपये, वार्षिक : सोलह रुपये। वार्षिक ग्राहक बनने के लिए शुल्क सचिव, **साहित्य अकादेमी, रवीन्द्र भवन, ३५, फ़ीरोजशाह रोड, नई दिल्ली-११०००१** के नाम भेजें।

परिचय / ४ **सम्पादकीय** / ७

कहानियाँ : गुज़रे हुए की यादें (असमिया) **शीलभद्र** ६ / मायावी हिरन (ओड़िया) **जगन्नाथ प्रसाद दास** २४ / माखन का घड़ा (कन्नड़) **सुनंदा बेलगाँवकर** ३५ / फ़िलहाल रात है (कश्मीरी) **हरिकृष्ण कौल** ४६ / टूटते पंख (तमिष़) **अम्बइ** ५० / प्रवासी पौत्र (तमिष़) **ना. पार्थसारथी** ७० / इस दरख़्त को साक्षी मानकर (तमिष़) **आदबन सुन्दरम** ७५ / पराजय (तमिष़) **सुब्रह्मण्य राजू** ८१ / अंतिम यात्रा (तमिष़) **वासन्ती** ८७ / मुखौटा (तमिष़) **बाल कुमारन** ९३ / धन बहादुर की लाठी (नेपाली) **समीरण छेत्री 'प्रियदर्शी'** १०१ / निर्णय (सिन्धी) **इन्द्रा वासवाणी** १०५ / रेगिस्तान का जहाज़ (हिन्दी) **नरेन्द्र नागदेव** १११

कविताएँ :

तमिष़

देवमगल १२१ / **देवकी** १२३ / **चेरन** १२६ / **आत्मानाम** १३१ / **विक्रमादित्यन** १३४ / **कलाप्रिया** १३७ / **पाप्रिया** / १४०

तेलुगु

इस्माइल १४४ / **देवीप्रिय** / १४५

संस्कृत

केशवचन्द्र दास / १४७

हिन्दी

प्रणवकुमार वन्द्योपाध्याय / १५२

नाटक : कथा नंदन की (तमिष़) **इन्दिरा पार्थसारथी** / १५७

लेख : तमिष़ उपन्यास-साहित्य : एक सर्वेक्षण / **डॉ. एम. शेषन्** १९१; नई तमिष़ कहानी / **अशोक मित्रन** २०४; आधुनिक तमिष़ कविता / **का. ना. सुब्रह्मण्यम** २०६

समीक्षा :

उम्मीद नहीं छोड़ती कविताएँ / **परमानंद श्रीवास्तव** २१२

लेखक परिचय

शीलभद्र : जन्म १९२४। मूल नाम रेवती मोहन दत्त चौधुरी। असमिया के महत्वपूर्ण रचनाकार। अपने उपन्यासों और कहानियों में वर्तमान असमिया समाज का यथार्थवादी चित्रण करने में सिद्धहस्त। इन्होंने मध्यवर्गीय आम आदमी की महत्वाकाँक्षाओं, निराशाओं को सुन्दर ढँग से अपनी कहानियों और उपन्यासों में अभिव्यक्ति दी है।

जगन्नाथ प्रसाद दास : जन्म १९३६। ओड़िया के कवि एवं नाटककार। प्रथम काव्य संकलन 'प्रथम-पुरुष' १९७१ में प्रकाशित। 'अन्थ सबु मृत्यु', 'निर्जनता', अन्य काव्य संकलन, तथा नाटक 'सूर्यास्त', 'सबा शेष लोक और 'असंगत नाटक' प्रकाशित। आकाशवाणी एवं दूरदर्शन से भी प्रसारण। ओड़िया चित्रकला पर शोध कार्य।

सुनंदा बेलगाँवकर : बेलगाँव (कर्नाटक)के सुसंस्कृत महिषी परिवार में जन्म। धारवाड़ में बी. ए. तक शिक्षा प्राप्ति के बाद बम्बई विश्वविद्यालय के पुस्तकालय में कुछ वर्ष नौकरी।

कन्नड़ की महत्वपूर्ण लेखिका। 'कज्जाय' कहानी संग्रह प्रकाशित। फ़िलहाल : सूडान (अफ्रीका) में।

हरिकृष्ण कौल : जन्म २२ जुलाई १९३४, श्रीनगर। कश्मीरी के प्रसिद्ध कहानीकार। हिन्दी में भी समान रूप से लेखन। कई कहानी संग्रह कश्मीरी एवं हिन्दी में प्रकाशित। फ़िलहाल : शिक्षा विभाग से सम्बद्ध।

अम्बइ : जन्म १९४४ कोयम्बटूर में। असली नाम श्रीमती सी. एस. लक्ष्मी। 'अंदिमालै' (उपन्यास), 'नंदिमलै सारलिले' (बाल-उपन्यास) तथा 'सिरगुगला मुरियुम' (कहानी संग्रह) मुख्य पुस्तकें। आधुनिक समाज में बदलते मूल्यों के सन्दर्भ में युवतियों की समस्याओं पर गहरी पकड़।

ना. पार्थसारथी : जन्म १८ दिसम्बर १९३२। शिक्षा, एम. ए., डी. लिट.। साहित्य की सभी विधाओं में लेखन। तमिष् की प्रसिद्ध 'कल्कि' पत्रिका का चार वर्ष एवं 'दिनमणि कदिर' पत्रिका का कुछ वर्षों तक सम्पादन। अब तक चालीस उपन्यास, पच्चीस कथा संग्रह, पन्द्रह निबंध संग्रह, तीन यात्रा संस्मरण, दो कविता संग्रह और एक नाटक प्रकाशित। रचनाएँ अनेक देशी एवं विदेशी भाषाओं में अनूदित। साहित्य अकादेमी द्वारा पुरस्कृत। १३ दिसम्बर ८७ में दुखद निधन।

आदवन सुन्दरम् : जन्म २१ मार्च १९४२। पूरा नाम के. सुन्दरम्। तमिष् के उपन्यासकार एवं कहानीकार। अब तक सात पुस्तकें प्रकाशित। 'एन पेयर रामसेषन' चर्चित उपन्यास। कथा संग्रह 'इरवुक्कु मुन मालै वरूम' के लिए साहित्य अकादेमी पुरस्कार। चार कथा संग्रह प्रकाशित। पिछले वर्ष एक दुर्घटना में दुखद निधन।

सुब्रह्मण्य राजू : आठवें दशक के सशक्त हस्ताक्षर। कहानियाँ पर्याप्त चर्चित और पाठकों के बीच सराही गईं। 'इन्ड्रनिजम' कथा संग्रह विशेष उल्लेखनीय। अभी कुछ माह पहले सड़क दुर्घटना में दुखद निधन।

वासन्ती : तमिष् की प्रसिद्ध लेखिका। तमाम शीर्षस्थ कथा-पत्रिकाओं में रचनाएँ प्रकाशित। पंजाब पर लिखा उपन्यास 'मौन जुयल' तथा श्रीलंका पर लिखा गया उपन्यास पर्याप्त चर्चित। मलयालम और हिन्दी में उपन्यास अनूदित। कई उपन्यास, कहानियाँ, यात्रा वृत्तांत प्रकाशित।

बालकुमारन : तमिष् के कथा साहित्य में एक उल्लेखनीय नाम। पाठकों में इनकी कहानियाँ विशेष चर्चित। साहित्यिक एवं लोकप्रिय लेखन के बीच की एक कड़ी के रूप में इनका नाम लिया जा सकता है। कहानियाँ पुरस्कृत। 'चाबी', 'कुमुदम' जैसी मनोरंजन प्रधान पत्रिकाओं में कहानियाँ प्रकाशित, जिन्हें साहित्यिक पाठकों ने भी सराहा है।

समीरण छेत्री 'प्रियदर्शी' : जन्म ६ जून १९३५ माउन्ट हर्मन, नार्थ पोइन्ट, दार्जिलिंग। शिक्षा : बी. ए. कलकत्ता विश्वविद्यालय। नेपाली के चर्चित लेखक। 'फुटेको मुरली' (कथा संग्रह) 'असफल चित्रकार' (कथा संग्रह), 'अर्को मान्छे' (कथा संग्रह), 'बलिवेदी' (उपन्यास), 'पोखिएको जिन्दगी' (उपन्यास) साहित्यिक पत्रिका 'झिल्का' (१९६९-१९७३) 'हिमाली आभा' (नेपाली दैनिक १९८१) का सम्पादन।

फ़िलहाल : सिलीगुड़ी से प्रकाशित दैनिक नेपाली समाचार पत्र 'हिमालचुली' के सम्पादन विभाग में।

इन्द्रा वासवाणी : वर्तमान सिन्धी लेखिकाओं में महत्वपूर्ण स्थान। सिन्धी की महत्वपूर्ण पत्रिकाओं में रचनाएँ प्रकाशित।

फ़िलहाल : बालिका हायर सैकेन्डरी स्कूल, कच्छ गाँधीधाम में प्राचार्या के पद पर कार्यरत।

नरेन्द्र नागदेव : जन्म, उज्जैन। जे. जे. कॉलेज ऑफ आर्किटेक्चर बम्बई से आर्किटेक्चर में डिग्री। आर्किटेक्चर तथा चित्रकला दोनों क्षेत्रों में कुछ अखिल भारतीय पुरस्कार। दिल्ली में दो एकल प्रदर्शनियाँ। 'तमाशबीन' कहानी संग्रह प्रकाशित। फ़िलहाल : दिल्ली की एक कम्पनी में चीफ़ आर्किटेक्ट।

देवमगल : आठवें दशक में तमिष् साहित्य में तेजी से उभरता नाम। इनका विचार है कि कविताएँ परिवर्तन नहीं ला सकतीं, पर जो संवेदनाएँ उन्हें प्रभावित करती हैं, उनसे कुछ और लोग भी प्रभावित हो सकें तो···? विडम्बनाएँ उन्हें कुरेदती हैं। 'मुरण' उल्लेखनीय संग्रह।

देवकी : कई कविताएँ तमिष् की शीर्षस्थ साहित्यिक पत्रिकाओं में प्रकाशित। 'उन तोषमैयिन इरुप्पिल' चर्चित कविता संग्रह। तमिष् कवयित्रियों में चर्चित नाम।

चेरन : श्रीलका के चर्चित तमिष् कवि। विज्ञान के स्नातक। श्रीलंका स्थित तमिष्-वासियों की आज की मानसिकता चेरन की कविताओं में प्रतिबिम्बित होती है। दो कविता संग्रह 'इरण्डावदु सूर्योदयम' तथा 'यमन' प्रकाशित। एवं प्रशंसित।

आत्मानाम : पिछले आठ वर्षों में कविता लेखन। सौ से भी अधिक कविताएँ प्रकाशित। तमिष् नयी कविता में एक सशक्त नाम। 'कागिदलिल ओरु कोडु' चर्चित संग्रह।

विक्रमादित्यन : अड़तीस वर्षीय सशक्त युवा कवि। स्थायी नौकरी नहीं। मूल नाम नंबीराजन। दो कविता संग्रह प्रकाशित। 'आकाशम नील निरम' ने कविता जगत के मनीषियों को आकर्षित किया। सभी छोटी-बड़ी पत्रिकाओं में कविताएँ प्रकाशित। कई कविताएँ हिन्दी, अंग्रेज़ी में अनूदित। कुछ कहानियाँ भी लिखी हैं।

कलाप्रिया : जन्म १९५१। मूल नाम एस. के. सोमसुन्दरम। 'तीर्थ यात्रै', 'मट्रोंगे', 'एट्टयपुरम' आदि उल्लेखनीय संग्रह हैं। इनकी कविताओं में जीवन का यथार्थ है।

पाप्रिया : आठवें दशक के उत्तरार्द्ध में उभरा एक सशक्त नाम। प्रगतिशीलता या मार्क्सवादी चिंतन से हटकर मानवतावादी स्वस्थ सोच की कविताएँ इन्होंने लिखी हैं। अब तक

तीन संग्रह प्रकाशित। 'वौदिकषै नेसिक्कुम वीणैमष', 'तोट्टिल' उल्लेखनीय संग्रह हैं।

इस्माइल : तेलुगु में अनुभूति के कवि के नाम से विख्यात। तेलुगु की महत्वपूर्ण पत्रिकाओं में रचनाएँ प्रकाशित। पिछली पीढ़ी के ख्यातिप्राप्त कवि। काकीनाडा कॉलेज के भूतपूर्व प्रिंसीपल। फ़िलहाल : काकीनाडा में।

देवीप्रिय : तेलुगु के लोकप्रिय कवि। महत्वपूर्ण पत्र-पत्रिकाओं में रचनाएँ प्रकाशित। फ़िलहाल : तेलुगु दैनिक ज्योति के इतवारीय संपादक।

केशवचन्द्र दास : संस्कृत के चर्चित युवा कवि। फ़िलहाल : श्री जगन्नाथ संस्कृत विश्व-विद्यालय, पुरी में प्राध्यापक।

प्रणवकुमार वन्द्योपाध्याय : १९४७ में जन्म। लेखन की शुरूआत कविता से। कविताओं के अतिरिक्त कहानियाँ, उपन्यास, आत्मकथा, नाटक, रिपोर्ताज, यात्रा-संस्मरण, वैचारिक निबंध आदि का लेखन। समय-समय पर यूरोप और अमेरिका के अनेक देशों की यात्राएँ। लेखन के अलावा चित्रकारी में भी रुचि। फ़िलहाल : दिल्ली में।

इन्दिरा पार्थसारथी : पृष्ठ १५८ पर।

डॉ. एम. शेषन् : तमिष् भाषी हिन्दी लेखक। तमिष् भाषा साहित्य की अमूल्य संपदा से हिन्दी पाठकों को परिचित कराने के लिए सतत प्रयत्नशील। 'तमिष् के शैव संत' पुस्तक प्रकाशित। 'वृंदावनलाल वर्मा एवं कल्कि के ऐतिहासिक उपन्यासों का तुलनात्मक अध्ययन' शोध प्रबन्ध। फ़िलहाल : द्वारकादास गोवर्धनदास वैष्णव कॉलेज मद्रास में प्रोफ़ेसर एवं हिन्दी विभागाध्यक्ष।

अशोक मित्रन् : जन्म : १९३१ तमिषनाडु में। वास्तविक नाम ज. त्यागराजन। तमिष् के प्रसिद्ध उपन्यासकार एवं कहानीकार। अब तक पाँच उपन्यास एवं पाँच कहानी संग्रह प्रकाशित। उल्लेखनीय कृतियाँ : 'पजनेट्टावदु अक्षयकोड्डु' एवं 'करैन्दा निल्लकल'।

का. ना. सुब्रह्मण्यम : जन्म : जनवरी १९१२। तमिषनाडु के वालानगैमान में। तमिष् के बहुमुखी और प्रतिभा सम्पन्न लेखक। छात्र जीवन से ही तमिष् और अंग्रेज़ी में लेखन। अभी तक लगभग सत्तर पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं जिनमें कविताएँ उपन्यास, कहानियाँ और समालोचना सम्मिलित हैं। 'इलक्किय थुक्का या इयक्कम' साहित्य शास्त्र सम्बन्धी समालोचनात्मक निबंधों के संग्रह पर १९८६ में साहित्य अकादेमी द्वारा पुरस्कृत। फ़िलहाल : तमिष् मासिक 'ज्ञानरतम' का संपादन।

परमानन्द श्रीवास्तव : जन्म : १० फरवरी १९३५। प्रसिद्ध आलोचक एवं कवि। 'उजली हँसी के छोर पर' तथा 'अगली शताब्दी के बारे में' (कविता संग्रह) 'कवि कर्म और काव्य भाषा', 'उपन्यास का यथार्थ और रचनात्मक भाषा' तथा 'समकालीन कविता का व्याकरण' (आलोचना) महत्वपूर्ण पुस्तकें हैं। 'शब्द और मनुष्य' तथा 'समकालीन कविता का यथार्थ' (आलोचना) शीघ्र प्रकाशय। फ़िलहाल : गोरखपुर विश्वविद्यालय से एक वर्ष के अवकाश पर पश्चिम बंगाल के बर्दवान विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग में प्रोफ़ेसर।

करुणानिधान : जन्म : १९३२, वाराणसी उ. प्र.। स्वयं शिक्षित, प्रथम ग्रुप शो 'आर्टिस्ट्स कंबाइन' वाराणसी द्वारा आयोजित (१९५८), 'एकल प्रदर्शनी : पैराडाइज़ कैफ़े' वाराणसी (१९६७), युगल प्रदर्शनी : मैक्स गैलरी, काठमांडू (नेपाल १९६८) 'शिल्पी चक्र' दिल्ली द्वारा आयोजित चार कलाकारों की प्रदर्शनी (१९६९), एकल प्रदर्शनी : भीमताल नैनीताल के ग्रामवासियों के लिए (१९७७) फ़िलहाल : दिल्ली में फ़्रीलांसिंग।
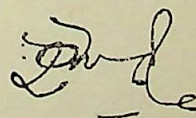
'समकालीन भारतीय साहित्य' के पिछले दो अंक क्रमशः बांगला और मराठी पर केन्द्रित थे। वे लगभग विशेषांक के रूप में निकले थे और उनके पीछे दृष्टि यह थी कि हिन्दी पाठकों को उन भाषाओं के समकालीन रचनात्मक तेवर का सीधे-सीधे परिचय मिल सके। अपनी तमाम सीमाओं के बावजूद उन अंकों को पाठकों ने पसंद किया, यह हमारे लिये उत्साह की बात है।

वर्तमान अंक तमिष् भाषा पर केन्द्रित है। इसमें ६ कहानियाँ, १५ कविताएँ, १ सम्पूर्ण नाटक और अलग-अलग विधाओं का जायज़ा लेने वाले ३ लेख दिये जा रहे हैं ताकि तमिष् भाषा में रुचि रखने वाले हिन्दी पाठकों को इसके समृद्ध साहित्य की एक बानगी मिल सके। निश्चय ही इस पत्रिका के छोटे से कलेवर में इतनी बड़ी भाषा के कोरमकोर प्रतिनिधित्व का दावा करना तो मुश्किल है लेकिन तो भी हमारी कोशिश यही रही है। अगर इसमें कुछ कमी रह गयी हो तो उसके लिये हम तमिष् भाषा के लेखकों और हिन्दी पाठकों दोनों से क्षमा याचना करते हैं।

हमेशा की तरह नियमित सामग्री के अन्तर्गत इस अंक में असमिया, ओड़िया, कन्नड़, कश्मीरी, नेपाली, सिन्धी, हिन्दी, तेलुगु और संस्कृत की विभिन्न रचनाएँ दी जा रही हैं। आशा है, पाठकों को इस अंक से भी हमेशा की तरह संतोष होगा।
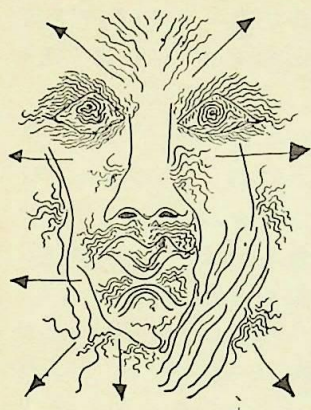
गुज़रे हुए की यादें

□ शीलभद्र

बिछौने पर पसरे पड़े हैं—त्रिदिव चौधरी। ज़्यादा से ज़्यादा कुल छह घनफुट आयतन की जगह घेरे हुए। जैसे एक जड़ पिंड। थोड़ी देर के बाद ही यह पिंड आग में जलकर ख़ाक हो जाएगा। महाशून्य में विलीन हो जाएगा। सब कुछ हवा हो जाएगा। वैसे सही-सही नापें तो इसका आयतन यूँ भी छह घन फुट नहीं ही होगा। लगातार नाना कष्टों, नाना बीमारियों को भोगते-भुगतते उनका आयतन अपने आप ही बहुत घट गया था। लेकिन आयतन की, वस्तु की लम्बाई-चौड़ाई-मोटाई की, नाप-जोख से आख़िर किस-किस चीज़ को सही ढंग से तौला जा सकता है? इस तरह कितनी चीज़ों को जोखेंगे? स्वर को, शब्द को, उजियारे, प्रकाश को, प्रेम-प्रीति को, ज़िन्दगी की समूची सार्थकता और व्यस्तता को? किसको-किसको?

आज बहुत सारे लोग उनके घर आ जमा हो गए हैं। दीपाली आई है। दामाद फ़िलहाल इसी शहर में हैं। युगल, घनश्याम, माधव और विनय आए हैं। रेणु भी आई है (चौधरी तो उसका नाम भी नहीं जानते)।

त्रिदिव चौधरी कोई बहुत बड़े आदमी नहीं हैं। बहुत विख्यात, काफ़ी नाम-गिराम वाले आदमी भी नहीं हैं। बस एक शिक्षा-दीक्षा देने वाली साधारण सी संस्था के साधारण से शिक्षक-अध्यापक। उनके चले जाने से, उनकी अनुपस्थिति से कहीं भी, ज़रा-सी भी शून्यता नहीं आ जाएगी। कहीं कोई खालीपन महसूस नहीं होगा। उनकी ज़िन्दगी एक बेहद सीधी-सादी,

वैचित्र्यहीन, साधारण सी ज़िन्दगी है। जैसे कि दूरदर्शन (टेलीविज़न) के पर्दे पर किसी अति साधारण कहानी को लेकर दिखाया जाने वाला नाटक। उसके पीछे खाली पर्दे पर अनगिनत सफ़ेद बिन्दुओं की चंचल झिलमिलाहट भर। फिर सब समाप्त।

त्रिदिव चौधरी की ज़िंदगी भी अन्य दूसरे दस-बीस साधारण आदमियों की ज़िंदगी की तरह ही साधारण सी ज़िंदगी थी। बस कुछ अत्यन्त परिचित घटनाओं का ही एक प्रकार का समायोजन। यह जो देख रहे हो। यह सुन रहे हो, यह कह रहे हो, बस यही तो जीवन है, ज़िंदगी है। इसकी तो कोई पहले से ठीक-ठाक, गढ़ी-गढ़ाई सुनियोजित ढंग से सुविख्यात की हुई, श्रृंखलाबद्ध धारावाहिकता, एक बनी-बनाई छन्दमयता तो नहीं है। हो सकता है कि एक ज़माने में आदमी के जीवन में ऐसी धारावाहिकता, ऐसा सीधा बहाव था। एक निश्चित बिन्दु से शुरू करके जीवन-यात्रा धीरे से बढ़ती हुई अन्त में एक-दूसरे बिन्दु पर पहुँचकर थम जाती थी। संभवत: धारावाहिकता, छन्दोमय प्रवाह अब भी हो। आदिम खेतिहर 'समाज में अभी भी हो सकता है पुरखे-पुरानियों के ज़माने से ही चला आ रहा, एकरस जीवन-क्रम। एक ही जैसा काम-धाम, एक-सी मेहनत-मजूरी, वैसी ही विपदें-आफ़तें, वैसी ही कठिनाइयाँ, कमियाँ, अभाव और मजबूरियाँ। यह हालत अच्छी है या बुरी? इसका निर्णय देना मुश्किल है। फिर भी इस तरह के लोग अभी भी इस कठोर ज़मीन पर बचे ही हुए हैं, इस धरती की मिट्टी के भीतर तक अपनी जड़ें फैलाए हुए हैं। हो सकता है कि यह मिट्टी कंकरीली-पथरीली और अनुपजाऊ, ऊसर-धूसर हो, परन्तु इस मिट्टी से निचोड़कर, खींचकर निकाले गए उनके विश्वास, उनकी धारणाएँ उनकी मुरादें भी वैसी ही कठोर और कभी भी न झुकने वाली हैं।

लेकिन शहरों में बसने वाले आदमियों की जड़ें इस धरती से, इस मिट्टी से छिन्न-भिन्न हो गई हैं। उससे इनका कोई लगाव नहीं रहा। ऐसा लगता है जैसे हवा में तैरती चलती कोई आधारहीन चीज़। जीवन की किसी भी प्रवृत्ति को मानकर उसका अनुकरण करने, उसके पीछे चलने का कोई चलन नहीं, किसी आदर्श पर कोई विश्वास नहीं, किसी आदर्श को ज़िन्दगी में उतारने की कोई हविश नहीं। कोई नहीं जानता कि वह खुद ही क्या कर बैठेगा? अथवा ज़माने की भीड़ में उड़ता-बहता कहाँ जा पड़ेगा? डाक्टर बनेगा कि इंजीनियर बनेगा कि रेल के दफ़्तर का क्लर्क। ज़िन्दगी की कौन-सी अवस्था कहाँ ले जायेगी, क्या पता? ऐसे आदमियों का कोई भी निश्चित दृढ़ विश्वास नहीं है। हवा का रुख बदलते-बदलते ही विश्वास की दिशा भी बदल जाती है।

कभी-कभी त्रिदिव चौधरी को उनके गाँव के शान्तिपूर्ण जीवन की बातें याद आती हैं। दूर-दूर तक फैले हरे-भरे खेत और चारों ओर से खुला हुआ आसमान। गाँव का एक-एक दृश्य अति परिचित, एक-एक आदमी भी खास तौर से जाना-पहचाना। यह एक अत्यन्त आरामदायक और डर-भय शून्य, निरापद परिवेश था। वैसे आजकल गाँवों की अवस्था कैसी है, यह वे नहीं जानते। अब जानने की जरूरत भी नहीं रही। बचपन की मधुर-स्मृतियों को उन्होंने मन के भीतर बड़े जतन से ऐसे सँजोए रखा है, ऊपर से ऐसा कठोर और कभी न हट सकने वाला पर्दा डाल रखा है कि वे तनिक भी दूषित न हो पायें। इसी से वे अभी भी उसी प्रकार विशुद्ध और ताज़ी हैं। तुलसी के बिरवे के पास स्थित हर सिंगार के दोनों वृक्षों से फूल झड़-झड़कर पूरे चबूतरे को भर देते थे और फिर उनकी सुगंध! वाह! अभी भी आँखें बन्द कर लेने पर उनकी सुवास नाक में भर उठती है। पूस महीने की संक्रान्ति के उत्सव के दिन माँ ने पिठा (असम का एक विशेष भोज्य पदार्थ) बनाया था। आज भी वे उस पिठे का स्वाद जीभ पर स्पष्ट रूप से

अनुभव करते हैं। उस तरह का पिठा आजकल कोई भी नहीं बनाता। पिठे की गोटियों (लोइयों) को थोड़ी-थोड़ी हल्दी मिलाकर आग पर सिझा लिया गया था। लुच्ची (मैंदे की पूड़ी) बनाने के लिए मैंदा सानने पर जैसा मुलायम होता है, वैसा ही बना था। बेलने से लोइयों को बेलकर, लुच्ची की तरह का बनाकर, बीच में तिल और खोआ भरकर, लुच्ची के आधे भाग को आग के ऊपर ले जाकर उसे ढकते हुए अर्द्धचन्द्राकार आकृति सी बना ली गई थी। फिर दोनों छोर जहाँ मिल रहे थे उस किनारे को अँगुलियों के कुशल आघात (दबाव) पूर्ण मोड़ से उसे बहुत सुन्दर कलात्मक रूप दे दिया गया था। बहुत खूबसूरत कारीगरी। उसके बाद उसे शुद्ध सरसों के तेल में तल-तलकर पका लिया गया और बड़े-बड़े मर्त्तबानों में भर दिया गया। गरमागरम खाने में भिन्न प्रकार का स्वाद आता था तो बासी वाले का स्वाद और ही तरह का होता था। बासी पड़ने पर पिठा का ऊपरी हिस्सा कुछ कठोर हो जाता, फिर और ही मज़ा आता था। एकदम विशुद्ध निर्मल आनन्द। धूल-धक्कड़ और दुर्गन्धों के मिश्रण से वह आनन्द विकृत नहीं हुआ था।

त्रिदिव चौधरी के मकान के दाहिनी ओर कोई, कई मंज़िली विशाल अट्टालिका बना रहा है। पौ फटते-फटते ही सीमेन्ट-कँकरीट मिलाने वाली मशीन की विकट आवाज़, पूरे परिवेश को कँपाने लगती है। ढलाई का काम चल रहा है। साथ ही मशीन की इस भीषण आवाज़ से भी बढ़कर और तेज़-तेज़ आवाज़ में मज़दूरों का चीखना-चिल्लाना, ताकि वे ऐसे में भी एक-दूसरे को सुन सकें। एक कर्णकटु चीख-चिल्लाहट। मकानों के सामने अनढके गन्दे नाबदानों से उठती तीखी सँड़ाध। ऐसे में वर्तमान से भागकर त्रिदिव चौधरी अतीत में फिर-फिर लौट जाते हैं। दूर-दूर तक उन्मुक्त फैले हरे-हरे खेत, बाग-बगीचे और ऊपर खुला-खुला आसमान। पड़ोस के मधुसूदन दत्त की किशोरी बालिका हिरन प्रायः ही त्रिदिव चौधरी के चबूतरे पर हरसिंगार के फूल बटोरने आती थी। सवेरे-सवेरे की झिलमिल रोशनी में उसे एक स्वर्ग की परी समझने की परिकल्पना करने में त्रिदिव चौधरी को कोई विशेष कठिनाई नहीं हुई थी। किन्तु, नहीं यह कोई प्यार-मुहब्बत की कहानी गढ़ने का उपक्रम नहीं है। जीवन में जो-जो भी सुन्दर दृश्य उन्हें मुग्ध कर सके हैं, जिन्हें देखकर वे अपने आपको भूल से गए हैं, उन्हीं में से यह एक है। यह दृश्य आज भी तनिक भी विकृत नहीं हुआ है, वैसा ही विशुद्ध ताज़ा बना हुआ है।

पुराने दिनों की बातें त्रिदिव चौधरी को बड़ी बेकली से याद आतीं। क्रम-बद्ध रूप में नहीं, बल्कि बिना किसी क्रम के, छिटके-छितराये, तितर-बितर रूप में। महत्त्वपूर्ण घटनाओं के साथ-साथ ही अत्यन्त मामूली, तुच्छ-सी घटनाओं का बड़ा विचित्र-सा सम्मिश्रण। कितने सारे सपने चूर-चूर हो गए, कितनी आशाएँ विलीन हो गईं। ढेर सारी मान्यताओं को त्याग दिया, बहुत से विश्वासों को नये सिरे से बटोर लिया और जाने कितनी धारणाओं को बार-बार नये-नये रूप में व्यवस्थित कर लेना पड़ा है।

त्रिदिव चौधरी का जीवन निष्कण्टक नहीं था। बचपन, किशोरावस्था, जवानी, प्रौढ़ता और बुढ़ापा, मनुष्य जीवन के ये ही तो क्रमबद्ध अध्याय हैं। त्रिदिव चौधरी ने तो एकदम से छलाँग लगाकर जवानी का अध्याय पार कर लिया। किशोरावस्था से ही सीधे एक प्रौढ़ मनुष्य के रूप में बदल गए। लेकिन उनके सामने और कोई दूसरा उपाय भी तो नहीं था। जब वे अपनी दसवीं कक्षा की परीक्षा देने को थे कि उसके छह दिन पहले ही उनके पिताजी की मृत्यु हो गई। अचानक ही एक बड़े परिवार का बोझ उनके कन्धों पर आ पड़ा। अब यह उत्तरदायित्वपूर्ण भूमिका अपनी मन-मर्ज़ी मुताबिक छाँटकर चुन लेने की भूमिका तो नहीं है। किन्तु करें क्या? उपाय जो और कोई दूसरा है ही नहीं। कुछ लोग हैं जो ऐसी दशा में भी इस तरह के दाय-

दायित्व को ठेल-ढकेलकर अलग हो सकते हैं, बच सकते हैं, किन्तु वे ! वे ऐसा नहीं कर सकते। उनके पीछे तो और कोई बात नहीं। एक बार जब एक भूमिका पकड़ी तो फिर उस भूमिका में अभिनय करते जाना पड़ेगा ही।

साथी-सोहबतियों-हमजोलियों के साथ मिल-बैठकर अड्डेबाज़ी करने, मौज-मस्ती की गप्पें हाँककर वक़्त काटने को उनके पास समय कहाँ ? उत्सव-आनन्द में भाग लेकर समय नष्ट करने से तो उनका कुछ नहीं होगा। यौवन-जवानी का उछाह-उल्लास उनके लिए नहीं है। दसवीं कक्षा उत्तीर्ण होने के साथ-ही-साथ वे एक गम्भीर प्रकृति के मध्यवयस्क व्यक्ति के रूप में बदल गए।

सिनेमा देखने, चौधराहट करने का समय उनके पास कहाँ ? साँझ-सवेरे लड़कों को पढ़ाना पड़ेगा। कक्षा से बाहर निकलते ही कापी-क़िताब लेकर बाहर-ही-बाहर छात्रों के घर-घर जाना पड़ेगा। कभी-कभी तो कॉलेज का अन्तिम पीरिएड तक छोड़ देना पड़ा है।

छुट्टियों में भी घर पर बैठे रहने से तो काम चलेगा नहीं। उसके बीच भी वे छोटी-मोटी ठेकेदारी का काम करते थे। गाँव के रास्तों घाटों पर बाँस-लकड़ी के पुल बनवाना, सड़क पर थोड़ी मिट्टी डलवा देना, इसी प्रकार के छोटे-मोटे क्षेत्रीय काम। वह युद्ध का समय था। अतः यदि काम करने की इच्छा हो, तो ढूँढ़ने पर काम पाने की कोई कमी नहीं थी। बाँस-फूँस जुटाकर दूसरे ठेकेदारों को पहुँचा देने से भी दो पैसे घर में आते थे। दो-एक महीनों के भीतर भी, जो कुछ भी किया जा सके, वह सब लाभ ही लाभ है। ठेकेदारी के बिलों के पैसे निकालकर फिर कॉलेज जाने में प्रायः ही देरी हो जाती। किस्म-किस्म के ठेके का काम वे करते हैं, इसकी सूचना जब प्राचार्य कृष्णदास तक पहुँची, तो उन्होंने भरी कक्षा में उन्हें लताड़ा था।

"अरे ! लिखने-पढ़ने से क्या होगा ? छोड़ो भी यह सब। और ज़रा अच्छी तरह किसी बड़े ठेके के काम में लग जाओ। फिर मोटरकार में बैठकर हमारे जैसे प्रोफेसरों को धक्का मार आगे बढ़ जाओगे।"

प्राचार्य कृष्णदास के प्रति उनके मन में ज़रा भी मलाल-विद्वेष नहीं है। चाहे जो भी बात हो, कृष्णदास जी ने उन्हें बाहर बुलाकर पूछा था—"अच्छा ! ज़रा यह तो बताओ कि जब लोग तुम्हें ठेकेदार कहेंगे तो तुम्हें कैसा लगेगा ?" उनके इस प्रश्न का यथार्थ उत्तर देने पर दास जी बहुत बुरा मान गए थे।

त्रिदिव चौधरी को एक-एक करके पुरानी घटनायें याद आती हैं। जैसे, उस दिन दोपहरी में उस तरह से अचानक ही उनके कमरे में घुस पड़ना उचित नहीं कहा जा सकता। धीरू भाई और सुधा भाभी, दोनों ही उन्हें इतना प्यार करते थे कि उनके घर में उन्हें किसी प्रकार का संकोच नहीं था। वैसे कुछ बातों में उनकी समझने-बूझने की शक्ति भी कुछ कम ही थी। उस दिन थोड़ी देर पहले ही धीरू भाई अपने ठेके के काम से अपनी मोटरकार पर चढ़कर चले गए थे। पुराने माडल की मोटरकार थी उनकी। जब चलती थी तो बड़ी ज़ोर की आवाज़ करती जाती थी। इस पर भी धीरू भाई बड़े फ़क्र से कहते थे कि यही तो है असली शान की गाड़ी। जब चलती है तो सारी जनता अपने आप ही समझ जाती है कि बरुआ जी ही गाड़ी से गए हैं।

सुधा भाभी बिस्तरे के सिरहाने बैठी हुई हैं और उनकी गोदी में सिर रखे प्रशान्त लेटा हुआ है। उनके कमरे में घुसने के साथ-ही-साथ, वे दोनों जैसे बिजली का झटका खा उठे। दोनों ही बहुत घबरा गए, लेकिन त्रिदिव चौधरी तो उनसे भी ज़्यादा घबराये हुए थे। वे तो पत्थर की

मूर्ति की तरह जड़ से हो गए थे। ऐसे अनुचित आचरण के कारण लाज और अपराध बोध की भावनाओं ने उन्हें किंकर्तव्यविमूढ़ बना दिया था। अन्ततः प्रशान्त ने ही स्वयं सँभलकर पहले उनसे पूछा था—

"कहो क्या है ? तुम कब आए ? कॉलेज बन्द है क्या ?"

त्रिदिव चौधरी के मुँख से आवाज़ नहीं फूटी। उनका कलेजा लगातार ऐसा धक-धका रहा था कि चित्त को शान्त कर, उत्तर देने के लिए, एक पूरा-का-पूरा वाक्य गढ़कर तैयार करना उनकी शक्ति के बाहर था, और फिर बिना कुछ कहे लौट जाना भी सम्भव नहीं था। क्योंकि इस तरह लौट जाने से, उन लोगों ने उसके प्रति जो एक बुरी धारणा बना ली होगी, वह सही प्रमाणित होगी। एक बड़ी विकट परिस्थिति आ पड़ी थी।

उन्होंने एक ऐसा दृश्य देख लिया था जिसे देखना उनके लिए उचित नहीं था। यह अनुचित कार्य कर बैठने की परेशानी में डालने वाली चिन्ता वे हटा नहीं पा रहे थे। वे धीरू भाई के प्रति श्रद्धाभाव रखते हैं, सुधा भाभी की भी काफ़ी इज्ज़त करते हैं। सुधा भाभी भी उन्हें बहुत प्यार देती हैं। यद्यपि वह उनसे दो वर्ष ही बड़े हैं फिर भी सुधा भाभी उनसे अपने भाई जैसा व्यवहार करती हैं। उनके लिए सुधा भाभी की शुभ-कामनाओं और सहानुभूतियों की ज़रा भी कमी नहीं। बिना सोचे-समझे ऐसा अनुचित कार्य कर जाने के कारण इतने दिनों से बने-बनाये एक अच्छे सम्बन्ध को नष्ट कर देने के कलुषित कार्य पर, त्रिदिव चौधरी को अपने आप पर ही भयंकर गुस्सा आ गया। सुधा भाभी क्या करेंगी, क्या नहीं करेंगी, इस सबको लेकर उन्हें परेशान होने की कोई वज़ह नहीं, परन्तु जन्म से ही जो संस्कार बोध, उनके मन में जड़ीभूत था, वह बार-बार, उनके मन को सुधा भाभी के प्रति, खराब भाव रखने की चेष्टा करने लगा था।

बड़े ही लाड़-प्यार का एक संबंध था। वैसे आज भी बने न रहने का कोई विशेष कारण नहीं। किन्तु सम्बन्धों को बनाए रखने वाली डोरी टूट ही गई। हज़ार कोशिश करके भी इस टूटी डोरी के सिरों को जोड़ा न जा सका। जब कभी सुधा भाभी के सामने त्रिदिव आ जाते, वे अपने आप ही अत्यन्त संकुचित हो उठतीं। उनके मुख पर अज्ञात अपराध बोध का भाव उफ़न पड़ता। त्रिदिव इसे जानते थे। किन्तु सचमुच इसे जानने की कोई इच्छा उनकी नहीं थी। मनुष्यों के पारस्परिक सम्बन्ध कितने कच्चे होते हैं, कितने नाज़ुक। ज़रा-से धक्के से चकनाचूर। ऊपरी घटनाओं पर कितने अधिक निर्भरशील।

इसी प्रकार की बातें त्रिदिव को याद आतीं। कोई घटना मन में उभर आई, इसका मतलब यह नहीं कि वह बहुत महत्वपूर्ण थी इसी से याद आई। राजेन की याद आई। राजेन चौधरी की। अपने ही वंश का एक लड़का। कपड़े-लत्ते, साज़-पोशाक के संबंध में ज़रूरत से अधिक सावधान। कहीं कभी धूल-मिट्टी न लग जाय, इससे सदा सजग। यदि कोई ज़रा-सा उसके बिस्तर पर बैठ गया तो बस शुरू हो गया झंझट। फिर तो चद्दर-खोल, सब बिना धोए चैन नहीं। प्रायः ही वह अपने कमरे के दरवाज़े पर ताला लगाए रखता। जबकि मिला-जुला बड़ा-सा संयुक्त परिवार था उसका। नाते-रिश्ते, सगे-सम्बन्धी आते ही रहते। जगह की वैसे ही कमी, ऐसे में एक कमरे को बन्द कर देने से कैसे काम चले ? इसी कारण घर में बराबर झगड़ा-झंझट मचा रहता।

बड़ी बहन मिनती तो एक दिन रो ही पड़ी। मिनती का बेटा बड़ा ही नटखट है। हड़बड़-हड़बड़ पाँव बढ़ाकर चलना सीख गया है। चौबीसों घंटे लट्टू की तरह नाचता-फिरता है। कोई यदि गोदी में उठा लेता है तो बहुत बुरा मानता है। नीचे उतारने के लिए छटपटाने

लगता है। इसी से सभी उसे लट्टू कहकर ही पुकारते हैं। लेकिन लट्टू कहीं अगर राजेन की ओर पाँव बढ़ाता है तो राजेन डर के मारे पीछे हट जाता है। लट्टू सोचता है कि यह भी एक तरह का मज़ेदार खेल है। अतः मामा (राजेन) को देखते ही वह अपने धूल-मिट्टी सने हाथों को फैलाए उन्हें पकड़ने को आतुर चल पड़ता है। और वे मारे डर के पीछे हट जाते हैं। ऐसा देख मिनती को बहुत बुरा लगता है। वह चाहती है कि सभी उसके बेटे से प्यार करें। लेकिन गोद में उठाकर प्यार करना तो दूर, हाथ से छू जाने पर भी जैसे बहुत बड़ी ग़लती हो जाएगी। ऐसी भी क्या घृणा? बेटा क्या किसी भिखारी का बेटा है? इस तरह से हटो-हटो, छिः-छिः आखिर किस वजह से करते हैं? अगर इसी तरह का निरादर करेंगे तो इस घर में आने की किसे गरज़ पड़ी है? इसके बिना क्या खाने को नहीं मिलता कि पहनने को नहीं मिलता?

मिनती का चेहरा उतरा हुआ, गंभीर है।

माँ ने पूछा—"अरे तुझे क्या हुआ?"

"और क्या होगा? कुछ भी नहीं हुआ।"

लेकिन कहने के लहज़े और अंग-भंगी से जना भी दिया कि निश्चय ही कुछ बुरा सुलूक हुआ है। मगर माँ अपने से कुछ अन्दाज़ नहीं कर पा रही थी और मिनती मुँह खोलकर कुछ कह नहीं रही थी। एक दिन जब छोटे चाचा धर्म चौधरी आए तो माँ ने राजेन को अपना बिस्तरा उनके लिए छोड़ देने को कहा। बूढ़े महाशय के लिए एक अच्छे से बिस्तर का इन्तज़ाम करना उचित ही था। मगर राजेन ठहरा महास्वार्थी। किसी की बात पर ध्यान देने की तो उसकी प्रवृत्ति ही नहीं। बस अपने आप में ही मस्त। धूल-माटी के दाग़ से अपने को बचाए रखने के चक्कर में वह अपने आप को इतना अधिक सिकोड़ता गया कि धूल-माटी से अलग होते-होते आदमी से ही अलग हो गया। वृत्त (गोला) का व्यास सिकुड़ते-सिकुड़ते शून्य भर रह गया।

राजेन दसवीं कक्षा में दो बार अनुत्तीर्ण होकर, तीसरी बार किसी तरह तृतीय श्रेणी में उत्तीर्ण हो सका। फिर बारहवीं कक्षा में भी जब दो बार अनुत्तीर्ण रह गया तो उसने पढ़ाई-लिखाई ही छोड़ दी। उस समय लड़ाई छिड़ गई थी। अतः ज़रा-सा कोशिश करने से ही नौकरी मिल जाती थी। नये-नये खुले परिवहन (ट्रान्सपोर्ट) विभाग में राजेन को क्लर्क की नौकरी मिल गई इससे त्रिदिव चौधरी को प्रायः लगता था कि राजेन विचारे का काम किसी तरह बस चल भर रहा होगा। राजेन की बिटिया के विवाह में वे शरीक न हो पाए। ठीक उसी समय स्नानघर में फिसलकर गिर जाने से उन्हें कमर में भयानक चोट आ गई थी। ऐसे में भेंट उपहार में भी कोई ख़ास चीज़ न पठा सके, बस पाँच सौ रुपया नकद भेज दिया। कुछ तो सहायता होगी। बेचारा मामूली से रुपए ही तो वेतन में पाता है। फिर विवाह का खर्च कैसे सँभालेगा?

राजेन की मृत्यु की खबर मिलते ही वे दौड़े-दौड़े शिलांग पहुँचे। वे बहुत ज़्यादा घबरा उठे थे। (सभी के सम्बन्ध में चिन्तित हो उठना उनका स्वभाव ही बन गया था) बस इतने कम वर्षों की नौकरी करके, लड़के-लड़कियों का पालन-पोषण करने के उपरान्त, निश्चय ही राजेन बच्चों के भविष्य के लिए कुछ अच्छी व्यवस्था नहीं कर सका होगा। उन्होंने सुना है कि उसका बड़ा बेटा दसवीं कक्षा नहीं उत्तीर्ण कर पाया है। बस भाग्य अच्छा था कि सरकारी कर्ज़ लेकर बुद्धि खटाकर शिलांग में एक घर बना गया। लड़के-बच्चों को सिर छुपाने की एक जगह तो है।

त्रिदिव चौधरी, राजेन चौधरी के घर के सामने स्तम्भित से खड़े रह गए। लगता है उनसे कहीं कोई ग़लती हो गई है। बिना जाने-समझे कहीं किसी दूसरे के घर में जा घुसे तो

अपमानित होना पड़ेगा। राजेन का घर? पास-पड़ौस के घरों से जाँच-पूछ लेने पर वे निश्चिन्त होने को हुए। अच्छा तो राजेन का ही घर है। बाहर के स्वागत कक्ष में ही बहुमूल्य सोफ़ासेट और तमाम सारे कीमती असबाब। एक-एक सामान से घर के मालिक की आर्थिक सम्पन्नता प्रगट हो रही थी। जैसे सभी चिल्ला-चिल्लाकर मालिक की परम धनाढ्यता का ढिंढोरा पीट रहे हों।

त्रिदिव चौधरी आश्चर्यचकित रह गए। ईर्ष्या कर बैठना उनका स्वभाव नहीं, लेकिन आश्चर्य करने से अपने को न बचा सके। गणित के सवाल का जवाब न मिला पाने पर आदमी की जैसी दशा हो जाती है ठीक वैसी ही अवस्था। राजेन की जैसी नौकरी करने वाले मोटे तौर पर महीने में कितनी पगार पाते हैं? यह वे अच्छी तरह जानते हैं। बारह से गुणा करने के बाद पच्चीस से (जितने समय तक राजेन ने नौकरी की थी) गुणा करके देखा। लेकिन किसी भी प्रकार उत्तर मिल नहीं पा रहा था।

परन्तु ऐसा न होने पर भी मन-ही-मन त्रिदिव चौधरी ने आराम महसूस किया। चिन्ता करने की कोई बात नहीं। क्योंकि राजेन के न होने पर भी परिवार चल सकेगा, अच्छी तरह चल सकेगा। राजेन के बड़े लड़के ने उन्हें बुलाया। बहुत आदर-भक्ति के साथ उनसे बातें की। लेकिन उसकी बातों के भीतर से अहंकार भी प्रगट होता जा रहा था। बातचीत कर चुकने के बाद त्रिदिव चौधरी ने महसूस कर लिया कि इस परिवार के लिए रुपये-पैसे की समस्या कोई समस्या ही नहीं है। राजेन के श्राद्ध-कर्म इत्यादि में पैसे की ज़रूरत पड़ सकती है, ऐसा सोचकर वे अपने साथ कुछ धन ले आए थे। लेकिन उसे देने की कोई ज़रूरत नहीं है, यह वे अच्छी तरह समझ गए।

"तो फिर तुमने क्या करने को विचारा है? कोई एक काम तो करना ही पड़ेगा।"

"मैं तो व्यापार-धन्धा कर ही रहा हूँ।"

"किस चीज़ का व्यापार?"

"काफ़ी बड़े परिवहन (ट्रान्सपोर्ट) का व्यापार?"

"वाह! यह तो बहुत अच्छी बात है।"

बातों ही बातों में ही महिम (राजेन के बेटे) ने पूछा—"बड़े चाचा! आप ठहरे कहाँ हैं?"

"मालती के घर पर ही ठहरा हूँ। अपने ही खानदान की लड़की के यहाँ होते हुए मैं और कहाँ ठहरूँगा? तुम लोग तो पहले ही परेशान हो, इसी से तुम्हारे यहाँ नहीं ठहरा। मालती वगैरह यहाँ आती हैं या नहीं।"

"बहुत ही कम। मुझे भी जाने का समय नहीं मिल पाता। सुना है यहाँ से बहुत दूर है। वहाँ आपके रहने-सहने में ज़रूर असुविधा हो रही होगी। कोई बात नहीं, आप यहाँ चले आइए। जाकर अपना सारा सामान वगैरह लेकर यहीं आ जाइए। अच्छा, थोड़ा ठहरिये मैं फिएट कार वाले ड्राइवर को ऑर्डर कर देता हूँ।"

"नहीं, नहीं रहने दो, इसकी कोई ज़रूरत नहीं। मुझे कल ही तो चले जाना है।"

"तो क्या पिताजी के श्राद्ध तक नहीं रुकेंगे?"

"नहीं, ठहर नहीं सकूँगा। दरअसल राजेन उम्र में मुझसे छोटा था। अपने से उम्र में छोटे लोगों के, इस प्रकार के काम में रहने पर, मुझे बहुत दुख महसूस होता है। अरे सर-समाचार पा लिया, बस इतना ही बहुत है।"

"अरे ऐं साले···" (कई अश्लील गालियाँ) त्रिदिव चौधरी तो सकपका गए। कलेजे पर भारी धक्का लगा। कहता क्या है?···लेकिन नहीं उनके लिये नहीं कहा। दरअसल एम्बेसडर कार को फाटक के भीतर लाते समय, ड्राइवर फाटक के खम्भे पर धक्का मारे दे रहा था।

"अच्छा ज़रा-सा रुकें। ऐम्बेसडर गाड़ी तो आ ही गई है। वही आपको वहाँ तक पहुँचा आएगी।"

"नहीं जी। इतनी भी ज़रूरत नहीं। मैं इधर से ही ज़रा जीवेश्वर के घर भी जाऊँगा। पास में ही तो रहता है। इसलिये कार-गाड़ी की कोई आवश्यकता ही नहीं।"

"जीवेश्वर कौन?"

"ऐन्थोनी कॉलेज के प्रोफेसर, क्या उन्हें नहीं पहचानते?"

"नहीं, मैं नहीं पहचानता।"

पहचान पाने की बात भी नहीं। जीवेश्वर चौधरी गणित के प्रोफेसर हैं। आदमी बड़े अच्छे हैं किन्तु हैं बड़े कटु भाषी।

कुछ दिनों पहले राजेन को बढ़ा-चढ़ाकर गप्पें हाँकने की आदत हो गई थी। हर बात में अपने को बड़ा दिखाना चाहता था। एक दिन कैप्सटन सिगरेट के टिन का पैकेट खोलकर उसने जीवेश्वर की ओर बढ़ाते हुए कहा—"और कोई सिगरेट पीने पर तो मुझे खाँसी आने लगती है। इस तरह खुद पीने और दूसरे आदमियों को देने में, दिन भर में कम-से-कम एक टिन सिगरेट तो मुझे चाहिए ही।"

"शर्म नहीं आती तुम्हें?" जीवेश्वर ने क्रोध से पूछा।

राजेन तो अवाक् रह गया।

"शर्म किस बात की? कैप्सटन सिगरेट पीना क्या शर्म की बात है?"

"क्यों, क्या शर्म की बात नहीं है? कैप्सटन के एक टिन सिगरेट का दाम कितना होता है? तुम कुल मिलाकर कितनी तनख्वाह पाते हो? घूस-घास खाते हो, तो क्या सभ्य मनुष्यों के सामने खील-बतासे छितराते चलोगे? घूसखोर को चुपचाप ही रहना चाहिए।"

त्रिदिव चौधरी सारी घटनाओं का सटीक ढंग से निरीक्षण-परीक्षण करते रहते, किन्तु मुँह से कुछ भी नहीं कहते। बस देखते जाते और सुनते जाते। जाने कितने अनगिनत दिलचस्प नज़ारे, कितने-कितने भिन्न-भिन्न प्रकार के मनुष्यों के नाना प्रकार के क्रिया-कलाप और लोग सोचते थे कि त्रिदिव की समझने की ताक़त बहुत ही भोंथरी हो गई है। लेकिन लोगों का यह अनुमान सही नहीं। दरअसल उनका मन तो सभी की सटीक समझ और तदनुरूप समुचित और पर्याप्त प्रतिक्रियाएँ उत्पन्न करता है। फलतः वे दुःखी होते हैं, गुस्सा-गुस्सा हो जाते हैं, कभी-कभी उन्हें लगता है जैसे उन्होंने स्वयं भारी गलती की हो। भीतर-ही-भीतर घुटते रहते हैं, किन्तु बाहर-बाहर उसका कहीं कोई चिह्न दिखाई नहीं पड़ता, बाहर से शान्त-निश्चल।

किशोरावस्था से अचानक ही प्रौढ़ावस्था में पहुँच जाने की मजबूरी होने का यह मतलब नहीं कि यौवन-जवानी की आशाएँ, इच्छाएँ, सपने उनमें जगे ही नहीं। हाँ यह ज़रूर है कि उनके इन मनोभावों के प्रकाश में चंचल-नटखट यौवन की कहीं कोई चपलता-प्रगल्भता-हड़बड़ापन नज़र नहीं आता था। सब कुछ बहुत गंभीर, ठहरा हुआ, स्थिर, एकदम भाव-विकार से शून्य। कहीं से यदि असहनीय चोट भी पहुँचती तो वे अपने को ही और संकुचित कर लेते, और अतल-तल में सिमट रहते।

"कहाँ जाओगे ?"

वृन्दावन बरुआ अपनी धर्मपत्नी और बेटी के साथ कुछ खरीददारी के लिए दुकान में जा रहे थे, तभी उन्हें देखकर उन्होंने बड़ी उत्सुकता से पूछा। बरुआ जी भारतीय सरकार की प्रशासनिक सेवा के मँझले दर्जे के एक बहुत बड़े अधिकारी हो गए हैं। अपनी सरकारी मोटर गाड़ी साथ ले आए थे। रिश्ते में चौधरी के मामा लगते थे।

"अच्छा, तो थोड़ा रुको। मैं भी मालीगाँव की ओर ही जाऊँगा। फिर मेरे साथ-साथ मोटर में ही चले चलना।"

त्रिदिव मोटर के पास ही खड़े हो गए। ताकि दुकान से बाहर आने पर श्री बरुआ उन्हें खोजने-ढूंढ़ने में परेशान न हों।

थोड़ी देर बाद वृन्दावन बरुआ, बड़ी व्यस्तता में, दूकान से बाहर निकले। उनकी पत्नी और बिटिया के अतिरिक्त उनके साथ एक और आदमी, और दो अन्य भद्र महिलाएँ थीं। गाड़ी में महिलाएँ पीछे की सीटों पर और वे तथा उनके साथ आए सज्जन आगे की सीट पर अगल-बगल बैठ गए। त्रिदिव निहारते रहे किन्तु उनकी ओर एक बार भी नज़रें उठाए बिना ही वे लोग जल्दी से चले गए।

वैसे वे मोटरकार पर तो सफ़र करते नहीं। सरकारी सिटी बस से ही तो आते-जाते हैं। और यदि कम दूरी तक ही आना जाना हो तो मज़े से पैदल चले जाते हैं। अतः वृन्दावन बाबू की मोटर कार से न जा पाए तो इसमें उन्हें कोई विशेष पछतावा होने की क्या ज़रूरत ? अरे ज़रा सा आगे बढ़ जाएँ तो सिटी बस स्टॉप पर बस मिल ही जाएगी। लेकिन इस सब के बावजूद उनका मन खराब हो गया। और खराब भी ऐसा हुआ कि उसके बाद, यदि कोई मोटर कार वाला मालिक व्यक्ति, कहीं मिल गया और उसने सौजन्यतावश कभी उनसे अपनी गाड़ी पर चढ़कर चलने का प्रस्ताव भी किया—तो उनका सदा एक ही ज़वाब होता—

"माफ़ करना भाई। मुझे यहाँ कुछ काम है। बिला वज़ह देरी होगी। कृपया आप जायँ। मेरे लिए प्रतीक्षा न करें।"

त्रिदिव चौधरी अपनी मानसिक स्थिति से अनभिज्ञ नहीं हैं। वे अच्छी तरह जानते हैं कि उनके मन में अपने प्रति तिरस्कृत होते रहने, लोगों से अवहेलना पाने के कारण एक हीनता (इनफीरियरिटी काम्पलेक्स) बोध है। दरअसल अनेक दिशाओं से, नाना प्रकार से उन्हें अनगिनत आघात लगे हैं। पग-पग पर धक्के खाए हैं। पिता जी की मृत्यु हो जाने के बाद एक अनाथ बालक, वह भी तरह-तरह के अभावों-परेशानियों में गुज़ारा करने वाले लड़के के साथ, इसी तरह का व्यवहार तो ज़माना करेगा ही, यह तो सहज-स्वाभाविक है। 'एक हाथ दो—दूसरे हाथ लो' वाले समाज में उनकी हालत यह है कि किसी को कुछ दे सकने की ताक़त तो है नहीं, जब कि हर किसी से बहुत कुछ पाने की ज़रूरत, भाँति-भाँति की उन्मादें हैं। ऐसे में अपने सगे-सम्बंधियों से भी बराबर डरे-डरे रहने की बात तो है ही।

त्रिदिव बड़े ही स्पर्शकातर स्वभाव के हो गए। ज़रा-ज़रा सी बात में सिहर उठते। अभी वे उस दशा से पूरी तरह छुटकारा नहीं पा सके थे। अभी भी वे अपने उन साथियों-सहपाठियों से दूर-दूर हटे रहते थे जो उनकी अपेक्षा अधिक ऊँचे दर्ज़े की नौकरियों में ऊँचे-ऊँचे ओहदों पर पहुँच गए थे। भरसक उनसे बचते रहते। उसका यह मतलब नहीं कि उन उच्चपदस्थ हमजोलियों के प्रति उनका मन ईर्ष्या का भाव रखता था। नहीं बल्कि इसके उल्टे वे तो इससे और भी गर्वित

और आनन्दित होते। बड़ी गर्मजोशी से कहते—"मेरे मँझले मामा का बड़ा बेटा आज शिकागो विश्वविद्यालय में प्रोफ़ेसर है।"—"अरे आप लोग ट्रांसपोर्ट कमिश्नर राजखोवा की बात कर रहे हैं ? अरे वह तो मेरा सहपाठी है। सहपाठी ही क्या हम दोनों एक साथ पढ़े भी हैं और साथ-ही-साथ एक ही छात्रावास में रहते भी थे। यह ज़रूर है कि वह बड़ा ही बुद्धिमान था। अर्थशास्त्र में तो वह फर्स्टक्लास फर्स्ट आया। जब कि वह क़िताबी कीड़ा नहीं था, बल्कि बड़ा ही मस्त अड्डेबाज़ था, मौज़ मस्ती करनेवाला।"

लेकिन बस इसी सीमा तक। इसके आगे नहीं। अपनी ओर से कोशिश करके ज़ोर लगाकर किसी साथी अफ़सर के करीब पहुँच कर सटने की कोशिश वे कभी नहीं करते। क्योंकि वे जानते हैं, कि इससे नाहक, झूठ-मूठ में मन ही खराब हो जाएगा, होगा कुछ नहीं।

बहुत महत्वपूर्ण घटनाओं का महत्व तो फ़ीका पड़ गया किन्तु मामूली-मामूली नगण्य सी घटनाएँ रह-रहकर मन में उभर आतीं तो उनकी चमक से जैसे उजास फैल जाता। नवगाँव शहर पहुँचते-पहुँचते दोपहर हो गई। कलंग के पुल के पार होने के पहले ही वे बस से उतर गए। क्योंकि पास में ही दीपाली और उसका परिवार रहता है। उससे मिल लेना ही उचित है। दीपाली उनकी बहन की बिटिया है। लेकिन वस्तुतः वे उसके बड़े (सौतेले) मामा हैं, दीपाली उनकी अपनी बड़ी या छोटी बहन की जायी बेटी नहीं है। उनके बड़े चाचा की बेटी लावण्य से सुरेन्द्र दत्त का विवाह हुआ था। दीपाली की अपनी माँ का घर नवगाँव के पास ही है। लावण्य की मृत्यु हो जाने के बाद सुरेन्द्र दत्त ने दीपाली की माँ से शादी की थी। बड़ी भली, बहुत ही प्यार करने वाली। त्रिदिव चौधरी उसे बहन कहते थे। इसी संबंध से वे दीपाली के मामा होते हैं। दीपाली वग़ैरह इस समय यहाँ ही हैं। जमाई(दामाद) की बदली हुए अधिक दिन नहीं हुए। पास-पड़ौस के लोगों से जाँच-पूछकर जब दीपाली के घर तक पहुँचे, तो देखा कि एक बुजुर्ग व्यक्ति घर के सामने से निकले चले आ रहे हैं। उनके बाल औरतों की तरह ही लम्बे-लम्बे तो हैं ही, उन्होंने उन्हीं की तरह उन्हें लपेटकर सर पर जूड़े की तरह बांध भी रखा है।

"माफ़ करेंगे साहब ! यह क्या प्रफुल्ल महाशय का क्वार्टर है ?"

"हाँ है तो, लेकिन दोपहर की वेला में तो वे घर पर रहते नहीं। ऑफिस गए हुए हैं। वहीं जाने पर भेंट कर सकेंगे।"

"तो दीपाली है क्या ?"

इतना सुनने पर बुजुर्ग महाशय बड़े सन्देह की नज़रों से निहारने लगे।

"श्रीमान् का आना कहाँ से हो रहा है ?"

"गुवाहाटी से।"

"मतलब क्या है ?"

"मतलब ? अरे ज़रा आप उसे बुलाइये तो।"

इस पर वह महाशय दरवाज़े पर द्वारपाल की तरफ खड़े हो गए। बोले—

"अरे मतलब क्या है, साफ़-साफ़ बतलाते क्यों नहीं ?"

"ठीक है, उससे कहें कि उसके बड़े मामा आए हुए हैं।"

अब उनका सन्देह विश्वास में बदल गया। वे तो इसी क्षेत्र के निवासी हैं। दीपाली के सभी मामा लोगों को खूब अच्छी तरह पहचानते हैं। पूछ बैठे—

"श्रीमान् का परिचय ?"

दरवाज़े पर कोई बातें कर रहा है, ऐसा अन्दाज़ मिलने पर दीपाली ने पर्दा सरका कर छिाकर बाहर निहारा। तभी उन्होंने दीपाली को देख लिया और पुकार उठे—"अरे ओ दीपाली ! जल्दी बाहर आ।"

उन्हें देखकर दीपाली मारे खुशी के चहक उठी।

"अरे बड़े मामा हैं ? कहाँ से आए ? आइए आइए।" कहती दौड़ी आयी और सामने का दरवाज़ा खोल दिया। बुजुर्ग सज्जन बड़ी तेज़ी से वहाँ से चले गए।

"ये साहब कौन हैं रे ?"

"मेरे ममेरे ससुर जी। क्या पूछ रहे थे ?"

"अरे मेरे बड़े भाग्य जो तुझे देख लिया। नहीं तो दरवाज़े पर से ही खदेड़ दिया होता। बाप-रे-बाप वकीलों की तरह कैसी तो बारीक ज़िरह कर रहे थे। पूछते थे मतलब क्या है ? छोड़ भी, चल, पहले एक प्याला चाय पिला। और कुछ करने की ज़रूरत नहीं। यदि खिलाना ही चाहो, तो चावल-दाल एक साथ मिलाकर खिचड़ी बना दो।"

"ये सब चिन्ता छोड़िये। दाल-भात-तरक़ारी सभी कुछ मौजूद है। इन मामा ससुर ने स्वयं ही सब कुछ पकाया है। वे तो कोई भी चीज़ थोड़ी मात्रा में पका ही नहीं सकते। मुझे तो भाई बहुत आराम मिल रहा है। बैठे-बैठे पका-पकाया भोजन कर रही हूँ।

"क्या कहा ? मामा ससुर ने भोजन पकाया है ?" आखिर तुम्हें क्या हो गया है ?"

"हुआ कुछ नहीं। बस, वे मेरे हाथ का पकाया तो कुछ खाते नहीं। क्योंकि मैं गुरुमुख नहीं हुई हूँ, धर्म के अनुसार गुरु से दीक्षा नहीं ली है।"

"अच्छा ही किया, अब लेना भीं नहीं।"

एक अतिसाधारण सी घटना। किन्तु त्रिदिव के मन में आज भी ताज़ी है। याद ताज़ा होने पर हँसी छूटती है। बड़ी कठिन परिस्थिति बन आयी थी। मामा ससुर जी दीपाली के सभी मामाओं को अच्छी तरह पहचानते थे। दोपहर की वेला में घर पर कोई मर्द आदमी तो है नहीं। ऐसी दशा में एक अपरिचत आदमी जो अपने को मामा बताकर, झूठा परिचय दिखाकर घर के भीतर जाने की कोशिश कर रहा है। बात साफ़ है कि उसके इरादे अच्छे नहीं। ऐसी दशा में मामा ससुर का अपने पर गर्व करना अच्छा ही है। भाग्य भला था कि इस अवसर पर वे उपस्थित थे। वे थे इसी से एक कुचक्री के बुरे इरादों पर पानी फ़ेर देने में सफल हुए, अन्यथा ?

छोटी-मोटी, शरीर में सिहरन पैदा कर देने वाली घटनाएँ हमेशा-हमेशा के लिए मन में बैठ जाती हैं। अभी बहुत बेसी दिन पहले की बात नहीं है। अकस्मात् ही सिटी बस में हड़कम्प मच गया। आजकल तो सिटी बस में बराबर भीड़-ही-भीड़ रहती है। एक ढलती उम्र के बुजुर्ग व्यक्ति बस में चढ़ने की कोशिश कर रहे थे। किन्तु जैसा कि प्रायः ही होता है, चढ़ने-उतरने वालों के लिये कठिनाई पैदा करने वाला नवयुवकों का एक गुट हमेशा की तरह ठीक दरवाज़े में भीड़ किये खड़ा था।

उन साहब ने कहा —"अरे बच्चो बस के अन्दर तो काफ़ी जगह खाली है। अन्दर क्यों नहीं बढ़ जाते ?"

ये नौजवान छोकरे सोचते हैं कि समाज के तमाम लोग उनसे डर के मारे काँपते रहने चाहिएँ। ऐसे में एक बूढ़े से आदमी की ऐसी बातें सुनकर उनकी शान को बड़ी चोट पहुँची।

वे तो लड़ाई करने पर उतारू हो गए।

"हम अन्दर नहीं जायेंगे ? क्या कर लोगे ?" इस तरह उनमें झगड़ा चल ही रहा था कि बस चल पड़ी। इस तरह परिस्थिति अपनें अनुकूल देखकर उन्हीं में से एक ने मौक़ा ताक कर उस आदमी की ओर जोर से लात उछाली। उसकी लात की चोट उस आदमी के ठीक मुँह पर जा लगी। लड़के तो जानते नहीं थे कि वह आदमी और दस-पाँच दूसरे साधारण आदमियों जैसा नहीं है। वह उसी क्षण आटो रिक्शा पर बैठ सिटी बस का पीछा कर बैठा और केवल दो ठहरावों के बाद ही सिटी बस के पास पहुँच गया। फिर कूदकर बस में चढ़ आया और उसने एक नौजवान की कमीज़ का कालर जोर से मुट्ठी में पकड़ लिया। दो ठहरावों के पहले के ठहराव पर क्या कुछ घटा था, त्रिदिव चौधरी उसे ठीक से नहीं जान सकते थे। इन्हीं सब छोकरों ने वहाँ कुछ गड़बड़ी की थी। अब उनमें से एक को झपटकर पकड़ते ही उसकी अगल-बगल के दोनों नौजवान उसकी कोई सहायता न कर, धक्का-मुक्की करते हुए, बैठने की सीटों के ऊपर-ऊपर से छलाँग लगाते हुए, बस के अगले दरवाज़े से कूद कर बड़ी तेज़ी से भाग निकले।

उस आदमी ने जिसे पकड़ रखा था वह हाथ जोड़ घिघयाने लगा —"मैंने नहीं, मैंने नहीं, मुझे क्यों पकड़ते हैं ? असली बदमाश तो भाग गया, आगे के दरवाज़े से भाग गया। यदि तेज़ी से पीछा करें तो अभी भी उसे पकड़ सकते हैं।—मुझे छोड़ दें, छोड़ दें।"

उस आदमी ने उस छोकरे को कोई बहुत अधिक कुछ नहीं किया। बस दो ज़बरदस्त थप्पड़ कान पर दे मारे और ख़बरदार करते हुए कहा—"कुत्ते कहीं के। देखने से तो अच्छे भले घर के लड़कों की तरह लगते हैं। तुम्हारे बाप की उम्र का आदमी हूँ मैं। शर्म नहीं आती ? भागे क्यों ? कितने बड़े बहादुर हो ज़रा देखता !"

उस आदमी का ऊपरी ओंठ सूजकर फूल गया था। ओंठ के पास से थोड़ा ख़ून बह रहा था। जान पड़ता था जैसे दाँतों से टकरा कर ओंठ फट गया था।

भरी पूरी बस के सारे आदमी बिना चूँ-चाँ किये चुपचाप सारी घटना देखते रहे। बहुत दिनों तक लगातार देख-सुन-समझकर अच्छी तरह विचार कर लेने के बाद लोगों ने कुछ भी न देखने और कुछ भी न सुनने का अभ्यास अच्छी तरह कर लिया था। ज़रूरत पड़ने पर ही सड़क पर निकलते। बिना किसी बिपत-आफ़त में फँसे, शरीर को ज्यों-का-त्यों, बिना कहीं चोट-चपेट लगवाए घर लौट आना ही बड़े भाग्य की बात है।

औरों को दोष देने से क्या लाभ ? त्रिदिव चौधरी ने भी उस आदमी का पक्ष ले, उसके समर्थन में कुछ नहीं कहा। वैसे भीतर-ही-भीतर वह बहुत ज़्यादा उत्तेजित हो उठे थे। उन्होंने देखा कि कई नौजवान छोकरे मिलकर बिना किसी कारण के ही उन्हें पीट रहे हैं। शारीरिक और मानसिक यन्त्रणा से वे छटपटा रहे हैं तो भी वे एक शब्द भी कुछ नहीं बोल सके। अनजाने ही उन्हें डर हुआ कि अगर कुछ बोले तो ये छोकरे उनसे ही बदला लेंगे। वैसे उनमें इतना साहस नहीं है, यह तो अभी स्पष्ट देख ही लिया। लेकिन अँधियारे रास्ते पर एक बूढ़े आदमी के सिर पर पीछे से छड़ या टाँगी से एक चोट मार देने में तो कोई बड़े साहस की ज़रूरत नहीं होती।

परन्तु इसी बीच महिलाओं की सीट पर से उछलकर एक महिला ने शरारती लड़कों का प्रबल विरोध किया।

"अभी मैं नहीं हूँ समझ कर क्या कह रहे थे ? इतने सबके बाद भी क्या बातें बक रहे थे ? घर पर तुम्हारी माँ की, बहन की नहीं है क्या ?"

वह भद्र महिला उन्हीं के बस ठहराव पर उतरी। त्रिदिव चौधरी की नज़रों में अभी बच्ची ही तो है। उम्र तीस से कम ही होगी। वह अभी भी उत्तेजित ही थी। नहीं तो बस से

उतर कर जिसे जिस ओर जाना होता है वह तेज़ी से उसी ओर सरक जाता है। किसी को किसी दूसरे की ओर देखने की फ़ुरसत ही नहीं, ज़रूरत ही नहीं।

"देखा आपने इन दुष्ट छोकरों का काण्ड ? बस में चढ़ पाना भी भयंकर दण्ड हो गया है। लेकिन कोई दूसरा उपाय भी तो नहीं। कैसी-कैसी बेहूदगियाँ करते हैं। हम तो मुँह से उन्हें बोल भी नहीं सकतीं। नौकरी करनी है तो बस में तो चढ़कर जाना ही पड़ेगा। पैदल चलकर तो इतनी दूर जा नहीं सकतीं।"

"कहाँ नौकरी करती हैं आप ?"

"पंचायत कार्यालय में। लेकिन आप मुझे 'आप' क्यों कह रहे हैं ? मैं तो आपकी छात्रा रही हूँ।

"अच्छा ! तो तुम्हारा नाम क्या है ?"

"रेणु दास।"

नाम जानने से भी कोई लाभ नहीं। दो क़दम और आगे चलने के बाद त्रिदिव चौधरी फिर नाम भूल जाएँगे।

' बस से आना-जाना हमेशा बहुत ही कष्टकर है। लेकिन करें क्या ? दूरी भी तो कोई कम नहीं।"

"कष्ट सहने में भी कोई आपत्ति नहीं। जब नौकरी किए बिना काम नहीं चलने का, तब नौकरी तो करनी ही पड़ेगी। मगर यह आने-जाने का काम ही बहुत मुश्किल की बात है। बस में जाने की कल्पना से ही पूरे शरीर में क्या तो हो जाता है।"

त्रिदिव चौधरी का मन खट्टा हो गया। क्या हो गया है आजकल के इन नौजवानों को ? अत्यन्त दुखी और निराश भाव से जब अपने घर पहुँचे तो देखा कि युगल और एक और नौजवान उनके बरामदे में बेंत की कुर्सियाँ डाले बैठे हैं। युगल उनकी भतीजी का लड़का है। रात बीतने पर सवेरे-सवेरे बिछौने पर से उठते समय आजकल चौधरी का सिर चकराने लगता है, उन्हें बहुत तकलीफ़ महसूस होती है। अतः आज उनके ब्लडप्रेशर की जाँच करवाने की गरज़ से युगल अपने साथ अपने एक दोस्त डाक्टर को ले आया है।

"ऐसी वृद्धावस्था में भी इधर-से-उधर कहाँ-कहाँ घूमते-फिरते हैं। आखिर क्या खोजने के लिए इतना दौड़ते-धूपते हैं, मैं तो समझ ही नहीं पाता।"

"अरे तू कब आया ?···और फिर बैठने के लिए कुर्सी कैसे पा गया ?"

"मुझे आए काफ़ी देर हो गई। मैंने देखा कि दरवाज़ा तो बन्द है, अब क्या करूँ। आगे तो आपने खूब भारी-भरकम ताला लगा रखा है, मगर पीछे का दरवाज़ा तो खुला है। और इधर आपका कहीं कुछ पता ही नहीं।" फिर तो मैंने स्टोव जलाकर चाय-नाश्ता भी किया।

"चलो अच्छा हुआ। यह कौन है ?"

"भवेश बरा। मेरा साथी, एक अच्छा चिकित्सक। आपके रक्तचाप को दिखाने के लिए साथ ले आया।"

ये युवक वग़ैरह भी तो नौजवान लड़के हैं। भला इन सबको वे बिगड़े हुए, बुरे वाहियात लड़के कह सकते हैं ? नहीं-नहीं, सभी नौजवानों को बुरा कहना ठीक नहीं है। चौधरी का दिल खुश हो गया। मन का सारा मलाल जाता रहा। युगल वग़ैरह दुष्टता करनेवाले, गुण्डई करने-वाले लड़के नहीं। हवा के अनुसार उसी में उड़ते-इतराते फिरने वाले भी नहीं। इनमें बहुत अच्छा उत्तरदायित्व बोध है। बड़ों के प्रति आदर-आतिथ्य, सबके प्रति परस्पर प्रेम है। अच्छे

आदर्शों के प्रति निष्ठा है। त्रिदिव चौधरी बहुत सारी जग़हों पर उनके विचार और उनके रास्तों को ज्यों-का-त्यों कबूल नहीं कर पाते, उन्हें समर्थन नहीं दे पाते परन्तु उनकी निष्ठा, उनके विश्वास के प्रति श्रद्धा करते हैं।

युगल भी त्रिदिव चौधरी का बहुत आदर-सम्मान करता है। श्रद्धा करता है। चौधरी कोई एक बड़े आदमी तो नहीं हैं परन्तु एक बहुत अच्छे आदमी हैं। बड़ा और अच्छा ये दोनों शब्द प्रत्येक क्षेत्र में समान अर्थ देने वाले, पर्यायवाची शब्द नहीं हैं। युगल प्रायः ही तर्क-वितर्क करता है, प्रायः ही उत्तेजित हो उठता है, बौखला जाता है। ऐसे में चौधरी हँसते हैं। उसने राज गोपालाचारी द्वारा संपादित महाभारत का संक्षिप्त संस्करण पढ़ रखा था। इसी महाभारत की कथा को लेकर तर्कातर्की होने लगी।

"भारतीय धार्मिकों के आदर्श पुरुष हैं युधिष्ठिर। जिनके चरित्रानुसार अच्छा होने की कोई आवश्यकता नहीं, बस अपने को अच्छा दिखाना ही काफ़ी है। कौन आदमी है जो चौबीसों घण्टे अन्याय का काम करता है? स्वार्थ सिद्धि के लिये अपना मतलब गाँठने के लिए अन्याय करना या झूठ बोलना या गलत काम करना दोष नहीं है। वैसे तो अपनी ज़रा भी इच्छा नहीं है लेकिन करूँ क्या धर्म की रक्षा करने के लिए लाचार होकर यह काम कर रहा हूँ। परन्तु अन्ततः अपना ही तो लाभ है।"

युगल की ऐसी बातें सुन चौधरी हँसते हैं—

"अरे रुको, ज़रा रुको तो।"

"अच्छा, आप ज़रा द्रौपदी से विवाह करने की घटना को ही लीजिये। अनजाने बेचारी माँ ने कुछ ऐसा-वैसा कह दिया। मगर तब तो माँ की बात को अक्षर-ब-अक्षर मान लिया गया। भला क्यों? नकुल और सहदेव जैसे छोटे भाइयों के साथ रही एक युवती महिला को ये बड़े भाई लोग किस अक्ल से पत्नी मान प्यार करते थे। अरे उसे छोड़ भी तो सकते थे।"

"वाह्-वाह्! तुमने तो बड़ी अच्छी व्याख्या निकाली। एकदम निराली।"

"अरे यह सब विचार-विवेक का धर्म नहीं। सुविधावादी धर्म है। भविष्य में आ सकने-वाली आपत्ति की शंका भर से परिवार के पाँच लड़कों को आग में जलाकर मार डालने के षड्यंत्र के खिलाफ़ जो आदमी आवाज़ नहीं उठा सका उसे और कोई क्या कहता है कहे, उसकी मर्ज़ी, परन्तु जहाँ तक मेरा सवाल है मैं तो उस को धार्मिक नहीं मान सकता।"

"अरे रहने दो। ये सब बातें अभी नहीं समझ सकोगे। उम्र कुछ बड़ी होने पर अपने आप समझ जाओगे।"

चौधरी से युगल का सम्बन्ध केवल रिश्तेदारी का ही सम्बन्ध नहीं, अतिशय घनिष्ठता का भी है। युगल के आते ही उनका मन प्रफुल्लित हो जाता। चूँकि वे अकेले-अकेले रहते हैं अतः युगल प्रायः ही उनकी खोज-ख़बर लेने आता रहता। ज़रूरत पड़ने पर उनके यहाँ दो-एक दिन ठहर भी जाता।

"अच्छा बाबा, आज मुझे एक बात जी खोलकर साफ़-साफ़ बता दें। आपने शादी-ब्याह क्यों नहीं किया?"

"उसके लिए समय ही नहीं पा सका।"

"देखिये झूठी बातें मत बोलिये। स्नान करने का समय है, भोजन करने का समय है और शादी-ब्याह करने का ही समय नहीं है? ऐसी बात मत करिये।"

"तो क्या नहाना-धोना, भोजन करना और विवाह करना सब एक ही बात है? आज

तो मैंने यह नई बात सीखी ।"

"ओ बाबा ?"

"क्यों क्या हुआ ?"

"सच-सच कहिये न, आप किसी के प्रेम में पड़ गए थे क्या ?"

चौधरी हँसने लगे ।

युगल ने उनसे फिर पूछा —"अच्छा ज़रा मुझे बताएँ तो, आखिर किसको प्यार किया था ।"

"क्यों, तुम यह जानकर क्या करोगे ?

चौधरी अतिशय गम्भीर हो गए ।

"अच्छा यदि यह सुन लेने का तुम्हारा इतना ही आग्रह है तो सुनो । मैंने एक परी को प्यार किया था ।"

"ओ ! और फिर आपसे भी अच्छे वर से विवाह ठीक हो जाने पर, उस परी ने आपको ठेंगा दिखा दिया । निराश करके चली गई । बहुत बुद्धिमान परी थी न ।"

"नहीं प्यारे । तुम ग़लत समझ रहे हो । वस्तुतः परी को सभी बहुत प्यार करते हैं, लेकिन दुर्भाग्य कि परी इसका तनिक भी आभास नहीं पा पाती । उसे ज़रा सा भी अहसास नहीं लग पाता ।"

त्रिदिव चौधरी हँसने लगे । उन्होंने एक सुन्दर काव्य की रचना कर दी । लेकिन क्या आप समझते हैं कि यह पूरा-का-पूरा काव्य है ?

असमिया से अनूदित : डा० महेन्द्रनाथ दुबे
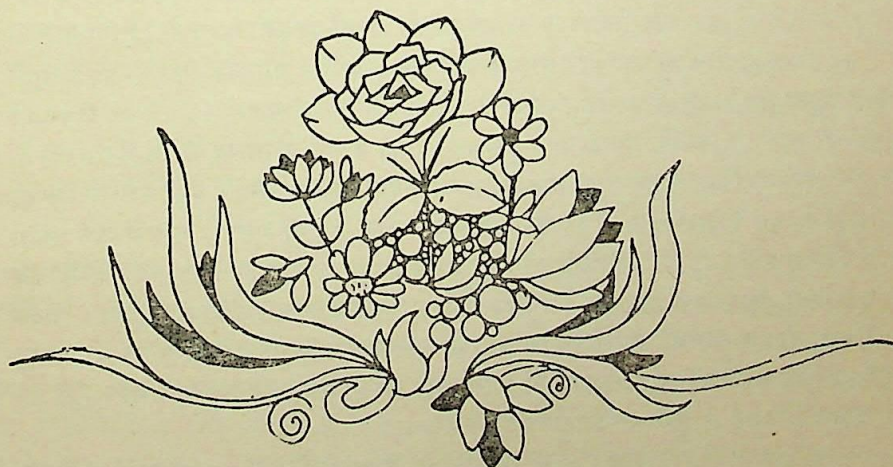
मायावी हिरन

□ जगन्नाथ प्रसाद दास

रिहर्सल के दसवें दिन मानसी ने साफ़-साफ़ कह दिया कि यदि असली हिरन नहीं लाया गया तो वह सीता का रोल नहीं करेगी। मानसी की इस अप्रत्याशित माँग को लेकर दो मत दिखायी दिये। पहला मत, जिसका प्रवर्तक स्वयं नाटक का निर्देशक था, यह था कि मंच पर हिरन की आकृति ही काफ़ी है, क्योंकि नाटक बहुत कुछ दर्शकों की कल्पनाशक्ति पर भी निर्भर करता है, अतः मंच पर एक ज़िंदा हिरन लाना नाट्यकला का अनादर करना होगा। दूसरे पक्ष का मत था कि आधुनिक युग में वास्तविक चीज़ें, जैसे कोयले की खान में पानी घुसना, गाँव में आग लगना आदि, दिखलाकर नाटक को दर्शकों के और भी करीब लाया जा रहा है, अतः इस दृष्टि से स्टेज़ पर एक ज़िंदा हिरन एक ओर से दूसरी ओर भागते दिखाना कतई असंगत नहीं होगा। नाटक का लेखक, जो शुरू-शुरू में रिहर्सल में रुचि लेता था लेकिन बाद में नाटक में तोड़ा-मरोड़ी, काटा-छाँटी होते देखकर अब सिर्फ़ चुपचाप बैठा करता था, मन ही मन पहले मत का समर्थक होते हुए भी, इस तर्क-वितर्क में दूसरे मत का समर्थन करने लगा।

काफ़ी वाद-विवाद के बाद संस्था की ओर से 'मायावी हिरन' नाटक करने का फैसला किया गया था। एक पौराणिक कथानक को किस तरह आधुनिक प्रतीकात्मक नाटक में रूपांतरित किया जा सकता है, यह नाटक उसका उदाहरण था; या यों कहें कि उदाहरण होने का दावा करता था। नाटककार का कहना था कि उसने अपने नाटक में सीता को एक रक्त-माँस की नारी

के रूप में दिखलाने की कोशिश की है एवं रामायण की इस मानवीय व्याख्या में सोने का हिरन सेक्स अथवा यौन प्रवृत्ति का प्रतीक है। निर्देशक को नाटककार की यह बात अर्थहीन लगती थी। इसलिये वह नाटक को और भी आधुनिक और प्रतीकात्मक बनाने हेतु उसमें मनचाही तोड़-मरोड़, काटा-छाँटी किया करता था। यह बात नाटककार और निर्देशक के बीच मनमुटाव का कारण बनी हुई थी और वे दोनों अभिनेता, अभिनेत्री एवं संस्था के अन्य कार्यकर्ताओं को अपनी-अपनी तरफ़ खींचने में जुटे हुए थे।

हिरन को लेकर, जो नाटककार के मत में केवल एक प्रतीक मात्र था इसके अलावा कुछ नहीं, जब दोनों मत अपनी-अपनी चरम सीमा पर पहुँच गये, तब कोई-कोई इसका तटस्थ हल ढूढने की कोशिश करने लगा। एक ने मंच के पीछे पर्दा तानकर उस पर अफ्रीकी 'सफ़ारी' फ़िल्म के दौड़ते हुए हिरन वाला अंश दिखलाने का प्रस्ताव रखा। उस वक़्त मानसी निर्देशक को एक कोने में ले जाकर कुछ समझा रही थी। निर्देशक के समक्ष जब यह प्रस्ताव रखा गया, तो उसने फ़िल्म को नाटक का प्रधान शत्रु बतलाकर इस प्रस्ताव को एकदम ठुकरा दिया और कहा कि ऐसी स्थिति में वह भले ही सचमुच का हिरन मँगवा लेगा लेकिन फ़िल्मी हिरन कदापि नहीं। निर्देशक के इस मत ने नाटककार को उलझन में डाल दिया। जब नाटककार ने एक अन्य तटस्थ हल देते हुए हिरन की खाल से तैयार हिरन का उपयोग करने की राय दी, तो उसकी बात से कोई भी सहमत नहीं हुआ। मानसी के इस दावे ने रिहर्सल के बीच एक अस्वाभाविक मध्यांतर डाल दिया था।

हालाँकि अभिनय के क्षेत्र में 'मायावी हिरन' मानसी का पहला प्रयास था, फिर भी हरेक स्तर पर उसी के मत को प्रधानता दी जा रही थी। निर्देशक अन्य सभी अभिनेता-अभिनेत्रियों को हेय दृष्टि से देखता था, लेकिन मानसी को हमेशा मानसी देवी कहकर संबोधित करता, तथा उससे सम्मानजनक व्यवहार करता, जिसमें मात्र चाटुकारिता ही नहीं बल्कि भय का पुट भी रहता था। दूसरों की अभिनय क्षमता के लिये जहाँ निर्देशक ने एक अति उच्च मानदंड निर्धारित कर रखा था, वहीं वह मानसी के अति घटिया अभिनय की बिला वज़ह प्रशंसा किया करता था। निर्देशक अपने काम में दक्ष था और इसीलिए सभी उसकी इस मनमानी को स्वीकार लेते थे साथ ही यह बात भी सभी जानते थे कि भविष्य में निर्देशक की एक फ़िल्म बनाने की आकांक्षा भी है। मानसी के पति एक जाने-माने उद्योगपति थे और निर्देशक उनके ज़रिये अपनी उम्मीदों को साकार करना चाहता था।

बच्चे को बोर्डिंग स्कूल में भरती करवाने के बाद मानसी के पास जो फालतू वक़्त और घुटन रह जाती थी, उसे मिटाने के लिए उसने विभिन्न योजनाएँ बना रखी थीं। उसकी सबसे पहली योजना अपना मोटापा कम करना था और इसके लिए वह कई तरह के खेलकूद में मन लगाती थी। प्रसिद्ध टेनिस और बैडमिंटन कोच से क्रमशः पाँच और चार सप्ताह का प्रशिक्षण लेने के बाद आख़िर में उकताकर वह किसी पाँच तारा होटल के हेल्थ क्लब की सदस्या बन गई थी। लेकिन उसका शरीर उसकी कोशिशों की मुख़ालफ़त कर रहा था और अंत में जब वज़न मापी यंत्र के काँटे ने अपने पूर्व निर्धारित स्थान से खिसकने से जवाब दे दिया, तब मानसी ने कला की ओर ध्यान दिया। उसने तीन महीने तक एक विख्यात चित्रकार से तैल चित्र की शिक्षा ली और दो महीने तक एक अंतर्राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त उस्ताद से सितार वादन सीखा। लेकिन नृत्यकला में माहिर एक दक्षिण भारतीय गुरु ने उसे दो दिन से अधिक भारतनाट्यम् की शिक्षा देने से इन्कार कर दिया। मानसी अब तक शहर की विभिन्न कला संस्थाओं से गहरे रूप में जुड़

चुकी थी। नाटक उसके लिए एक नया क्षेत्र था और अब वह अभिनय कला पर अधिकार करने का निर्णय भी ले चुकी थी।

मानसी की इन योजनाओं में उसका पति अनंग जी-जान से सहयोग देता था, क्योंकि इसकी वजह से, अनंग के समय में से मानसी का दावा, बहुत कुछ कम हो जाता था। अब मानसी समय-असमय न तो अनंग के दफ़्तर में फ़ोन करती और न ही विभिन्न चीज़ें खरीदने अथवा उसे साथ लेकर विभिन्न स्थानों पर घूमने जाने को कहती। बीच-बीच में अनंग उसे विभिन्न कला संस्थाओं से जुड़ने के लिए उत्साहित किया करता और इसके लिए वह विभिन्न कला संस्थाओं को दान देने से हिचकिचाता नहीं था। यह जानकर उसे बेहद खुशी हुई कि मानसी ने अभिनय करने का निर्णय ले लिया है, क्योंकि सारी रिहर्सलें शाम को ही हुआ करती थीं। अपने दोस्तों को घर बुलाकर अपनी इच्छानुसार उनका सत्कार करना अब उसके लिए आसान हो गया था।

अपनी अभिनय कुशलता पर मानसी को अगाध आस्था थी और उसे इस बात पर लेशमात्र भी संदेह नहीं था कि अन्य कलाओं की अपेक्षा इस कला में वह सहज ही अपनी निपुणता दिखलाकर प्रसिद्धि हासिल कर सकती है। वह अपनी अब तक की अनाविष्कृत प्रतिभा से अनंग को वाक़िफ करवाना चाहती थी और इसीलिए उसने आज अनंग को रिहर्सल देखने को बुलाया था। किसी कमज़ोर घड़ी में अपनी काल्पनिक बोर्ड मिटिंग की बात भूलकर अनंग ने इसके लिए हामी भर दी थी। इस समय वह अपने एक मित्र के घर पर सिर्फ़ तीसरे पेग पर था। घड़ी में समय देखकर वह स्वयं पर खीझ उठा। रिहर्सल वाले स्थान पर टेलीफ़ोन होता तो वह अपनी 'बोर्ड मीटिंग' से फ़ोन करके मानसी से कह देता कि उसे पहुँचने में आधा घंटा विलम्ब होगा, लेकिन यह संभव नहीं था। एक ही बार में गिलास खाली करके वह मानसी से मिलने निकल पड़ा।

नाट्य-संघ के जिस कमरे में रिहर्सल चल रही थी, वह खूब छोटा और गंदा था। वहाँ पहुँचकर अनंग ने सबसे पहले, जिस कुरूप व्यक्ति को देखा, उसे चौकीदार समझकर रिहर्सल के बारे में पूछा। वास्तव में वह व्यक्ति निर्देशक था और अनंग की ही प्रतीक्षा कर रहा था। वह अनंग को अन्दर लिवा ले गया। कमरे की दो सही सलामत कुर्सियों में से एक पर मानसी बैठी हुई थी और दूसरी कुर्सी, जो कि निर्देशक के लिए थी, पर अनंग बैठ गया। अनंग को दिखाने के लिए निर्देशक ने उस शाम की रिहर्सल को पुनः दोहराने का आदेश दिया। हालाँकि सभी लोग उस वक़्त घर जाने के मूड में थे, लेकिन निर्देशक के तेज़ मिज़ाज और अनंग की उपस्थिति की वज़ह से उन्होंने कोई आनाकानी नहीं की। यहाँ तक कि नाटककार भी चुप रहा।

ह्विस्की के तीन पेगों के हल्के-हल्के नशे में अनंग को सारा कुछ सपना-सा लग रहा था। मानसी की परिचारिका की भूमिका वाली लड़की और राक्षसी की भूमिका वाली वयस्का भद्र-महिला, उसे अति सुंदर दिख रही थीं। पात्रों की नपी-तुली गतिविधियों एवं नाटकीय शैली के संवादों ने उसे मोह लिया था, अतः वह ताली बजाते हुए वाह! वाह! करने लगा। इस वक़्त सभी लोग अनंग पर खुश थे और जब निर्देशक ने हिरन विषयक् मतभेद उसके सामने समाधान के लिए रखा, तो किसी ने कोई आपत्ति नहीं की। हालाँकि निर्देशक ने उससे यह बात अवश्य बतला दी थी कि असली हिरन का प्रस्ताव सबसे पहले मानसी ने ही रखा था। बोर्ड मीटिंगों में सभापतित्व करने में अभ्यस्त अनंग कुछ देर तक आँखें बंद करके उस समस्या पर गहराई से विचार करने का ढोंग करने लगा। फिर आँखें खोलते हुए धीमे से 'रियल इज़ ब्यूटिफुल' कहा और उसके बाद ज़ोर से बोला, सचमुच का हिरन ही ठीक रहेगा। इस तरह सच और झूठ के हिरन के द्वन्द्व में

सच की ही जीत हुई।

नाटककार, जो कि संस्था के गठनकर्ताओं में से एक था, ने इस समय परिस्थिति को अपने हाथों से निकलते देखा एवं विरोध करने की कोई गुंजाइश न पाकर सिर्फ़ 'हिरन मिलना भी तो चाहिए' कहते हुए एक स्वगतोक्ति दी। निर्देशक, नाटककार पर कड़ी नजर रखे हुए था। वह उसकी स्वगतोक्ति को निर्विरोध नहीं छोड़ना चाहता था। उसने अपना स्वर ऊँचा करते हुए 'मिल जाएगा' कहा और उसके बाद अनंग को देखकर 'है कि नहीं?' पूछा। अनंग उस वक़्त राक्षसी की ओर देखकर कई असंगत बातें सोच रहा था। निर्देशक के प्रश्न से उसका ध्यान टूटा और उसने कहा, 'हाँ, मिल जाएगा। मैं इंतज़ाम कर दूँगा। हिरन की क्या कमी है, चाहे जितने ले लो।' इस बार निर्देशक ने खुल्लम-खुल्लारूप से नाटककार की ओर उपेक्षा भरी नज़रों से देखा। नाटककार, जो कि बग़ैर किसी काम-धाम के रिहर्सल कक्ष में बैठा रहता था, उठते हुए यह कहकर वहाँ से चला आया कि उसे बहुत ज़रूरी काम है।

मायावी हिरन की रिहर्सल नियमित रूप से चलती रही और मानसी ने अपने अभिनय में अच्छी प्रगति की। नाटककार ने अब रिहर्सल में बंद आना कर दिया था। जिसकी वजह से नाटक को अपनी इच्छानुसार परिमार्जित और परिवर्द्धित करने में निर्देशक पर अब कोई प्रतिबंध नहीं था। अब तक उसने मानसी को अपने विश्वास में ले लिया था और उसे अपनी परिकल्पित फ़िल्म ट्रिलोजी की बात भी बतलायी। रिहर्सल की प्रगति के साथ-साथ फ़िल्म की कहानी के विषय में मानसी को संक्षिप्त सूचना मिलने लगी थी और वह उससे प्रभावित भी हो चली थी। निर्देशक मानसी के अभिनय की भूरि-भूरि प्रशंसा किया करता और मानसी ने भी उसे भावी सत्यजित राय का सम्मान देना शुरू कर दिया था। थियेटर के बाद फ़िल्म को ही अपनी कला का अगला माध्यम बनाने के लिए मानसी ने मानसिक रूप से फैसला कर लिया था।

उस दिन रिहर्सल से लौटने के बाद अनंग वाकई बोर्ड-मीटिंगों में व्यस्त हो गया और नाटक की बात एकदम ही भूल गया। एक दिन अपने उन्हीं दोस्तों के साथ बैठकर, ह्वीस्की का तीसरा पेग पीते-पीते, उसे यकबयक राक्षसी की याद आ गयी और उसने यह निश्चिय किया, कि आज रिहर्सल से मानसी को खुद लेने जाएगा। इसी वक़्त उसे हिरन की बात भी याद आयी और उसने इसके लिए टोनी का नंबर डायल किया। टोनी का नाम भले ही कुछ और था, लेकिन वह इसी नाम से प्रसिद्ध था। हर असंभव को संभव करना उसकी विशेषता थी। सरकारी दफ़्तरों के गोपनीय कागज़ातों की नकल वह पलक झपकते ला सकता था और ठीक-ठाक कमीशन पा जाने पर निषेधक चीज़ों का लाइसेंस और कोटा भी दिलवा देता था। सरकारी, राजनीतिक और सामाजिक क्षेत्रों में उसकी काफ़ी जान-पहचान थी। उसका यह दावा था कि उसके लिए कोई भी काम असंभव नहीं है। काम के बारे में टोनी बहुत कम बातें किया करता था। जब अनंग ने उससे हिरन के बारे में कहा, तो उसने और कुछ न पूछते हुए अनंग से सिर्फ़ इतना ही पूछा कि कितने हिरन चाहिएँ। एक-आध ज़्यादा हो तो भी कोई फ़र्क नहीं पड़ता ऐसा सोचकर अनंग ने दो हिरन का आर्डर दे दिया। टोनी ने पूछा 'मादा या नर।' इस बात ने अनंग को कुछ दुविधा में डाल दिया लेकिन उसने कहा 'कोई भी चलेगा।' टोनी ने पूछा 'कब चाहिए।' अनंग ने कहा, 'जितनी जल्दी हो सके।' टोनी ने कहा, 'डन्।'

उस दिन मानसी को लेने जब अनंग रिहर्सल स्थल पर पहुँचा, बाहर कोई उसकी प्रतीक्षा नहीं कर रहा था। वह सीधे अन्दर चला गया। रिहर्सल अभी समाप्त नहीं हुआ था, इसलिए उसकी ओर किसी ने ध्यान नहीं दिया। टुटही कुर्सी पर बैठते हुए उसने चारों ओर निगाह

दौड़ायी। तीन पेग के बाद देखी हुई सुंदरी स्त्री, आज चार पेग के बाद राक्षसी जैसी दिखलायी दी और नाटक के जिस भाग का रिहर्सल हो रहा था वह भी उसे बहुत नीरस और उबाऊ लगा। अपना रोल ख़त्म करके राक्षसी उसके पास पड़ी कुर्सी पर आ बैठी तो, पिछली बार अपने दोस्त के घर, अनंग ने जो व्हिस्की पी थी, उसके विदेशी होने पर उसे संदेह हुआ। उसने कभी भी रिहर्सल में न आने की क़सम खायी और मन ही मन कई काल्पनिक ज़रूरी कामों की सूची बना डाली। काफ़ी देर के बाद रिहर्सल खत्म होने पर जब निर्देशक ने उसकी ओर देखा, तब तक अनंग का धैर्य अपनी चरमसीमा पर पहुँच चुका था। बग़ैर किसी हलो-हाय के निर्देशक ने उससे पूछा,— 'क्या हुआ हिरन का ?' अपनी आवाज़ में भरपूर अवहेलना भरकर अनंग ने कहा,— 'सही वक़्त पर मिल जायेगा।'

दो दिन बाद, शाम को निर्देशक को साथ लेकर मानसी घर आयी। उस रोज़ दफ़्तर में, दिनभर कार्यव्यस्तता की वज़ह से, अनंग ने घर लौटकर सोचा था कि चैन से विश्राम करेगा, लेकिन काले बादल की तरह वह व्यक्ति कमरे में घुस आया एवं सबसे आरामदायक सोफ़े पर बैठ गया। सामान्य रूप से उसको हलो कहते हुए अनंग ने सिगरेट का धुंआ छोड़ा और ऊपर की ओर ऐसे तकने लगा मानो उस धुंए में अनेक ऐसे रहस्य हैं, जिन्हें तत्काल समझ लेने की आवश्यकता थी। निर्देशक इससे विचलित होनेवाला नहीं था। वह सीधे बार के पीछे जा खड़ा हुआ और बोतलों को टोहने लगा। मानसी के यह कहने पर कि यहाँ उसे रम नहीं मिलेगी, वह दो गिलासों में स्कॉच डालकर अपनी जगह पर लौट आया और एक गिलास अनंग की ओर बढ़ा दया। उसका अनौपचारिक व्यवहार अनंग को पसंद नहीं आया, इसलिए उसने कोई दूसरा ड्रिंक लेने का बहाना बनाकर गिलास लौटा दिया और खुद बार के करीब चला गया। निर्देशक इससे भी विचलित नहीं हुआ। उसने एक गिलास गटगटाकर पी लिया और खाली गिलास मानसी की ओर बढ़ाकर फिर दूसरे गिलास में जुट गया।

अपना गिलास भरते समय अनंग को इस बात पर आश्चर्य हो रहा था कि मानसी को निर्देशक के रम पीने की आदत के बारे में कैसे पता चला। इस वक़्त उसे मानसी का व्यवहार रत्ती भर भी नहीं सुहा रहा था। वह उस कलूटे मोटे निर्देशक को किस तरह बेइज्ज़त करे इस बारे में सोचने लगा। किंतु अनंग के हाथो से वह मौका छीनते हुए निर्देशक ने उलटकर उसी से कहा,—'कल से रिहर्सल में हमें हिरन की ज़रूरत होगी।' उसे बग़ैर कोई जवाब दिये, अनंग टोनी से बात करने टेलीफ़ोन के पास गया। टोनी, जो बहुत कम बातें करता था, ने सिर्फ़ इतना ही कहा,—'कल दस बजे दफ़्तर में।' निर्देशक के सामने आकर अनंग ने जिस लहजे में कल भिजवाने की बात कही उसमें अब तुम जा सकते हो का इशारा भी था।

किन्तु निर्देशक को इन छोटे-छोटे संकेतों की परवाह नहीं थी। वह पूरे दो पेग लेने तक वहीं बैठा। उसे प्रसन्न करने की जिम्मेवारी मानसी पर छोड़कर अनंग उन सभी नये रहस्यों का हल ढूंढ़ने में मशगूल हो गया जो अभी-अभी सिगरेट के धुंए से निकलकर उसके जूते, टेबुल और दीवारों में कैद हो गये थे। अनंग बैलन्स शीट पढ़ने में सिद्धहस्त था। उसने तुलना करके देखा कि इस व्यक्ति को बेइज्ज़त करके, घर से निकालने में जितना आनंद मिलेगा, उससे कहीं ज्यादा आनंद, मानसी के प्रतिदिन घर से, तीन घंटा बाहर रहने में था। इसलिए वह चुप रहा और अगले दिन शाम को, हिरन भिजवा देने के बाद, अपनी ज़िन्दगी से इस काले-अध्याय को भूल जाने का उसने निश्चय कर लिया।

अगले दिन ठीक दस बजे टोनी दफ़्तर में आ पहुँचा, बहुत कम बातें करने वाला टोनी

आज काफ़ी बकबक किये जा रहा था। उसने एक छोटा-सा भाषण दिया, जिसमें वाइल्ड लाइफ़ नियमावली, एस. पी. सी. ए. आदि पर विस्तृत चर्चा थी और जिसका सारांश यह था कि हिरन नहीं मिलेगा। यह बात कहते समय टोनी काफ़ी विवश और लज्जित दीख रहा था। उसने अनंग का गुस्सा चुपचाप सह लिया। जाते समय सिर्फ़ इतना ही बोला, 'नहीं, यह संभव नहीं। बंबई से फ़िल्म स्टारों को लाना आसान है लेकिन हिरन कहीं से भी लाना संभव नहीं।'

टोनी के हार स्वीकार करते ही अनंग जान गया कि उसे एक जोखिमभरी ज़िम्मेवारी से जूझना है। सेक्रेटरी को बुला उस दिन के अपने सभी कार्यक्रम रद्द करवाकर वह हिरन पाने के बारे में सोचने लगा। टोनी ने उसे सारी असुविधायें बतलायी थीं। वन्य जीवन क़ानून के अनुसार कोई भी व्यक्ति हिरन नहीं पाल सकता। चिड़ियाघर में हिरन मिलेंगे, लेकिन वहाँ से जानवरों को बाहर निकालने की इजाज़त नहीं है, आदि। हिरन और कहाँ मिलेंगे, यह जानने के लिए अनंग ने वन्य-जीवन विभाग के दफ़्तर में फ़ोन किया। उन्हें भी इस बात की जानकारी नहीं थी, फिर भी उन्होंने उसे दो संस्थाओं के नाम दिये। एक संस्था का दफ़्तर उसे टेलीफ़ोन पर तुरंत मिल गया। उसने उनसे हिरन के बारे में पूछा। उन्होंने उससे उद्देश्य पूछा एवं थिएटर की बात सुनकर उसके नाम पर मुकदमा चलाने की धमकी दी। उन्होंने उसका नाम जानना चाहा, लेकिन अनंग ने रिसीवर रख दिया।

दूसरी संस्था का टेलीफ़ोन न मिलने की वजह से वह उनका पता ढूँढते-ढाँढते खुद वहाँ जा पहुँचा। शहर के जनाकीर्ण हिस्से में एक छोटे-से कमरे में उस संस्था का दफ़्तर था। दफ़्तर में सिर्फ़ एक ही कुर्सी थी और उस पर विराजमान सज्जन विशेष कार्यव्यस्तता का ढोंग कर रहे थे। अनंग ने उनसे हिरन के बारे में पूछा। उस व्यक्ति ने उसे कई पुस्तिकायें पकड़ा दीं। कमरे में और भी कुर्सियाँ हो सकती हैं ऐसा सोचकर अनंग ने इधर-उधर निगाह दौड़ायी लेकिन उस व्यक्ति ने 'दफ़्तर नया खुला है' कहकर अपना मुँह दूसरी ओर फेर लिया। पुस्तिकाओं के पृष्ठ पलटने पर हिरन, कुटुरा, बारहसिंगा, चित्तल इत्यादि हिरन-परिवार की विभिन्न जातियों के बारे में अनंग को काफ़ी कुछ जानकारी मिली, जैसे कि भारत में हिरनों की संख्या कितनी है, किस जाति के हिरन के सींग में शाखा-प्रशाखा हैं, आदि। लेकिन जब अनंग ने यह प्रश्न किया कि थियेटर के लिए हिरन कहाँ मिलेगा, तो उस भद्र व्यक्ति ने इसके प्रति अपनी अज्ञानता प्रकट करते हुए इस बात की पुनरावृत्ति की कि दफ़्तर अभी नया खुला है। जब अनंग वहाँ से चलने को हुआ तब उस व्यक्ति ने उससे परिदर्शन-रजिस्टर पर दस्तख़त करने को कहा। वास्तव में वह दफ़्तर अभी नया खुला था, क्योंकि उस रजिस्टर पर अभी तक केवल एक ही दस्तख़त था। अपना दस्तख़त करते समय अनंग ने यह भी ग़ौर किया कि रजिस्टर का वह पहला दस्तखत टोनी का था।

वहाँ से आकर अनंग ने ड्राइवर को छुट्टी दे दी और खुद गाड़ी चलाने लगा। हठात् उसे याद आया कि एक बार शहर के बाहर स्थित कुछ फॉर्म-हाउसों में उसने मोर टहलते देखे थे। संभव है, वहाँ किसी ने हिरन भी पाल रखा हो। ड्राइवर के साथ घर-घर घूमकर हिरन तलाशने के बजाय उसने अकेले जाना उचित समझा। उस इलाके में चार बार चक्कर लगाने के बाद भी अनंग को कुत्ते और मुर्गियों के अलावा अन्य कोई जानवर दिखायी नहीं दिया। आख़िरकार बाध्य होकर वह एक मकान के पास उतरा और बाहर खड़े बच्चे से पूछा, 'मेरा हिरन खो गया है। क्या तुमने यहाँ हिरन का बच्चा देखा है?' अँगुली से इशारा करते हुए बच्चे ने एक मकान की ओर संकेत किया। अनंग दोहरे उत्साह से उस ओर लपका। फाटक पर पहुँचकर

उसने अंदर लॉन की ओर देखा और वहाँ एक सुंदर चितकबरे हिरन का बच्चा देखकर अपनी आँखों पर विश्वास नहीं हुआ। फाटक पर लगी 'कुत्ते से सावधान' दफ़्ती को नज़रअंदाज़ करते हुए वह सीधे अंदर चला गया और कॉलिंग-बेल का बटन दबा दिया। यकबयक दो घटनाएँ एक साथ घटीं। दरवाज़ा खोलकर एक मुछंदर हाथ में बंदूक लिए बाहर निकला एवं लॉनवाला हिरन का बच्चा कुत्ते की तरह भौंकता हुआ उसकी ओर दौड़ आया। हिरन-परिवार के बारे में हालाँकि उसके हाल ही का ज्ञान खूब सीमित था, फिर भी वह इतना तो समझ ही गया था कि यह जानवर हिरन नहीं है, बल्कि कोई विचित्र जाति का कुत्ता ही है। अनंग की सुध-बुध अच्छी थी। वह अनायास ही कैप्टन कुमार के मकान के बारे में पूछ-ताछ करके वहाँ से निकल आया।

उस वक़्त शाम हो चुकी थी। वह घर की ओर चल पड़ा। वह मन ही मन उस छोटे बच्चे को गालियाँ देता जा रहा था और हिरन के बजाय कुत्ते का इस्तेमाल करने की सलाह से खीज रहा था। घर के ड्राइंग-रूम में पहुँचकर वह देखता है कि कालापहाड़ उसके सबसे प्रिय सोफ़े पर जमकर बैठा है और उसके हाथ में गिलास है। नीचे बैठकर मानसी कोई कापी अति तन्मयतापूर्वक देख रही थी। अनंग को देखते ही वह उठकर खड़ी हो गयी और रूखे स्वर में बोली, 'तुम्हारी वजह से आज रिहर्सल बन्द रहा। हिरन कहाँ है?' अनंग ने कहा, 'शो के दिन मिल जायेगा हिरन, अभी रिहर्सल में उसकी क्या ज़रूरत है?' मानसी ने नाक फुलाते हुए कहा, 'तुम नाटक के बारे में कुछ जानते भी हो? डग् स्तानिस्लाव्स्की में विश्वास करता है,' स्तानिस्लाव्स्की कौन है, क्या है, न जानने पर भी अनंग इतना जरूर जानता था कि यह एक ऐसा शब्द है जिसके द्वारा थियेटर के लोग अन्य लोगों को अपने सम्मोहन की परिधि में उलझाए रखते हैं, जवाब के तौर पर अनंग यह कह सकता था कि वह पीटर ड्रूकर में विश्वास करता है, लेकिन इस वक़्त वह जवाब देने के मूड में नहीं था। निर्देशक की ओर देखे बग़ैर वह अपना गिलास लिये हुए अंदर चला गया।

निर्देशक ने एक ही बार में आधा गिलास खाली कर दिया और मानसी के हाथ से उस कापी को लेकर देखने लगा, जिसे अब वह शूटिंग स्क्रिप्ट कहने लगा था। कापी पर 'पांचाली'। जो कि उसकी परिकल्पित फ़िल्म का शीर्षक था, काटकर 'मानसी' लिखा गया था। उसने जिस दिन से मानसी को देखा था, उसी दिन से उसके मन में, यह धारणा दृढ़ हो चुकी थी, कि सिर्फ़ वही फ़िल्म की अभिनेत्री बन सकती है। यह बात निर्देशक ने उससे बतलायी और इस बात से मानसी बेहद प्रभावित हुई। जब सारे पांचाली शब्दों को काटकर उनके स्थान पर मानसी लिखा हुआ स्क्रिप्ट निर्देशक ने उसके हाथों में थमा दिया, तब मानसी के मन में कोई संदेह नहीं बचा। वह निर्देशक को और भी अधिक श्रद्धा और सम्मान की नज़रों से देखने लगी। यद्यपि निर्देशक का चेहरा मासूमियत भरा था, परंतु वह खूब चतुर और चालाक था उसे मालम था कि जब तक मानसी उसके चंगुल में है वह फ़िल्म बनाने में अवश्य क़ामयाब होगा। रिहर्सल के बाद वे लोग फ़िल्म के बारे में बातचीत किया करते थे एवं फ्रिज, ओके शट, क्लोज-अप आदि फ़िल्म सम्बन्धी बोझिल शब्द कह-कहकर निर्देशक ने मानसी को चकित कर दिया था। अब वह मानसी को मानसी देवी नहीं कहता था और निर्देशक, जिसका वास्तविक नाम दुर्गादास था, अब मानसी के लिये सीधा-सादा डग् हो गया था।

हिरन पाने के लिए अगले दिन अनंग ने दो नये तरीके अपनाये। अखबार के व्यक्तिगत कालम में उसने एक इश्तहार दिया; हिरन द-ड़ियर लवर्स क्लब अपना पूरा ब्यौरा देते हुए

लिखें, पोस्ट बॉक्स नम्बर इत्यादि। दफ़्तर न जाकर वह शहर के सबसे बड़े पशु-चिकित्सालय के सामने अपनी गाड़ी खड़ी करके वहीं डटा रहा। हालाँकि पशु-चिकित्सालय नौ बजे खुल जाना चाहिए था, लेकिन चौकीदार ने नौ बजकर सैंतालीस मिनट पर आकर इसका फाटक खोला। इतनी देर तक बैठा-बैठा अनंग बोर हो जाता, लेकिन उसके चारों ओर आ-जा रहे जन-प्रवाह में एक अद्‌भुत खिचाव था। वह बिना किसी काम के एक जगह बैठा बाहर की पृथ्वी का पहली बार अवलोकन कर रहा था। यह उसके वातानुकूलित दुमंजिले कमरे के अंदर से नीचे रास्ते का वह दृश्य नहीं था, जहाँ से एक विचित्र दृष्टिकोण से देखने पर लोग बौने लगते थे। इस समय वह लोगों को उन्हीं की ऊँचाई से देख रहा था जो कि उसके लिये एक संपूर्ण नया अनुभव था। साधारण जीवनयात्रा में इतने प्रकार के रंग भरे हो सकते हैं, यह अनंग को पहली बार मालूम हुआ।

फाटक खुलने के बाद चिकित्सालय में पहला जीव दस बजकर बारह मिनट पर घुसा उसके पहनावे और चाल-ढाल से अनंग ने अंदाज़ा लगाया कि वह डॉक्टर है। मानो डॉक्टर के आने का समय सबको मालूम था, क्योंकि उसके आने के दो ही मिनट के अँदर रोगियों का ताँता लग गया। रोगियों में सबसे अधिक संख्या कुत्तों की थी। जिस रोगी ने चिकित्सालय में घुसने के लिये अपने मालिक को नाकों चने चबवा दिये थे, वह एक गधा था। दस बजकर तैंतालीस मिनट पर एका-एक रोगियों का आना बंद हो गया और अनंग को प्यास भी लग आयी। करीब कोई ऐसी दुकान नहीं थी, जहाँ से चिकित्सालय का फाटक दिखलायी दे। इसलिये अनंग गाड़ी से उतरकर रास्ते के किनारे हाल ही में आ बैठे चायवाले के पास गया और एक कप चाय माँगी। एक टुटहे गिलास में चाय वाले ने उसे जो गरम पानी दिया था उसके स्वाद का और पहले पी गयी विभिन्न स्वादों के कई तरह की चाय का कोई संबंध नहीं था। लेकिन अनंग को यह स्पेशल चाय बुरी नहीं लग रही थी, बल्कि उसने चायवाले के पास, काँच के जार में रखे दो सस्ते बिस्कुट भी चाय के साथ खाये। उसी वक़्त चिकित्सालय के गेट पर एक ताँगे को रुकते देख वह जल्दी-जल्दी अपनी गाड़ी में लौट आया। किंतु ताँगे में कोई नहीं था। ताँगेवाला ताँगे से घोड़ा खोलकर उसे गेट के अंदर ले गया।

दिन के दो बजे उसने तय किया कि वह वहाँ इंतज़ार नहीं करेगा, क्योंकि आसपास के लोगों ने अब उसे कुछ संदेह भरी निगाहों से घूरना शुरू कर दिया था। कृत्रिम प्रजनन के लिये आयी गायें, कुत्ते, गिलहरियाँ एवं नेवले तथा उस गधे और घोड़े के अलावा और किसी भी तरह का जानवर अंदर नहीं गया था। रोगियों में हिरन परिवार के सदस्यों की तो बात ही अलग है, यहाँ तक कि हिरन के रंग का चितकबरा कुत्ता भी नहीं था। सिर्फ़ एक जानवर को वह ठीक से पहचान नहीं पाया था। वह जानवर गधे जितना ऊँचा था और ऊँट की तरह दिखता था तथा घोड़े की तरह चलता था। यह जानवर हिरन नहीं हो सकता, अनंग ने मन में ऐसा निश्चय कर लिया था और ठीक दो बजे अपने पहरे की जगह छोड़कर वह घर लौट आया।

बैठक के सबसे आरामदायक सोफ़े पर निर्देशक विराजमान था। उसके हाथ में बियर का मग था। मानसी नीचे बैठकर बियर पीते हुए कागज़ पर कुछ नोट कर रही थी। अनंग को देखकर काफ़ी परेशानी के साथ उठकर निर्देशक ने उसका अभिवादन करते हुए बैठने को कहा और बियर पीने का निमंत्रण दिया। यदि उसे प्यास न लगी होती तो अनंग अंदर चला जाता, लेकिन वह अपनी प्यास पर काबू न पा सका और वहीं निर्देशक के बगल में जा बैठा। निर्देशक आज अच्छे मूड में था। वह अनंग से हिरन के बारे में कुछ पूछे बगैर अपनी फ़िल्मी योजना के

बारे में बताने लगा। अनंग को मानसी से यह सूचना भी मिली कि वे लोग इस फ़िल्म को बनाने का फैसला भी कर चुके हैं और निकट भविष्य में अभिनेता और तकनीशियनों को साइन करने बंबई जा रहे हैं। अनंग के व्यापार में मानसी अपने पिता की ओर से हिस्सेदार थी और उसे अपना पैसा चोरों में बाँट देने की पूरी छूट थी। अब तक यह बात निर्देशक को भी मालूम हो चुकी थी, और इसलिये अनंग ने ख़ामोश रहना बेहतर समझा। वह निर्देशक को उसकी फ़िल्म बनाने के लिये छोड़ सब कुछ भुला पाता तो खुश होता, लेकिन निर्देशक उसे इतनी आसानी से छोड़ने वाला जीव नहीं था। उसने अनंग से कहा—'हिरन न मिलने तक हमने रिहर्सल बंद कर दी है। हिरन मिलने पर फिर रिहर्सल शुरू कर देंगे।'

हिरन न मिलने का बहाना बनाकर निर्देशक ने नाटक छोड़कर फ़िल्म में ध्यान लगाया और मानसी के साथ घंटों बैठकर अपने स्क्रिप्ट में और भी फेर-बदल करने लगा। अनंग जानता था कि हिरन न मिलने तक यह क्रम जारी रहेगा। यद्यपि इससे उसके पारिवारिक जीवन में विघ्न पड़ता था, लेकिन वह हिरन पाने में सफल न हो सका। अनंग की परेशानी अब तक मानसी जान चुकी थी और इस कमज़ोरी का फ़ायदा उठाकर वह बीच-बीच में अनंग से हिरन के बारे में पूछने लगी थी। उसके हावभाव से अब यह नहीं लगता था कि नाटक की ओर भी उसका झुकाव है। अब हिरन मिलने की उम्मीद प्रायः खत्म हो जाने पर भी मिल जायेगा कहकर अनंग बात को टाल देता था। लेकिन एक लम्बी अवधि बीत जाने पर भी हिरन की तलाश में कोई प्रगति नहीं हो सकी। उसके काल्पनिक डियर्स क्लब में सिर्फ़ एक ही चिट्ठी आयी थी, जो कि अनंग के लिये काफ़ी व्यंग्यात्मक थी। चिट्ठी किसी रामायण प्रचार सभा की ओर से आयी थी। वे सम्पूर्ण रामायण का आयोजन करना चाहते थे और उसके लिये हिरन कहाँ से मिलेगा इस बारे में उन्होंने जिज्ञासा प्रकट की थी।

अंत में अनंग को एक अप्रत्याशित सूत्र से हिरन मिल गया। उसके दफ़्तर की मेज़ पर उसके एक मित्र ने 'द बक् स्टाप्स हिअर' नामक बोर्ड देखा और कुछ याद कर किसी को फ़ोन करके हिरन के बारे में पूछा। हिरन का नाम सुनकर अनंग चौंक उठा। पूछने पर पता चला कि उसका मित्र, जिसने ढेर सारे कुत्ते पाल रखे थे, अब किसी से एक हिरन लाने के चक्कर में था। लेकिन जिस सज्जन के पास हिरन था वह किसी को अपने पास फटकने तक नहीं देता था। अनंग ने अपने मित्र से अपनी समस्या बतलायी। उसके मित्र ने पुनः उन सज्जन को फ़ोन करके किराये पर देने के बारे में पूछा। इस बार उस व्यक्ति ने इनकार नहीं किया। उसके मित्र ने अनंग को एक पता देकर उस व्यक्ति से किसी भी दिन शाम को मिलने को कहा। यह शुभ सूचना देने के लिये अनंग ने घर पर फ़ोन किया, लेकिन मानसी घर पर नहीं थी। उसी दिन शाम को पता तलाशते हुए अनंग हिरन देखने चल पड़ा। शहर की तलहटी में एक संकरी गली में उस आदमी का मकान था। हिरन का शौक रखने वाले सज्जन का मकान अनंग की कल्पना से परे था। यह एक अति जीर्ण-शीर्ण छोटा-सा मकान था। उस दिन बिजली चली जाने की वजह से मकान के अंदर एक मोमबत्ती टिमटिमा रही थी। अनंग की आवाज़ सुनकर जो सज्जन बाहर आये वे भी अनंग की कल्पना से परे थे। पूछने पर पता चला कि वे सज्जन किसी दफ़्तर में कोई छोटी-सी नौकरी करते हैं। वे अनंग को अंदर कमरे में लिवा गये और अपनी पत्नी एवं पुत्र से उसका परिचय करवाया। अनंग ने मकान के रूप में जो कुछ देखा वह एक छोटी-सी कोठरी भर थी जो कि उठने-बैठने, सोने, खाने सभी तरह के काम आती थी और उससे लगा हुआ बरामदा रसोई का काम देता था। इस छोटी-सी कोठरी के घुटन भरे अँधेरे माहौल में

बैठकर अनंग ने अपने आने का अभिप्राय बतलाया। उन लोगों ने सोचा था कि हिरन की ज़रूरत किसी फ़िल्मी काम के लिये होगी, अत: थियेटर की बात सुनकर कुछ उदास जान पड़े। किंतु वे अनंग को हिरन देने को तैयार थे। भद्र महिला ने अपने बेटे से हिरन लाने को कहा।

घर के पिछवाड़े से जिस जानवर को साथ लेकर वह लड़का लौटा, वह हिरन है देखकर अनंग की खुशी का ठिकाना न रहा। उसने हिरन के सींग, नाखून और कान छूकर अपनी आँखों को विश्वास दिलाया और चैन की साँस ली। अगले दिन आकर हिरन ले जाने की बात तय हुई, लेकिन अनंग को बग़ैर चाय पिये जाने देने को यह भद्र महिला तैयार न थी। बाहर बरामदे रूपी रसोई में चाय बनाते हुए उसने अनंग को उनके अपने बारे में कई बातें बतलायीं। वे लोग कितने सालों से यहाँ रहते हैं, हिरन कहाँ से मिला, उनकी एक बहन की शादी कहाँ हुई है, उनके बेटे को हिरन पालने का शौक कैसे हुआ, इत्यादि। चाय पीते हुए अनंग ने तीनों को बारी-बारी से देखा। इस वक़्त उन लोगों के ख़ामोश रहने पर भी अनंग को लगा मानो उसके अंदर स्नेह का एक अनवरत संवाद चल रहा है। ऐसा स्नेह जो उन सज्जन की आँखों से उनकी पत्नी की आँखों में और फिर उस लड़के की आँखों में घूम फिर कर अंत में उसे भी संक्रमित कर रहा था। उसे ऐसा लगा कि इन कुछ ही पलों में वह इस अपरिचित परिवार के खूब करीब आ चुका है।

घर लौटने पर बैठक में मानसी और निर्देशक को न पाकर अनंग खुश हुआ। लेकिन उसकी खुशी क्षणिक थी। बैठक की एयरकंडीशन मशीन खराब होने की वज़ह से दोनों सोने के कमरे में बैठकर शूटिंग स्क्रिप्ट पर चर्चा कर रहे थे। अनंग ने उन्हें हिरन मिल जाने की सूचना दी, लेकिन यह बात सुनकर निर्देशक ने सिर्फ़ 'ठीक है'—कहा और मानसी अपना चेहरा क्लोजअप में देखने के लिये आईने के पास चली गई। अनंग ने निर्देशक से कहा कि अब वे रिहर्सल प्रारम्भ करें कल उनके रिहर्सल के समय हिरन पहुंच जायेगा। निर्देशक इस खबर से अधिक खुश नहीं दिख रहा था। अनंग के आ जाने पर, मानो उनकी किसी अति गंभीर चर्चा में, विघ्न पड़ गया हो ऐसा मुँह बनाते हुए— 'हाँ ठीक है' कहकर निर्देशक वहाँ से चला आया।

उस दिन, रात को अनंग और मानसी के बीच जो झगड़ा हुआ, उसका कारण यह था कि बोर्डिंग स्कूल में बबलू के पास अनंग को पत्र लिखना था जो उसने नहीं लिखा था। अनंग द्वारा बबलू को स्कूल से लौटा लाने की धमकी देने पर, मानसी ने अनंग पर दोषारोपण करते हुए कहा कि, वह बबलू का भविष्य बर्बाद करने का षड़यंत्र रच रहा है। आख़िर में उस दिन के उनके झगड़े की समाप्ति इस तरह हुई : मानसी ने बंबई चले जाने की धमकी दी और अनंग बंद पड़े एयरकंडीशन वाली बैठक में जाकर पीने लगा।

दूसरे दिन अनंग ने सारा समय दफ़्तर में बिताया। शाम को दफ़्तर से ही हिरन लेता हुआ सीधे रिहर्सल स्थल पर पहुँचना चाहता था। फ़िलहाल यह काम उसके लिए एक अनावश्यक ज़िम्मेवारी थी जिससे वह जितनी जल्दी हो सके उबरना चाहता था। आज भी उन सज्जन के इलाके में अँधेरा था, लेकिन वह व्यक्ति और उसका बेटा पूरी तैयारी के साथ हिरन थामे हुए उसके आने की प्रतीक्षा कर रहे थे। गाड़ी में घुसने के लिये हिरन ने थोड़ी-सी आनाकानी की, लेकिन अंत में वे लोग हिरन लेकर रिहर्सल-स्थल पर जा पहुँचे। अनंग वहाँ पहुँचकर सबको हतप्रभ कर देना चाहता था, किंतु इस समय वहाँ सिर्फ़ टूटी कुर्सियों के अलावा

और कुछ नहीं था। पूछने पर पता चला कि रिहर्सल तो पिछले कई दिनों से बंद है। अपमान, गुस्सा और अशांति के घूंट भरकर अनंग नीचे उतर आया और हिरन वाले सज्जन से क्षमा माँगते हुए, ड्राइवर से घर की ओर चलने को कहा।

मानसी घर पर भी नहीं थी। नौकर ने सूचना दी कि दोपहर को अपना सूटकेस लेकर एयरपोर्ट गयी थीं, फिर नहीं लौटीं। अनंग ने टोनी को फ़ोन करके उसी दिन रात की फ़्लाइट से बंबई के लिये टिकट बनवाकर एयरपोर्ट पर उसकी प्रतीक्षा करने को कहा और अपना ब्रीफ़केस लेकर बाहर चला आया। वे सज्जन और उनका बेटा गाड़ी में बैठे थे। हिरन छटपटा रहा था और वह लड़का उसे पुचकारता जा रहा था। उन्हें घर छोड़ता हुआ अनंग सीधे एयरपोर्ट जाने की सोचकर गाड़ी में जा बैठा।

जब वे लोग पुनः उस संकरी गली में पहुँचे, बिजली आ चुकी थी। भद्र महिला बाहर खड़ी प्रतीक्षा कर रही थीं। उन्होंने उन सबों को इस तरह से अभिवादन किया मानो वे लोग काफ़ी अरसे के बाद मिल रहे हों। वे हिरन के रिहर्सल की बात सुनने को व्याकुल थीं, लेकिन रिहर्सल न होने की बात सुन वे काफ़ी दुःखी हुईं। घर लौटकर अब तक चुप हिरन में यक़बयक़ स्फूर्ति आ गयी और वह छलांगें भरने लगा। भद्र महिला चाय बनाने जा रही थीं, किंतु अनंग के मना करने पर वे सज्जन उसके लिये दुकान से शीतल पेय लाने चले गये। उस महिला ने अपने बचपन में खेले एक असफल नाटक की बात बतलायी एवं कल से फिर रिहर्सल शुरू हो जायेगा कहकर दिलासा दी। वे सज्जन शीतल पेय लेकर लौट आये और उन्होंने हिरन को कटोरी में तथा दूसरों को गिलास में पीने को दिया। इस समय तक अनंग बुरी तरह थक चुका था और पीते समय पुनः उनकी ओर देख रहा था। उन सज्जन ने हिरन के शांत स्वभाव के बारे में कहा, महिला को कुत्ते के मरने की बात याद आयी और लड़के ने जाकर हिरन को अपनी बाँहों में भर लिया। प्लेन का समय हो रहा था, इसलिये अनंग ने गिलास रखकर उठना निश्चित किया।

महिला ने कहा—'आप हमारे यहाँ खाना खाकर जाइएगा' उन सज्जन ने कहा, 'क्यों नहीं' और लड़का अनंग की सहमति की प्रतीक्षा में हिरन को छोड़कर उसकी ओर देखने लगा। अनंग ने पुनः उन सबों के चेहरे की ओर देखा। पारिवारिक आनंद का वैद्युतिक प्रवाह, जो इस कमरे की चारों दीवारों से टकराकर लोगों समेत कुर्सी, टेबुल और हिरन का स्पर्श करता हुआ सारे कमरे में फैल चुका था, उसके शरीर को भी छू गया। इस पल अनंग मानसी निर्देशक, मायावी हिरन, वातानुकूलित दफ़्तर, बैलेंस-सीट, टोनी सब को भूल गया। वह कुर्सी पर और भी आराम से बैठता हुआ बोला—'अच्छा ठीक है'।

ओड़िया से अनूदित : राजेन्द्र प्रसाद मिश्र

माखन का घड़ा

□ सुनंदा बेलगाँवकर

अँधेरे का गला घोंट, मुर्गे ने बाँग दी। सुबह हो चली थी। पेड़-पौधों के बीच से चिड़ियों की चहचहाहट गूँज रही थी। ठंडी-ठंडी हवा खुली खिड़की से आती हुई बदन को छू रही थी। और आनंद दे रही थी। लगता है, माँ ने उठकर आँगन में पानी का छिड़काव किया है। सूखी मिट्टी पर पानी पड़ने से उठती महक, नासिका में छा गयी थी।

घर के आँगन में चहल-पहल थी। बैलगाड़ी आयी थी। बैल के गले की घंटियों की आवाज़ सुनाई दे रही थी। मैं अंग्रेजी-कवि कीट्स का 'ऑड आन ए ग्रेसियन अर्न' पढ़ रही थी, कि खिड़की से झाँक कर देखा।

मंगलवार था, साप्ताहिक बाज़ार का दिन। मक्खन बेचने वाली भरमी, अपने बेटे बसवण्णी के साथ आयी थी। हर हफ़्ते वह नौकर काला के साथ आया करती थी। शायद अब बसवण्णी के स्कूल की गर्मियों की छुट्टियाँ हैं।

भरमी को देखने में मुझे खुशी मिलती है। भरमी अच्छी-खासी तगड़ी औरत है। सुगठित जिस्म है। गौड़जी के प्यार से तृप्त होकर उसके अंग-उपांग भर गये हैं। बड़ी ही फुर्तीली है। ऐसी शिलाबालिका को देखना चाहिए। नाक में मोती की नथ इस कस्तूरी सुन्दरी को फबती है। बाजूबंद, नूपुर सा कंठाभरण, ऊपर गले में बंधा मंगलसूत्र और नीचे तक लटकता बड़ी-बड़ी मणियों वाला हार, कसकर बंधी हुई धारवाड़ी चोली, इसके अंदर पान-सुपारी की थैली। एड़ी

से ऊपर पहनी हुई इलकल साड़ी। पैरों में पैंजण, कमर में बंधा हुआ चाँदी का माणिक्य कन्दोरा, आकर्षक चेहरा। कंगनों से भरे हाथ, माथे पर बड़ा सिंदुरी टीका और सिर पर घूँघट। भरपूर मुक्त हँसी।

"मैया, पाय लागें।" कहकर शरीर को आधा झुकाये, मक्खन की भारी टोकरी ढोते हुए दहलीज पार की, और मक्खन-सी मुलायम बातें करती हुई भरमी ने घर के अन्दर पैर रखा। वह जब-जब आती, नौकर उसके आसपास मंड राने लगते।

"मैया, कैसी है?" वह पूछती।

"ठीक हूँ।" माँ रसोईघर से ही उत्तर देती।

"ऐसे ही रहो, गरीबों की माँ बनकर।" भरमी आशीष देती। "मैया, चाय बनाओ। ताजा दूध लायी हूँ, लो।"

माँ की दी हुई चाय पीकर भरमी फिर कहती—"मैया, तुम्हारे हाथ की चाय पीते ही सिरदर्द, आलस्य, बुखार-उखार सब छूमन्तर हो जाता है।"

"माखन क्या भाव दिया?" माँ पूछती।

"डेढ़ रुपया सेर।" भरमी उत्तर देती।

"जा, कहीं और जा। एक रुपये में सेर देती हो, तो दे।"

"नहीं मैया, वह बासी माखन है। इस माखन को खाकर देखो, कस्तूरी-जैसी सुगंध है।"

"भरमी, डेढ़ रुपिया हो तो मुझे तेरा माखन नहीं चाहिए।"

"गुस्सा मत हो। एक रुपया चालीस पैसे दे दूँगी, ले लो।" कहकर माँ को सता-सताकर हँसती हुई भरमी एक रुपये के हिसाब से हफ़्ते-भर के लिए बारह सेर, और कोई त्यौहार रहा तो उससे भी अधिक, मक्खन तौलकर दे जाती। भरमी का यह व्यवहार हमारे लिए कोई नया नहीं था।

हमारे आसपास के घर के लोग मंगलवार के दिन मक्खन के लिए हमारे यहाँ बर्तन रख जाते और माँ उन सबके लिए तुलवाकर रख देती।

भरमी के मक्खन का व्यापार हमारे घर के बड़े हाल में, मंगलवार को दस बजे शुरू होता और दोपहर के भोजन तक चलता रहता।

भरमी का मक्खन बहुत महकता है। मक्खन रखने का उसका तरीका साफ़-सुथरा है। सेर-भर मक्खन में पौने सेर से भी ज्यादा घी बनता है। इसलिए भरमी का मक्खन सबको भाता है। भरमी तौल में धोखा कभी नहीं करती। मक्खन तुलवाते हुए माँ कहती—

"भरमी, छाछ-दही अलग कर लो, और थोड़ा माखन और डाल।" तो वह कहती—"मैया, आप लोगों को धोखा दूँ तो शिवजी प्रसन्न होंगे? आप लोगों का विश्वास मुख्य है।" वैसा ही विश्वास उसने गौड़जी के साथ निभाया है। बदले में गौड़जी से भी उसे वैसा ही विश्वास मिला।

हफ़्ते में दो सौ से तीन सौ रुपये का मक्खन बेचकर, दोपहर का खाना हमारे यहाँ खाकर, भरमी साप्ताहिक बाज़ार समाप्त करती। रात को हमारे यहीं रहना और अगले दिन पौ फटने तक चाय पीकर, नबिलूर का रास्ता पकड़ना, उसकी आदत हो गयी।

मैं परीक्षा के लिए पढ़ रही थी। अगले महीने में वार्षिक परीक्षा है। जल्दी उठकर मुँह-हाथ धो, चाय पी चुकी थी। भूख लगी थी। भरमी आई, भैंस का ताजा मक्खन लायी है। खिड़की

के पास से नौकर को बुलाकर मैं बोली—"गुरुपाद, ब्रेड लाओ।" ब्रेड, माखन, पुटाणि चटनी-मुँह में पानी भर आया। फिर ऊपर से गरम-गरम चाय।

"अच्छा" कहने के बाद भी वह वहीं भरमी से बतियाता खड़ा रहा।

जिस दिन भरमी आती है, उस दिन वह बहुत उल्लसित रहता है—भरमक्का की मदद करने का बहाना। उसके साथ तांबूल खाने की आदत भी है। भरमी के घड़ों में लगे मक्खन को खुरच-खुरचकर निकालता; और यह सब गुरुपाद के हिस्से का होता। हफ़्ते में आध सेर के लगभग मुफ़्त मिल जाता। वह भरमी के घड़ों को धोने में भी मदद करता। रसोईघर से गरम पानी लाता और सीकाकाई पाउडर उपलब्ध कराता, फिर भूसा और सूखी घास से रगड़कर घड़ों में लगी चिकनाई निकालता, कुएँ से पानी खींचकर पत्थर की नाँद में भरता। भरमी कहती, "गुरुपाद, मेरा छोटा भाई, कितनी मदद करता है।"

"अरे, रहने दो। आज यह जान गयी तो गयी। तुम भी तो मुझे हर हफ़्ते आधा सेर मक्खन खिलाती हो।"

खिड़की से मुझे देखकर भरमी मुस्करायी।

"क्यों, पढ़ने लगी है? हमारा बसवण्णी का भी सालाना परीक्षा में पहला नंबर आया है। गणित और इंग्लिश में बहुत तेज़ है। चित्र बनाता है, कविता रचता है, गीत गाता है, नाटक में भाग लेता है, गेंद-बैट खेलता है—मेरा बेटा सबमें आगे है।"

अपनी माँ को अपनी प्रशंसा करते देख बसवण्णी मुस्कराया। बचपन में हम सब साथ मिलकर खेलते थे। जैसे-जैसे बड़े होते गये, हम आपस में बात करने से भी शरमाने लगे।

बसवण्णी माँ के बराबर लम्बा, सोलह साल का है। हट्टा-कट्टा शरीर है और गौड़जी जैसा ही रूप। हम उसे मज़ाक में 'माखन बसवण्णी' के नाम से पुकारते। चेहरे पर जवानी की पीठिका के रूप में प्रस्फुटित छोटी-छोटी मूँछें उग आई हैं। गाँव के गौड़जी के बेटे के ठाट-बाट का कहना ही क्या।

"अरे बसवण्णी, अगले साल एस. एस. सी. की परीक्षा दोगे ना?" मैंने पूछा।

"हाँ।" कहकर सिर हिला दिया।

"एस. एस. सी. में पढ़ाई बहुत रहती है। नबिलूर और धारवाड़ के बीच का प्रवास कष्टकर नहीं लगता?" मैंने पूछा।

बसवण्णी की ओर से भरमी ने उत्तर दिया, "आपके माँ-बाप ने इसे अपने घर में रख लेने का कहा है। वैसा ही करेगा। आपके घर में रहे कितने लड़के पढ़-लिखकर होशियार नहीं हुए? आपके पिताजी का बहुत डर रहता है।"

"सीखते समय सीखना चाहिए ना?

"हाँ जी! परसों हमारी गौरक्का ने डाँटा · ऐसे होनहार लड़के को भैंस चराने मत भेजो, पढ़ने दो, यह खानदान का चिराग है।" हमारी गौरक्का को बसवण्णी से उतना ही प्यार है जितना अपने बेटे मल्लप्पा से। त्यौहार के समय अपने बेटे के लिए एक जोड़ी कपड़ा लाती हैं मेरे बेटे के लिए दो जोड़ी लातीं हैं।"

हम दोनों इतनी देर तक उसी के बारे में बात करती रहीं। इससे बसवण्णी शरमा कर लाल-लाल हो गया। उसकी उम्र न बछड़े की थी और न साँड की। कुछ न सूझने के कारण

बसवण्णी मक्खन के घड़ों को गाड़ी से उतार कर टोकरी में रखने लगा।

मैं आकर कुर्सी पर बैठ गयी। फिर से 'ऑड आन ए ग्रेसियन अर्न' पढ़ने लगी। कीट्स मेरा प्रिय कवि है। वह मेरे अंतःकरण को छू गया है। उसकी कविताओं को पढ़ते समय मन को बड़ा आनंद मिलता है। उसमें भी 'ग्रेसियन अर्न' मुझे अत्यन्त प्रिय लगा। पिछली बार छुट्टी में आये हुए अंग्रेजी प्राध्यापक, जो मेरे काका ही हैं, ने कीट्स की कविताओं को इतना स्पष्ट समझाया था कि विद्यार्थियों में बहुत लोकप्रिय हो गये।

कीट्स ने अपनी इस कविता में सौंदर्य की महत्ता समझायी है। सत्य ही सौंदर्य है, सौन्दर्य ही सही है, यही जीवन का रहस्य है। यही कीट्स के जीवन का ध्येय है। उस दिन काका ने जो बात कही थी, याद आ गयी—

"अर्न, याने क्या? 'चिता की राख का घड़ा'। काव्यमय भाषा में 'चिता-भस्म कुंभ' कहेंगे। कीट्स की कविता का विषय है—'ग्रेसियन अर्न', ग्रीक चिता भस्म कुंभ।"

ग्रीक रत्न, चिता-भस्म-कुंभ के बाहरी भाग में शृंगार से भरपूर चित्र हैं, पुष्प-गुच्छा हैं, यौवनोन्मत विलासी कामिनियों के नृत्य की विभिन्न भाव भंगिमाएँ हैं। वर्णन करता हुआ कीट्स आगे बढ़ता है, लेकिन कुंभ के भीतर है चिता-भस्म, जो मृत्यु-स्मृति का संकेत है।

बाहर जीवन और भीतर मृत्यु! इस चिता-भस्म कुंभ के संकेत द्वारा कीट्स ने सौंदर्य की महत्ता समझायी है—जीते हैं उपभोग के लिए, मृत्यु की स्मृति के लिए नहीं। मृत्यु ताँडव नृत्य करे तो भी जीवन में क्रमशः उत्साह बढ़ता है। बैसाख पृथ्वी को जलाता है तो भी श्रावण की बारिश हरियाली उगाती है। यही जीवन है, यही सत्य है, यही सौंदर्य है। यही कीट्स का तत्व है।

नौकर ब्रेड ले आया था। माँ ने ब्रेड, माखन, पुटाणी चटनी, चाय, मेरे कमरे में ला दी। ऐसी माँ सबको मिले। हर माँ चाहती होगी कि उसकी बेटी बड़ी हो और अपने रसोईघर के काम में हाथ बँटाये। लेकिन मेरी माँ सोचती है—"पढ़ने के समय पढ़ने दो। लड़कियों को रसोईघर का काम आगे है ही।" ऐसे सुविचार की मेरी माँ, परीक्षा के समय हर सुविधा उपलब्ध करती थी।

मैंने ब्रेड में मक्खन लगाया। पुटाणी चटनी उस पर फैलायी। खाने लगी तो भरमी के मक्खन की खुशबू महक उठी। मुलायम ब्रेड, माँ की कूटी हुई पुटाणी चटनी, बड़ी ही स्वादिष्ट लगी। कमरे से ही चिल्लाई-"भरमी, माखन फर्स्ट क्लास!"

भरमी ने अंग्रेजी में उत्तर दिया—"थैंक यू।" भरमी का उत्तर सुनकर माँ हँस पड़ी। उनकी बातें सुनती हुई मैं, ब्रेड खाती रही।

"भरमी, तुम्हारा माखन आते ही मेरे बच्चों को ब्रेड खाने की इच्छा हो जाती है। और किसी का माखन वे खाते ही नहीं।"

"खाने दो मैया, बढ़ते बच्चे हैं। बच्चे ही तो जीवन हैं। नहीं तो क्या! पहनो, खाओ। फिर भी नंगा-भूखा! आप-जैसे लोगों के प्यार से ही मेरे मक्खन के धन्धे को यश मिला है। आपके बच्चे मक्खन खायें तो मेरे बेटे का पेट भरता है।"

भरमी की बात में मार्मिकता थी। "आपके बच्चे माखन खायें तो मेरे मेरे बेटे का पेट भरता है"—उसकी इस बात को मैंने दोहराया। माखन-जैसी ही नपी-तुली बात। भरमी बड़ी चतुर है। विश्वासपूर्ण बातों से ही उसने गौड़जी को जीता होगा!

मैं ब्रेड खाती रही। किताब जाँघ पर है। लक्ष्य उड़ गया है। गौरक्का और मल्लिकार्जुन को जब गौड़जी, पिताजी से जाँच कराने लाये थे तब गौरक्का अपने जीवन की जो कहानी माँ को सुना रही थी, मैंने भी सुन ली थी। कितनी विशाल हृदय की है! उसे भरमी से कोई द्वेष नहीं। बसवण्णी के प्रति अपने बेटे-जैसा ही वात्सल्य! लेकिन उसका मन गौड़जी के प्रति कड़वा हो गया था। इस स्तर के गौड़जी को ऐसा कार्य नहीं करना चाहिए था। इन पुरानी यादों ने मुझे घेर लिया।

नविलूर के शिवप्पा गौड़जी ने भरमी से प्यार किया। इससे दूध-जैसा परिवार फट गया। धर्मपत्नी गौरी, बेटा मल्लिकार्जुन कुछ समय के लिए गौड़जी के मन से दूर हो गये थे।

स्त्री माया है। विधवा भरमी दूध का धंधा करती थी। गौड़जी को भैंस बेचनी थी। भरमी पूछने आई। जवानी की दहलीज पर खड़ी, हरिणाक्षी का-सा सौंदर्य देखकर कोमल हृदयी गौड़जी ने भैंस कम दाम में उसे बेच दी। अगले दिन सफ़ेद धोती, रेशमी कमीज़, लाल जरी की शाल, सोने के पट्टे की घड़ी और पैरों में चमड़े की चप्पल-बिल्कुल दूल्हा-सा सजधज कर खुद भैंस पहुँचाने भरमी की कुटिया पर गये।

भरमी अभी-अभी सिर धोकर अपने लम्बे-लम्बे बालों को फैलाकर, धूप में सुखा रही थी। उन काले घने उलझे बालों को सुलझा रही थी वह। गौड़जी को देखकर खुलकर हँस पड़ी।—"पाय लागे माय-बाप"—कहकर, झुकने से नीचे गिरे पल्लू को संभाल कर ओढ़ लिया घुटने तक लटकते बालों को झटक कर ऊपर उठाया। और जूड़ा बाँधकर जब भरमी ने अपनी कसी हुई चोली की बाँह दिखायी, गौड़जी का शरीर पुलकित हो उठा। अंग-प्रत्यंगों में नशा-सा छा गया। मोम की गुड़िया-जैसी रूपवती पत्नी से अधिक यह शिलामूर्ति उनके शरीर को गरमाने लगी।

भैंस और पैसे, दोनों गँवाकर, भरमी को पाने का उत्साह लिये गौड़जी घर लौटे। गौरी-जैसी पत्नी भी उन्हें फीकी लगी। जैसे-जैसे दिन बीतते गये, वैसे-वैसे भरमी के प्रति उनका मन अधिक तीव्र होता गया। दिमाग़ में अनेक मधुर सपने। सपने साकार करने के लिए हाड़-माँस ने संगीत प्रदान किया। चोर बिल्ली की भाँति वे भरमी की झोंपड़ी में गये। पहले भय था, बाद में निर्भय। तांबूल बनाकर देते हुए रोम-रोम से भरे गौड़जी के सीने पर भरमी ने अपना माथा रख दिया। प्यार बढ़ते-बढ़ते मन से पलँग तक पहुँच गया। प्यार और उभरा, गौड़जी ने भरमी के जीवन में सुख भर दिया। बँजर भूमि सावन की बारिश से नहा गयी। जीव से जीव पनपा।

कई रातें भरमी की झौंपड़ी में ही बितायीं। आखिर गौड़जी ने अपने अमरूद के बगीचे में उसके लिए एक बड़ा खपरैली घर बँधवा दिया। भैंसें खरीद लीं। नौकर नियुक्त कर दिये। भरमी मक्खन का धँधा करने लगी।

गौड़-भरमी के प्यार का समाचार गौरी के कानों में पहुँचा। पहले तो उसे विश्वास नहीं हुआ, पर धीरे-धीरे दोनों का संबंध बाहर फैला तो जीवन से निराश होकर गौरी अपने बेटे के साथ हुब्बल्ली में मायके चली गयी।

गौरी के अभाव में घर गौड़जी को महालक्ष्मी-रहित बैकुंठ लगने लगा। एक सप्ताह की इन्तजारी के बाद गौड़जी ने नौकर को हुब्बल्ली भेज किया। पर गौरी ने आने से इन्कार कर दिया। गौड़जी का मन पागल कुत्ते की तरह तड़प उठा। उन्हें लगा, जीवन नग्न होकर

लोगों के सामने आ गया है। पत्नी और बेटे के न होने से मानसिक व्यथा में गौड़जी भरमी से बोले, "गौरा आने को तैयार नहीं है।" भरमी ने सलाह दी—"आप खुद जाकर लिवा लाइए।" गौड़जी को सलाह जँच गयी। एक दिन वे स्वयं कार लेकर ससुराल पहुँच गये।

ससुर नहीं थे। उनकी मृत्यु हुए दो साल हो चुके थे। विधवा सास, दामाद से कुछ नहीं बोली, लेकिन बेटी से बोली, "गौरा, स्त्री के लिए मायका हमेशा का नहीं है। मैं भी बूढ़ी हो चुकी हूँ। माँ के मरने के बाद मायका नहीं रहता। विवाहित स्त्री खानदान के लिए पराई होती है। पतिदेव बुलाने आये हैं, चली जाओ।"

रात भर गौरी सोचती रही—मुझमें अभी जवानी है, बेटा छोटा है, पति के रहते भी विधवा-सी रहूँ? रो पड़ी। भगवान को स्मरण किया। जीवन के प्रति आस्था जागी। गौड़जी को मुझसे प्यार है, इसीलिए खुद आये हैं। एक बार पैर फिसल गया है, मर्द की बुद्धि है। भरमी को छोड देंगे। मुझे पहले से अधिक प्यार करेंगे, जी-भरकर प्यार करेंगे। बदन गरमा गया, नींद नहीं आई। माँ ने ठीक ही कहा है.—"विवाहित स्त्री खानदान के लिए परायी होती है, स्त्री के लिए मायका हमेशा का नहीं है।" रात में निर्णय कर लिया, गौड़जी के साथ नबिलूर जाने के लिए। तैयार हुई और माँ को प्रणाम किया। "सधवा बनी रहो, सावित्री बनो"— माँ ने आशीष दिया। "सावित्री" की भाँति मैं भी अपने पति को जीत कर लौट रही हूँ। मन उमड़ आया था, जुबान मूक बन गयी थी। काला धुआँ उगलती कार, शाम को नबिलूर पहुँच गयी।

उस दिन रात में गौड़जी भरमी के घर नहीं गये। पत्नी और बेटे से घर भर गया। अब घर उनके लिए स्वर्ग-सा बन गया था। अपने आपको भूलकर, पँख फैला कर, नाचते मयूर की तरह गौड़जी मधुर स्वप्नों में खोये हुए पत्नी की पीठ के पीछे-पीछे घूमते रहे। गौरी ने स्नान किया। काली चंद्रकाली साड़ी पहनी, जो गौड़जी को बहुत प्रिय लगती थी। शिवजी की पूजा की। रसोई बनायी। गौड़जी को खाना परोसा। रात हुई तो वह सोने के लिए गौड़जी के कमरे में नहीं गयी। गौड़जी पत्नी का इन्तज़ार करते रहे। काफ़ी समय बीत गया तो पत्नी के कमरे तक आये और दरवाज़ा खटखटाया। कमरे में दीप जल रहा था। गौरी 'शिवलीला' पढ़ रही थी।

"क्यों, यहाँ क्यों लेटी हो गौरा?"

"कहाँ लेटना चाहिए?"

"मुझे छोड़कर सोओगी?"

"आप ही मुझे छोड़कर अलग सोये, उसका क्या?"

"तुम क्या कहना चाहती हो गौरा?"

"भरमी को छोड़ दीजिए।"

"वचन भंग होगा, उसे छोड़ना संभव नहीं है।"

"तो मेरा आपके साथ सोना भी संभव नहीं।"

"गौरा, भरमी माँ बनने वाली है।"

गौरा की छाती धड़क उठी। गुस्सा उमड़ा, दुखी हुई। फिर रोती हुई बोली—"उसी के साथ रहिए, मुझे क्यों लाये?"

"जिस घर में तुम न हो, वह मेरे लिए श्मशान है गौरा।"

"और मेरे मन का क्या, जिसमें आप न हों?" गौरा ने तुरंत पूछा।

"अक्ल मारी गयी थी, गलती हो गयी। एक गलती के लिए सौ गलतियाँ अब मत

कराओ गौरा।" गौड़जी ने गिड़गिड़ाकर क्षमा माँगी।

"मुझ जैसी पत्नी के रहते हुए भी आपकी अक्ल मारी गयी।"

"गौरा, तुम मनभायी हो और भरमी तन-भायी।"

गौरा रो रही थी कि गौड़जी की बात सुनकर पगली-सी हँस दी।

"आपके मन को एक, और तन को दूसरी चाहिए ? अच्छा, आपकी ज़ुबान से शिवजी बुलवा रहे हैं ? आपको मन देती हूँ मैं, तन क्यों दूँ ?" साफ़-साफ़ गौरा ने कह दिया। इसके बाद गौरा गौड़जी के साथ कभी नहीं सोयी। इस डर से गौड़जी ने उसे और नहीं छेड़ा कि जोर-ज़बर्दस्ती की तो कहीं जान न दे दे।

लेकिन गौरा ने गौड़जी का घर सँवार दिया। गौड़जी के भाई-बहनों की, जो पहले भाभी थी, अब माँ बन गयी। खेती बाड़ी, बाग-बगीचे, नौकर चाकर, संबंधी, सबको सँभालने लगी। बेटे को गौड़जी के घर का दीपक बनाया। अपने और गौड़जी के बीच जो दरार थी, वह बेटे को भी नहीं बतायी। भरमी-बसवण्णी के प्रति कभी द्वेष नहीं किया। सब निगल लिया, पचाने वाली आग की भाँति सदा जलती रही।

मक्खन तौलने का काम ख़त्म हो चुका था। बसवण्णी हिसाब लिख रहा था। भरमी ने फिर से चाय पी और ताँबूल खाया।

"मैया, आधी रकम दो तो बाज़ार जाकर आती हूँ। युगादी त्यौहार के दिन बसवण्णी का जन्म-दिन है, कपड़े खरीदने हैं।"

"क्यों, दोपहर को खाने नहीं आओगी ?" माँ ने पूछा।

"नहीं मैया। हमारा बसवण्णी धारवाड़ रेस्टोरेंट का मसाला-दोसा खाना चाहता है। रात का खाना तुम्हारे घर होगा। रसम और कैरी की चटनी बनाना।"

"यह क्या माँ, ऐसा खाना पकाओ— वैसा खाना पकाओ, कहकर आर्डर दे रही हो ?" बसवण्णी ने झिझककर कहा।

"यह डाक्टर साहब का घर मेरे लिए मायका है, समझे ? तेरे पैदा होने से लेकर अब तक इस घर में माखन दे रही हूँ। क्यों मैया, है ना ?" माँ से पूछा।

उसकी बात सुनकर माँ का अन्तर पिघल पड़ा। माँ अधिक बोल नहीं पायी।

"तुम्हारे विश्वास से बढ़कर क्या है ? खाना बनाकर रखती हूँ भरमी।" माँ ने कहा।

अगले दिन भरमी को नबिलूर निकलने में देर हो गयी। मैं और पिताजी चाय पी रहे थे कि माँ ने भरमी से कहा—"इस हफ़्ते का माखन युगादी त्यौहार तक ख़त्म हो जायेगा, अगले हफ़्ते ज़रा ज्यादा लाना।"

"अच्छा मैया।" उसने कहा।

"भरमी, चाय पियेगी ?" पिताजी ने पूछा।

"मैं पी चुकी हूँ, आप पीजिए। बसवण्णी, दोनों के पैर छू लो।" भरमी ने अपने बेटे से कहा।

माँ-बेटे मुझे और माता-पिता को प्रणाम कर, बैलगाड़ी में सवार हो गये।

भरमी के जाने के बाद घर सूना-सूना लगने लगा।

"भरमी आती है तो मानो एक बाज़ार ही लग जाता है।" माँ बोली।

"फ़ुर्तीली स्त्री है। हमारे गौड़जी पर शासन करती है।" पिताजी बोले।

मंगलवार का दिन। परीक्षा के पंद्रह दिन बाकी रह गये। मुँह-अँधेरे ही उठकर चाय पी और पढ़ने बैठ गयी। भरमी की बैलगाड़ी नहीं आई थी अब तक। आँगन में चहल-पहल नहीं थी। कल युगादी त्योहार है। बसवण्णी की वर्षगाँठ भी। शायद जल्दी नहीं उठे होंगे।

खिड़की से मैंने झाँककर देखा। चैत्र मास शुरू हुआ था। पुष्पित नीम, फलित आम, कोयल की कूक, चिड़ियों का चहचहा! सूर्य प्रखर था। धूप खिड़की के अंदर झाँक रही थी। कभी-कभी धूप को चीरकर, झंझावात मेरे शरीर को छूता रहा।

माँ ने आँगन में छिड़काव कर, वृन्दावन और दहलीज को राँगोली से सजाया था। फल दूध की परिपूर्णता के लिए, राँगोली से चित्रित रथ वैसा ही था। उफ़ने दूध का निशान अभी बाक़ी था।

आँगन में झाड़ू देने वाले नौकर से माँ ने पूछा--"क्यों रे गुरुपाद, भरमी क्यों नहीं आई ?"

"कल बैलगाड़ी की पूजा हुई थी। मुँह-अँधेरे बैल नहीं बाँधते।" माँ को इस बात से सान्त्वना मिली।

"इतने साल हुए, उसने कभी देर नहीं की।" माँ ने फिर कहा।

"आएगी मैया! उसने मुझसे कहा है कि अगले हफ़्ते आपने ज्यादा मक्खन लाने को कहा है।"

उस दिन शाम तक भरमी की राह देखी, फिर शुक्रवार पेठ से मक्खन मँगवा लिया। मक्खन बासी था। किसी ने मक्खन छुआ ही नहीं। मुझे ब्रेड-मक्खन न मिलने का खेद हुआ।

बुधवार सवेरे नविलूर से बैलगाड़ी आई। गौड़जी ने अपने नौकर काला के हाथ पिताजी के नाम चिट्ठी भेजी थी। निवेदन किया था कि पत्नी-बच्चों के साथ तुरंत आओ। माँ ने काला से पूछा—"क्यों रे काला, घर में सब कुशल तो है ?" काला ने सिर हिलाया, ज़्यादा कुछ बोला नहीं। आई हुई बैलगाड़ी वैसी ही लौट गई।

माँ ने कहा—"परीक्षा पास आ रही है, बच्चे घर में ही रहें।"

"गौड़जी ने बच्चों को लाने के लिए लिखा है। उन्हें भी चलने दो।" पिताजी बोले।

"गौड़जी को लड़कियों से बड़ा प्यार है ?" माँ बोली।

"हाँ, गौड़जी कहते हैं—डाक्टर, आप बड़े भाग्यवान हैं। आपके घर में हमेशा कंगन की आवाज़ गूँजती रहती है। हमारा मल्लप्पा या बसवण्णी इन दोनों में से एक भी लड़की नहीं हुआ जिसकी चिंता सता रही हो।" पिताजी ने कहा।

हम सब माँ-बाप के साथ नविलूर के लिए निकल पड़े। कार में बठे। घर के कम्पाउंड की दीवार पर धूप सेंकते हुए बैठे साँप को पड़ौसियों की बिल्ली ने लपक कर पकड़ लिया। घर के सामने बगीचे के नीम के पेड़ पर कौओं का समूह जमा था। कोई कौआ मरा होगा! कौओं की काँव-काँव हमारी ख़ामोशी के बीच सिरदर्द थी। नारियल के पत्तों को कुरेदने वाला मिर्रिग कीड़ा कार की आवाज़ को अपना प्रतिस्पर्धी समझकर कार में घुस गया था। गुरुपाद ने तुरंत रूमाल से ढक, उसे मार दिया। वह रंग बिरंगी पीठ-पेठ दिखाता हुआ, पंख फैलाये आँगन में गिर कर मर गया।

कार फाटक तक आई। बगीचे की मालिन भीमव्वा खाली घड़ों को कमर पर रखकर पीने का पानी लेने हमारे कुएँ पर आई हुई थी। न जाने क्या सोचकर माँ ने केलकर हनुमान को

हाथ जोड़े और पिताजी से कहा—"कार धीरे चलाइए।"

कार धारवाड़-हुब्बल्ली मार्ग पर दौड़ रही थी। बगल को मोड़कर पिताजी ने पेट्रोल पंप के सामने कार खड़ी की। पेट्रोल देने वाला पेशाब करने गया था। पंद्रह-बीस मिनट तक नहीं आया। आखिर में चड्डी का नाड़ा खोंसता हुआ आया। बोला—"क्षमा कीजिए डाक्टर साब, आपको इन्तज़ार कराया।"

"अरे रामप्पा ! क्या रावण की तरह पेशाब करते हो ?" कहकर पिताजी ने उसे छेड़ा। वह हीं-हीं करता खड़ा रहा।

"तेरी टंकी खाली हुई, अब ज़रा मेरी कार की टंकी भर दे।" पिताजी बोले। ज़ोर से हँसते हुए उसने टंकी भर दी। कार नबिलूर की ओर निकल पड़ी।

मध्याह्न का समय था। कड़ी धूप पृथ्वी को जला रही थी। हवा के अभाव में पेड़ निश्चल खड़े थे। प्रकृति का मुख उग्र था। मन में अशांति थी। बीच-बीच में ऊँघती रही मैं।

नबिलूर रेलवे गेट के पास कार रुकी, मैं जागी। हुब्बल्ली से एक मालगाड़ी धारवाड़ की ओर धीमी रफ़्तार से बढ़ रही थी। यहाँ आधा घंटा रुकना पड़ा। इस बीच जामुन, अमरूद आदि फल बेचने वाली लड़कियों ने कार को घेर लिया।

"जामुन चाहिए ?" पिताजी ने हमसे पूछा।

हम सबने एक साथ 'नहीं' कह दिया। वैसे जामुन हम सबको बहुत पसंद हैं। स्कूल के दिनों में हम चोरी-चोरी जामुन खाती थीं। लेकिन दादी की डाँट के डर से अपने स्कर्ट से जीभ को रगड़कर जामुनी रंग मिटाने की कोशिश करती थीं। उन घटनाओं की याद आने से हम दोनों बहनें एक-दूसरे का मुँह देख हँस पड़ीं। दादी जामुन को जूही (शीतज्वर) की गोली समझती थी।

हम गौड़जी के घर पहुँचे। घर के दरवाज़े पर ताला लगा था। घर की रखवाली के लिए बैठे नौकर ने कहा—"बगीचे के घर में हैं जी !"

कार गौड़जी के अमरूद के बाग की ओर बढ़ चली। कितना भव्य बाग है ! गौड़जी को उस बाग से ही पेट-भर खाने के लिए अमरूद मिलते थे। मुसंबी जितने बड़े-बड़े अमरूदों ने डालियों को झुका दिया था। गौड़जी के अमरूद का व्यापार बम्बई तक फैला था।

कार की आवाज़ सुनकर गौड़जी द्वार तक आए। कार रुकी, कि घर को चीरकर आता हुआ चीत्कार सुनाई पड़ा। हम सबकी छाती धड़क उठी। कार से उतरे, गौड़जी ने हम सबका स्वागत किया। दरवाज़े पर पहुँचते ही गौड़जी ने पिताजी को छाती से लगा लिया और ज़ोर-ज़ोर से रो पड़े।

"क्यों, क्या हुआ गौड़जी ?" पिताजी ने घबराकर पूछा। नौकरानी माँ और हमें भीतरी कमरे में ले गयी। भरमी और गौरक्का आमने-सामने बैठीं पागलों की तरह रोती जा रही थीं। गौरक्का के मायके से लोग आए थे। माँ को देखते ही भरमी बोल पड़ी—"मैया, बसवण्णी चला गया।" वह, माँ जहाँ खड़ी थी, वहीं लुढ़क गयी। मल्लिकार्जुन ने हम सबके लिए चटाई लाकर बिछायी।

रोती हुई भरमी को अंक में भरकर माँ ने सांत्वना दी। हम कुछ बोल ही नहीं पायीं। माँ इस स्थिति में भी नहीं थी कि भरमी से पूछती—'बसवण्णी को क्या हुआ ?'

"इस बार, युगादी की अशुभ अमावस थी। मेरे बेटे की बलि ले ली, मैया। बेलगाँवी भैंस घर नहीं लौटी थी। बेटा भूखा लौटा था। आते ही बोला—'माँ रोटी लाओ।'—'रोटी देती हूँ बेटे। बेलगाँवी भैंस अब तक भी घर नहीं लौटी न !' मैंने कहा—'वह छोड़ो, सब आ

जाएगी।' कहकर गरम-गरम रोटी-माखन खाया उसने। मैं चाँडालिन फिर वही रट लगाती रही—"बेटे, भैंस कभी भी जन सकती है। शायद कहीं पाड़ा जनकर पागल-सी खड़ी होगी। दरवाज़े पर लोहे की कलछी फेंक आई हूँ। शिवजी से प्रार्थना की है कि भैंस जल्दी आ जाय।"

"हाय।" कहकर वह फिर ज़ोर से रो पड़ी।

"बारिश कम हुई थी। भयानक बादल गरज रहे थे। तूफ़ान से पेड़-पौधे गिर रहे थे। साँझ होने में अभी समय था, लेकिन बादलों से अँधेरा छा गया था। बसवण्णी गौड़जी का चित्र बनाता बैठा था। वहाँ देखो उस कतार में लगे हुए सारे चित्र उसी के बनाये हुए हैं—मेरा, गौरक्का का, मल्लप्पा का...। गौड़जी का चित्र उसी दिन पूरा किया था। कह रहा था युगादी के दिन जब सब खाने आएँगे तब दूँगा। न जाने क्या ख्याल आया, वह अचानक उठा, कन्धे पर औगी रखी और बोला—'माँ, दूध ला।' शायद मौत का बुलावा था। चार रोटी खायीं उसने, खड़े-खड़े ही लोटा भर कच्चा दूध गटागट पेट में उतारा और चप्पलें पहनकर, 'माँ, अभी आया' कहते हुए निकल पड़ा। बेटा वापस घर नहीं आया। चप्पल की चर्र-चर्र आवाज़ मेरे कानों में अब भी गूँज रही है।" कहकर पेट को ज़मीन से लगाकर ज़ोर-ज़ोर से फिर रोने लगी।

माँ ने भरमी के सिर को उठाकर अपनी गोद में रख लिया। रोते-रोते भरमी की आँखें सफ़ेद पड़ गयी थीं। माँ ने कपाल पर पानी के छींटे मारे और थोड़ा पानी उसके मुँह में डाला। पीठ और पेट पर हाथ फिराया।

गौरक्का रोती हुई बोली, "वह हमारे घर आया और कहने लगा—'बड़ी माँ, रेनकोट दे दो।' क्यों रे बसवण्णी, कहाँ जा रहा है? मैंने पूछा तो बोला—'बेलगाँवी भैंस नहीं लौटी, माँ ने देख आने को कहा है।' बारिश कम हो गयी थी। बादल गरजने लगे थे। युगादी की अमावस थी। 'माँ की पहली संतान है, तू मत जा, नौकर को भेज देंगे'—कहकर मैंने समझाया। लेकिन वह गली पार करता हुआ दौड़ गया। कैसा सुंदर बेटा था। सबमें होशियार! हमारे गौड़जी का ही रूप! मैं हमेशा मन ही मन कहती—'इसे मेरे गर्भ से जन्म लेना था, भरमी के गर्भ से जनमा। प्यार करने लायक बेटा था।" गौरक्का रोती ही रही। जिस तरह पानी से निकाला हुआ मंडूक धूप की गर्मी में बिलखता है, वैसी थी गौरक्का की स्थिति।

गौड़जी, जो पिताजी के साथ भीतर आए, पत्नी की बातें सुनते हुए दरवाज़े पर हाथ रखकर खड़े हो गए।

"बसवण्णी को घर छोड़े पंद्रह मिनट हुए होंगे कि भैंस पाड़ी के साथ घर आ गयी। सतत दो पाड़ों को जन्म देने वाली इस भैंस ने इस बार एक पाड़ी को जन्म दिया। इस खुशी में मैं भगवान को दीप जलाने लगी तो दीप हाथ से फिसलकर गिर गया। मन को बड़ा सदमा हुआ, नौकर को बुलाकर बोली—"काला, बसवण्णी कहाँ गया, जरा देख आ तो!

बादल गरज रहे थे, बिजली चमक रही थी। बारिश हो रही थी। फिर बादल गरजने लगे थे। आंखों को चकाचौंध करने वाली बिजली थी दीप अचानक बुझ गया। गड़गड़ाहट से मानो सारा नविलूर काँप रहा था। काला, जो बसवण्णी को ढूंढ़ने गया था, रास्ता न दिखायी देने से लौट आया। बारिश थमने पर, वह मशाल लेकर कीचड़ में से होता हुआ फिर निकल पड़ा। अमरूद के बाग को पार कर आगे मैदान में पहुँचा तो बसवण्णी को मरा पाया। उसे उठाकर काला ने देखा—बिजली ने माँ की पहली संतान को चीरकर रख दिया था।"

रात के नौ बजे तक लाश को घर ले आये। गौड़जी तभी हुब्बल्ली से लौटे थे। कहते हैं भरमी पगली-सी लोट-लोटकर रोती रही, चीखती-चिल्लाती रही। अंत में भैंस को संबोधित

कर बोली—"तू भी माँ है। तू अपनी पाड़ी को लेकर तो घर आ गयी, मेरे बेटे के लिए यमराज का भैंसा भेज दिया ! मेरा बेटा चला गया। मैं मरने तक कैसे जिऊँगी ?" फिर गौशाला में लोट-लोटकर रोयी। उससे लिपटकर मल्लिकार्जुन बोला, "माँ, मैं हूँ ना !" और भरमी की हथेली पर अपनी हथेली रखकर वचन दिया।

अगले दिन युगादी का त्यौहार था। बसवण्णी का जन्म दिन भी। उसे सोलह साल पूरे हुए थे। आयु भी पूरी हुई थी। नविलूर की धरती ने बेटे को अपनी गोद में सुला लिया था।

बहुत देर तक हम गौड़जी के घर में रहे। गौड़जी गौरक्का से बोले—"गौरा, डाक्टर साहब के परिवार को भोजन कराकर भेजो।" हमारे माता-पिता के 'ना-ना' के आग्रह पर भी गौड़जी और गौरक्का ने हम सबको खाना खिलाकर ही भेजा। कार तक हमें विदा करने आयी भरमी ने माखन के घड़ों को कार में रखने के लिए काला से कहा। हम सबकी पीठ पर हाथ फिराते हुए, "बच्चो, ब्रेड-माखन खा लेना" कहा तो हम संकोच से भर गए।

कार के धारवाड़ पहुँचने तक हम में से कोई नहीं बोला। सबके सब आँसू बहाते रहे। पिताजी ने माँ से कहा—"बसवण्णी कितना होनहार लड़का था ! कैसी सुंदर पेंटिंग बनाई हैं ! भरमी अभागिन है !" और सिसक पड़े।

अब तक जिन भावनाओं को हम रोके हुए थे, वे फव्वारे की तरह फूट पड़ीं। बसवण्णी की मौत भयानक लगी। मुझे मृत्यु की भयावह कल्पना नहीं थी। लग रहा था मृत्यु, मानव के लिए नींद जितनी ही अनिवार्य है। लेकिन अब लगने लगा कि मृत्यु भयावह है।

कीट्स आँखों के सामने नाच उठा। मक्खन के वे घड़े ग्रीक-चिता-भस्म-कुंभ जैसे दिखायी पड़े। बाहर जीवन, भीतर मरण। मृत्यु-जीवन ! यही सत्य है, यही सौंदर्य है।

कन्नड़ से अनूदित : डॉ. बासु वी. पुत्रन्
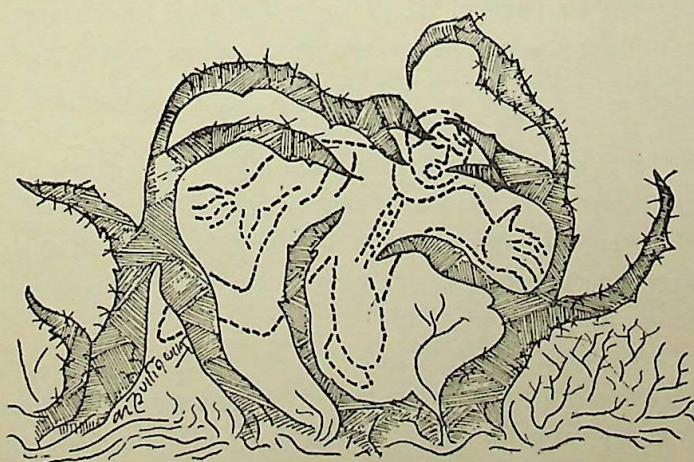
फ़िलहाल रात है

□ हरिकृष्ण कौल

जैसे मैं माघ के भयानक शीत में बर्फ़ पर सोया हुआ था। बहुत बड़ा कमरा था और उसमें सिर्फ़ हम तीन व्यक्ति थे। खिड़कियाँ बंद थीं किंतु उनमें शीशे नहीं लगे थे। बाहर मूसलाधार बारिश हो रही थी और पांचाल की तेज़ हवा चल रही थी। यह हवा···बनिहाल की यह चुभती हुई सर्द लू टूरिस्ट होटल के इस कमरे में जैसे नृत्य कर रही थी। और कमरे के अंदर होने के बावजूद भी हमें लग रहा था जैसे हम बाहर सोये हों।

हमारे बिस्तरे बस की छत पर तिरपाल के नीचे होने पर भी बारिश से बुरी तरह भीग गए थे। हमने चौकीदार से तीन-तीन कम्बल किराए पर लिए। मैंने एक कम्बल फट्टे पर बिछाया और बाकी दो को अपने ऊपर ओढ़ा। मक्खन ने भी ऐसा ही किया। स्वामी जी सोये नहीं थे। उन्होंने दो कम्बल अपने नीचे आसन की तरह सजाए थे और एक कम्बल अपने घुटनों पर लिए हुए वह किसी ग्रन्थ का पारायण कर रहे थे।

शीत मेरी हड्डियों में चुभ रही थी। कमर, पीठ और जाँघें बुरी तरह दुख रही थीं। दर्द के साथ-साथ एक अजीब-सी बेचैनी भी मुझ पर हावी थी। मैं सिर्फ़ करवटें बदल रहा था। मक्खन मेरे निकट ही गुड्डीमुड्डी करके सोया हुआ था। मैंने उसकी पीठ पर हाथ रखा और कहा—

"मेरे निकट आओ, सटकर सोने से शायद कुछ गर्मी आ जाए।"

उसने अपनी पीठ पर से मेरा हाथ हटा दिया और सिर कम्बल में ढाँप लिया। वह मुझ

पर नाराज़ था। सच मानें तो उसकी नाराज़गी कुछ ग़लत न थी। बनिहाल पहुँचकर जब ड्राइवर ने कहा कि रात में यहीं रुकेंगे तब इस बात का विरोध करने वालों में से मक्खन ही एक प्रमुख व्यक्ति था। उसने ड्राइवर पर बस चलाने के लिए बहुत ज़ोर डाला। रात को ही सही, किसी ठौर-ठिकाने तो पहुँच जाएँगे। पर ड्राइवर पर जैसे हठ सवार हुआ था। यदि हमने भी मक्खन का पक्ष लिया होता तो बहुत मुमकिन था कि ड्राइवर बस चलाने पर मजबूर हुआ होता। पर उस समय हम सब मौन रहे। शायद हममें से अधिकांश यात्री रात के समय बनिहाल पर्वत पार करने से डर गए थे। विशेषकर तब जबकि पार लगाने वाला ड्राइवर भी इसके लिए राज़ी नहीं था। मक्खन बड़ी देर तक उसके साथ बहस करता रहा पर अंत में हार गया। अब उसका रोष ड्राइवर पर उतना नहीं था जितना कि हम यात्रियों पर था।

मैं सो न सका। मैं उठा और अपनी पीठ दीवार से सटाकर आराम से बैठ गया। स्वामी जी की ओर देखा। वह अपने सामने ग्रन्थ खोले हुए विचार-मग्न थे।

"क्या बात है?" उन्होंने आँखों के इशारे से पूछा।

"बहुत सर्दी है।" मैंने कहा और वह हँस दिए।

"पता नहीं तुम लोगों को सर्दी क्यों लग रही है? मुझे तो नहीं लग रही है।"

"सर्दी क्यों महसूस होगी। ईश्वर ने मोटा-ताज़ा तो बनाया है इसे। चर्बी में कहीं सर्दी चुभती है भला?" मक्खन हौले से बोला कि सिर्फ़ मैं ही सुन सका। उसको स्वामी जी पर कुछ अधिक ही क्रोध था। रामबन में स्वामी जी बस से नीचे उतरकर पता नहीं कहाँ गायब हो गए थे और हमारा आधा घंटा बरबाद कर दिया था। यदि यह आधा घंटा बरबाद नहीं हुआ होता तो हमने खूनी नाले के पास पस्सी गिर आने से पहले ही सड़क के उस ख़तरनाक हिस्से को पार कर लिया होता। और अब तक हम अपने घरों में आराम से पहुँच गए होते।

मक्खन को लग रहा था कि हमारी इस परेशानी का कारण स्वामी जी ही हैं। मगर दूसरी बात भी तो हो सकती थी, जिसकी ओर शायद उसका ध्यान नहीं जा रहा था। सम्भव है कि स्वामी जी को इस बात का पूर्वाभास हो गया था कि पस्सी गिरने वाली है, तभी तो उन्होंने रामबन के पास, आधा घंटा बस को रोके रखा। यदि उन्होंने ऐसा नहीं किया होता तो सम्भव है कि हमारी बस भी पस्सी के साथ खड्ड में गिर गई होती। कुछ नहीं कहा जा सकता। कहते हैं ईश्वर जो कुछ भी करता है वह ठीक करता है।

मैंने फिर से दोनों कम्बल ओढ़ लिये और सोने की कोशिश करने लगा। पर नींद कोसों दूर थी। पीठ और जाँघों का दर्द तेज़ हुआ और मैं कुछ अधिक ही बेचैन हो उठा। एक ओर तो शरीर का अंग-अंग भयंकर शीत से मानो फट रहा था और दूसरी ओर हृदय में एक विचित्र भय घर कर गया था। मैंने जीवन में पहली बार एक पहाड़ गिरते हुए देखा था। खूनी नाले पर से कुछ पस्सियाँ पहले ही खिसक आयी थीं और हम उन पर विराजमान होकर आपस में इस स्थिति का विश्लेषण करने में निमग्न थे कि दो-चार पत्थर रिसने लगे। तब भी हमने इस ओर कोई ध्यान नहीं दिया पर ज्यों ही पत्थरों के गिरने की गति तेज़ हुई तथा चट्टानों की छोटी-दरारें हमारी आँखों के सामने ही चौड़ाने लगीं और बादलों की एक भयानक गर्जना के साथ समूचा पहाड़ ही नीचे गिर आने लगा। हम सब चीखे और पीछे की ओर दौड़ गए। पीछे हटकर हमने देखा कि पहाड़ का एक भाग प्रपात-सा नीचे जाकर वहीं कहीं अदृश्य हो रहा है। बड़ी-बड़ी शिलाएँ टुकड़ों में टूट रही थीं। पत्थरों और मिट्टी के साथ साबुत चीड़ के दरख़्त समूल उखड़कर नीचे गिर रहे थे। यह देखकर मेरे हृदय में एक विचित्र भय बैठ गया था जिससे मैं अभी

भी मुक्त नहीं हो पा रहा था। रास्ता छः घंटों के बाद यातायात के लिए खुल गया था परन्तु तुरन्त ही भारी वर्षा शुरू हुई थी जो अभी तक भी रुकने का नाम नहीं ले रही थी बल्कि पल-पल तेज़ ही हो रही थी।

मैंने करवट बदली। घुटनों को पेट के साथ सटाया और दोनों हाथ दोनों घुटनों के बीच रखे। बाहर पाषाण-तोड़ वर्षा हो रही थी और बर्फ़ानी आँधी, टूरिस्ट होटल के कमरे का चक्कर बराबर काट रही थी। मुझे लगा कि हमसे बेहतर वही लोग थे जिन्होंने बस में ही बैठने का निर्णय लिया था।

सहसा बिजली गुल हुई और मैं कुछ अधिक ही भयभीत हो गया। चारों तरफ़ एक विचित्र भय-सा फैला हुआ लगा और मैं धीरे-धीरे सरककर स्वामी जी के पास चला गया—

"स्वामी जी यह सर्दी ! यह अन्धकार ! यह वर्षा ! यह तूफ़ान···कहीं हमें यहाँ ही जम कर, समाप्त तो नहीं होना है ? कहीं हमारी मृत्यु इसी तरह तो नहीं लिखी है ?" यह सब मैंने उनसे लगभग रोते हुए कहा।

उन्होंने ग्रन्थ बन्द किया और उसे झोले में डाला। उसमें से ही मोमबत्ती का एक टुकड़ा निकालकर जलाया। कमरे में मद्धिम प्रकाश फैल गया तथा हमारी छायाएँ दीवारों पर पड़ने लगीं। हवा से मोमबत्ती की लौ हिल रही थी और हमारी छायाएँ भी थरथर काँप रही थीं।

स्वामी जी ने अपना हाथ मेरे चेहरे पर फेरते हुए कहा—

"भयभीत क्यों हो···यह सब मिथ्या है।"

"क्या मिथ्या है ?" उनकी बात मेरे पल्ले कुछ न पड़ी।

"यह रात्रि, यह अन्धकार, यह भयानक शीत···यह सब स्वप्न है।"

"पर मुझे तो सब कुछ सत्य लग रहा है।" मैं सचमुच विस्मय में पड़ गया।

"लगने से क्या होता है ?" स्वामी जी हल्का-सा मुस्कराए।

"क्या स्वप्न में सब कुछ सत्य नहीं लगता है ?"

"लगता तो है।" मैंने सिर हिलाकर ही हामी भरी।

"बस उसी तरह यह कमरा, ये बिना शीशों की खिड़कियाँ, यह वर्षा, यह आँधी, सब कुछ स्वप्न है, माया है। सुबह जब तुम जागोगे न कहीं ये पहाड़ होंगे, न यह यात्रा ही होगी और न ये सहयात्री ही।"

वह खड़े हो गए और पैरों में गुरगाबियाँ पहन लीं। दरवाज़ा खोला। शायद पेशाब करने के लिए बाहर चले गए। मैं भी वापस अपनी जगह पर आ गया। स्वामी जी की बातों से मुझे बहुत आश्वासन मिला और धीरे-धीरे भय मेरे हृदय से निकलने लगा। वास्तव में भय व्यक्ति के आसपास नहीं होता, वह तो उसके मन में होता है। आवश्यकता इस बात की है कि हम अपने मन को स्थिर रखें।

मैं यही सोच रहा था कि मक्खन ने अपना सिर कम्बल से बाहर निकाला और पूछा—

"यह क्या कह रहा था; यह सब कुछ स्वप्न है ?" मैंने हाँ में सिर हिलाया।

"पूछना था कि यह स्वप्न कौन देख रहा है ? वह या तुम या हम सब मिलकर एक संयुक्त स्वप्न देख रहे हैं ?"

उसने फिर से कम्बल में सिर ढाँप लिया और सो गया। मैं फिर एकाकी हो गया। तभी हवा के एक ज़ोरदार झोंके से मोमबत्ती गुल हो गई और भय मेरे हृदय में फिर से उत्पन्न होने

लगा। पहाड़ गिरने का वह भयानक दृश्य फिर से मेरी आँखों के सामने आ गया। मैंने भी अपना सारा शरीर कम्बल में ढाँप लिया और लम्बा पड़ गया। पर इस बेचैनी में कहीं नींद आने का सवाल उठता था?

मैं फिर से उठा और सिगरेट सुलगाकर सोचने लगा काश यह सब कुछ सचमुच ही एक स्वप्न होता। पर तो भी क्या हुआ। स्वामी जी ने कुछ ग़लत नहीं कहा। यह तो सचमुच ही एक स्वप्न है। स्वप्न-माया नहीं तो फिर क्या है? इन्हीं स्वामी जी को ही लें या इस मक्खन को ही लें। आज से पहले मैं इन्हें कहाँ जानता था। पर इस समय मेरा सारा संसार ही इन दोनों तक सिमट गया है। कल जब मैं घर पहुँच जाऊँगा या बकौल स्वामी जी नींद से जागूँगा तो इनका अस्तित्व ही कहाँ रहेगा।

जलता हुआ सिगरेट मेरी बाईं बाँह से छू गया और लगा कि मेरी बाँह जल गई। पर लगने से क्या होता है। लग कुछ भी सकता है। आबी खुश्की लग सकता है और खुश्की आबी। जो कुछ जैसा लगता है आवश्यक नहीं कि वह वैसा ही हो।

मैंने मक्खन को झिंझोड़ा। वह उठकर बैठ गया। मैंने पूछा—

"मक्खन क्या कह सकते हो कि वास्तविकता क्या है?"

"वास्तविकता यही है कि हम सब भेड़ हैं।" उसके पास जैसे इस बात का उत्तर एकदम तैयार था।

"जानते हो ड्राइवर रात को यहाँ क्यों रुक गया? उसको हाल्टेज मिलेगा। वह रुपए कमाएगा। सर्दी से हमारा काठ क्यों न बन जाए, उसे क्या। उसे सिर्फ़ अपने आप से मतलब है। वह ऐश करेगा, पर मुझे अफ़सोस इसी बात का है कि हम उसका कुछ बिगाड़ न सके।"

"हो सकता है कि यह सब स्वप्न हो···उसके उत्तर में तुम क्या कहोगे?" पर उसके पास जैसे इस प्रश्न का उत्तर भी तैयार था—

"स्वप्न ही सही, यदि हमने एकमत होकर ड्राइवर को बस चलाने के लिए मजबूर किया होता तो हम इस समय अपने-अपने घरों में गर्म-गर्म बिस्तरों में आराम से पड़े होते। यह स्वप्न हमारे लिए इतना कष्टकर सिद्ध नहीं होता।"

मैं कुछ ज़्यादा ही असमंजस में पड़ गया। सम्भव है उसी की बात सत्य हो कि हम सब भेड़ हैं या सम्भव है कि स्वामी जी का कहना ही सत्य हो कि यह सब कुछ स्वप्न है। जब हम सुबह जाग जाएँगे, न कहीं ये पहाड़ ही होंगे, न यह बारिश, न कहीं यह आँधी ही होगी और न ही यह कड़ाके की सर्दी ही। पर सुबह होने में अभी पता नहीं कितना समय है। फ़िलहाल अभी रात है। फ़िलहाल अँधेरा है। फ़िलहाल बहुत ही ज़्यादा ठंड है। इस अंधकार और इस शीत में मैं अकेला फँस गया हूँ। उन दोनों में से एक तो अपना सारा शरीर कम्बल में ढाँपे रूठा पड़ा है और जो दूसरे हैं उनको सर्दी ही नहीं लगती। वह अभी भी भीतर नहीं आए हैं।

कश्मीरी से अनूदित : क्षमा कौल

टूटते पंख

□ अम्बइ

पुरुषों के मोटापे के विरुद्ध कोई नियम होना चाहिए, छाया ने सोचा। ऐसे अनेक नियम थे जो छाया ने समय-समय पर मन ही मन बनाए थे।

—कि रोमहीन वक्ष वाले पुरुषों को विवाह नहीं करना चाहिए।

--कि ऐसे पुरुष जिनके दाँत पान चबाने से बेढंगे और मैले हो गए हों उन्हें चुम्बन नहीं लेना चाहिए।

—कि ऐसे पतियों का धन ज़ब्त कर लिया जाना चाहिए जो अपनी पत्नी की, किसी इच्छित वस्तु पर पड़ती दृष्टि की चमक देखते ही, अपने बटुए को भींच लेते हैं।

ऐसे अनगिनती नियम थे। ये नियम यदि सचमुच लागू हो जाएँ तो जो व्यक्ति सबसे अधिक प्रभावित होगा वह तरवतर माँस के ढेर सा उसके सामने बैठा भुनभुना रहा था "रस्सम बहुत गरम है।"

"जल्दी क्या है ? धीमे-धीमे खाओ।" छाया ने उत्तर दिया।

"क्या मतलब ?" वह बोला। शब्द जैसे मुँह के भोजन के साथ सने और चबाए हुए थे।

किसी कुत्ते की गुर्राहट भी इससे अच्छी सुनाई देती, छाया ने सोचा।

"अम्माँ, तुमने मुझे भात बहुत ज्यादा दे दिया है।" शेखर ने सहमकर कहा।

"क्या मतलब है तुम्हारा ? बहुत ज्यादा है ! तुम्हें मालूम है आजकल चावल का भाव क्या है ? खाओ उसे, वरना मैं तुम्हारी पिटाई करता हूं ।" उसका बाप भौंका ।

बरबस रोके गए आँसुओं के कारण शेखर के गाल फूल गए ।

छाया ने अपने मन में एक आकस्मिक नियम बनाया,—जिन पुरुषों के स्वभाव में कोमलता न हो उनकी अनिवार्य नसबन्दी करा देनी चाहिए ताकि उनके कभी बच्चे न हों।

उसका पति भास्करन सदैव सुपुष्ट रहा था । तब भी, जब वह वर के रूप में उसे देखने आया था । लेकिन छाया ने इस पर कोई आपत्ति नहीं की थी । शायद इसलिए कि वह तमिष् फ़िल्मों में तगड़े नायकों को देखने की अभ्यस्त हो चुकी थी । उसने कल्पना की कि शरीर का भराव पौरुष का चिह्न है ।

लेकिन उसकी माँ ने हलका प्रतिरोध किया था, "रोज़गार अच्छा है, लेकिन अपनी छाया के हिसाब से वह कुछ ज्यादा मोटा नहीं है ? यह तो लता की तरह दुबली है ।" चन्द्रन मामा इस बात से झुंझला उठे थे ।

"यह कैसी बकवास है ?" वे चिल्लाए थे—"लड़का स्वस्थ दिखता है, बस ! तुम क्या चाहती हो वह मरियल और रोगी-सा दिखाई दे ? और सीधी बात तो यह है कि जहाँ दो-चार बच्चे हुए छाया खुद मोटी हो जाएगी ।"

छाया की पूर्ण सहमति थी । अपनी कल्पना में उसने भास्करन को प्रणयगीत गाते हुए, हिलती तोंद के साथ सलीके से चलते हुए देखा ।

छाया-भास्करन । नाम भी कैसे जोड़ के थे ! पुरोहित ने भी इसे लक्ष्य किया था, "आप देख रहे हैं, इनके नाम भी कैसे जोड़ के हैं ? यह जोड़ी राम और सीता जैसी ही होने वाली है ।"

"छाया, मुझे थोड़ा आम का अचार दो । एक महीने से मैंने नहीं खाया ।" उसका स्वप्नभंग करते हुए भास्करन ने कहा ।

उसने अचार का मर्तबान खोला । अचार की तह पर फफूंदी की हल्की पर्त चढ़ गई थी ।

"ओह, नहीं !" वह अनायास चिल्लाई ।

"क्या हुआ ? खराब हो गया ?" भास्करन ने पूछा ।

उसने सिर हिला कर हामी भरी ।

"हूँ, अच्छा पैसा बरबाद हुआ । तुम चीज़ों की ठीक से देखभाल नहीं करती ।" छाया ने अपना ओंठ काट लिया । यह वास्तव में उसकी ही ग़लती थी । वह अचार को हिलाना और हवा लगाना भूल गई थी ।

"सब मिर्च, नमक और तेल बरबाद हुआ—तुम्हें पैसे की क़ीमत कब मालूम होगी ?" भास्करन ने उसे झिड़का और अपने हाथ धोने चला गया । मिर्च और नमक और तेल—हं ! ये बरबाद नहीं हुए । ये सब उसके हृदय में पहुँचकर उसे जला रहे थे ।

"अम्माँ, मुझे स्कूल के लिए पैसे दो !"

"नहीं हैं मुन्ना ! मैं तुम्हारे बारे में बिल्कुल भूल ही गई थी । जाओ अच्छे बच्चे हो न !"

जब वह चौका साफ़ कर रही थी, भास्करन ने कपड़े बदल लिए । उसने सलवटों भरा एक पतलून पहन लिया था, जिसकी क्रीज़ पिछले सप्ताह भर पहनने के कारण बिल्कुल समाप्त हो गई थी ।

"क्या तुम्हारे पास दूसरी पैण्ट नहीं है पहनने के लिए ?"

"यही ठीक है ! क्यों फ़ुज़ूल लाण्ड्री में पैसा फूंका जाए !"

नियम : कंजूसों को कभी नहीं विवा···

"तुमने मेरे थरमस में कॉफ़ी भर दी है?"

छाया अपने नए नियम को बनाने के क्रम में बीच में ही रुक गई। उसने 'हाँ' कहा।

"मेरा टिफिन तैयार कर दिया?"

"हम्···"

उसे यह सब कुछ ढोकर ले जाना होगा। लेकिन ठीक ही है—दफ़्तर की कैण्टीन में पैसा खर्च करने से तो यह अच्छा है।

पहले पहल छाया को इस पर गर्व हुआ था। उसे मेरे हाथ की बनी हुई चीज़ें इतनी अच्छी लगती हैं वह सोचती थी। प्रत्येक संध्या को वह उससे पूछती, "तुम्हें आज पोंगल अच्छा लगा?"

"हम्"

"पड़ोस वाली कह रही थी उसे अपने घर से ही उसकी सुगंध आ रही थी।"

"ठीक था। लेकिन तुमने उसमें बहुत ज़्यादा घी डाल रखा था। ज़रा अपने खर्चे पर ध्यान रखा करो।"

चलो, हर व्यक्ति में प्रशंसा करने की कला की उम्मीद नहीं की जा सकती। छाया ने स्वयं को समझाया। लेकिन एक रात छाया ने उससे साफ़-साफ़ पूछने का निर्णय किया। सुहानी रात थी। खिड़कियों से ठंडी, सुगंधित हवा आ रही थी। वह उसके निकट खिसक आई और उसकी ओर झुककर उसके बालों में अंगुलियाँ फिराने लगी (बाल बहुत तेलहा थे। लेकिन यदि आप किसी व्यक्ति को चाहते हैं तो तेलहा बाल भी सहन किए जा सकते हैं। इसके विपरीत यदि आप उसे नहीं चाहते तो दाँतों के बीच की हल्की दरार भी गुफ़ा-सी दिखाई देगी) छाया ने अपनी अंगुलियाँ उसके बालों में फिराईं और कोमल धीमे स्वर में पूछा, "मेरा बनाया हुआ खाना तुम्हें बहुत अच्छा लगता है न? दफ़्तर में तुम्हारे दोस्त लोग इसे लेकर तुम्हें चिढ़ाते हैं?"

उसने संक्षिप्त उत्तर दिया, "तुम अच्छा पकाती हो लेकिन सामान भी बहुत अधिक खर्च कर देती हो। फिर भी, होटल में खाने से तो सस्ता ही पड़ता है।"

अचानक, छाया को भास्करन के कन्धे के स्पर्श से अपना बदन जलता हुआ प्रतीत हुआ। उसके बालों से खेलती हुई अंगुलियों में दर्द होने लगा मानों उनमें छाले पड़ गए हों। वह दूसरी ओर, अलग हट गई। ऐसे क्षणों में उसकी कल्पना में विचित्र मोड़ आ जाते थे।

यदि किसी फ़िल्म में शिवाजी गणेशन ने सरोजा देवी से यह कहा होता तो वह क्या करती। वह खिड़की के पास जाकर कोई उदास गीत गाने लगती।···मेरे दिल में एक तीर चुभा!···लेकिन छाया भजन से अधिक कुछ नहीं गा सकती। संभवतः वह आनन्द भैरवी का एक आलाप ले सकती है। वह आश्चर्यजनक रूप से करुण होगा। यह विचार आते ही अपने दुःख के बावजूद छाया की हँसी फूट पड़ी।

ओह! यह सुखद कल्पना!

इन कल्पनाओं के आधार पर कितने ठोस और अधिकारपूर्ण नियम बनाए जा सकते हैं!

"मैं जा रहा हूँ छाया।"

"हम्"

देखना, वह आम का अचार सब खराब तो नहीं हो गया। न हो, नीचे का कुछ हिस्सा बच सके।"

"ठीक है।"

वह चल दिया।

छाया खाना खाने बैठी शेखर की थाली में बचे चावलों पर और थोड़े चावल डाल कर उसमें इमली की चटनी मिलाने लगी थी कि तभी माँ की याद आई। उसने माँ को कितना सताया था !

जैसे ही उसकी थाली में इमली की चटनी डाली जाती, वह झटक कर थाली को मोरी में पटक देती और उठ खड़ी होती।

"जो मुझे पसन्द नहीं है तुम वही क्यों बनाती हो माँ ?"

क्या माँ को इतना तंग करने का ही परिणाम है यह ?

एक दिन स्कूल से लौटकर वह चिल्लाई, "माँ, खाने को क्या है ?"

"इडली।"

प्लेट में इडली रख दी गई।

"सूखी चटनी !" उसने फ़रमायश की।

सूखी चटनी की जगह गीली चटनी लाकर माँ बोली, "सूखी चटनी नहीं है।"

हाथ पैर पटककर वह तत्काल उठ खड़ी हुई थी। लेकिन माँ ने आधा घण्टा से भी कम समय में सब तैयारी कर सूखी चटनी बना दी थी।

"पहले क्यों नहीं बनाई ?" वह अड़ गई थी।

"बना देती, लेकिन आज पता नहीं क्यों छाती में दर्द हो रहा है।"

"माँ !" उसकी आँखों में आँसू भर आए। चावल गले में अटक गए। जूठा मुँह-हाथ लिए वह वहीं बैठ रही।

जब उसका विवाह हुआ, तब कितने रंगीन सपने उसने देखे थे ! यदि सब्ज़ी काटते हुए अंगुली कट गई तो वह मुस्कराकर उसकी मरहमपट्टी कर देगा। या वह क्रोध में उसके गाल पर थप्पड़ लगा देगा ? गाल पर नहीं, यह अशोभन होगा। शायद पीठ पर—अकारण ही। वह रोएगी और वह अपनी ग़लती पर पछता कर उसे सान्त्वना देगा। ऐसी अनेकों कल्पनाएँ। हर प्रसंग में वह उसके लिए कष्ट उठाती और वह उसके प्रेम में दीवाना हो जाता। लेकिन···।

उसकी कल्पनाओं का संसार हिन्दू कन्याओं के लिए निर्धारित परिधि तक ही सीमित रहता था। यदि कभी उसने उस पुस्तक की कुछ बातों पर सोचने का प्रयत्न भी किया, जो उसका भाई उसके लिए ले आया था, तो उसके मन में इस बात का विचार भी नहीं आया कि किन्हीं परिस्थितियों में भास्करन की तोंद कैसी घृणास्पद लग सकती है। आखिर वह उस महान हिन्दू परम्परा की ही तो स्त्री थी जो अपने कोढ़ी पति के साथ भी सहर्ष रह लेती है। अब, भोजन के बाद हाथ धोते हुए, उसे एक नया नियम बनाने की इच्छा हुई : जिन लड़कियों ने कामसूत्र नहीं पढ़ा है उन्हें विवाह नहीं करना चाहिए।

छाया थाली छोड़कर उठ गई।

मुख्य द्वार पर खट्-खट् हुई। छाया ने द्वार खोल दिया। अगली गली की मालती बाहर खड़ी थी। वह पसीने से तरबतर थी।

"आण्टी मैं अन्दर आ जाऊँ ?"

"आओ, लेकिन ऐसी गर्मी में आने की क्या ज़रूरत पड़ गई ? खास तौर से अपनी इस

हालत में ?"

"मैं आपसे सिलाने के लिए दो ब्लाउज़ लाई हूँ आण्टी।" मालती ने कपड़े के दोनों टुकड़े उसे दे दिए। कपड़ा बहुत अच्छा था और उस पर सुन्दर कढ़ाई की हुई थी।

"ये तो बहुत मँहगे होंगे ?" छाया ने पूछा।

"तो तुम्हें तो ये जल्दी चाहिए होंगे, क्यों ?"

"हाँ, लेकिन मेरे पति नहीं चाहते कि मैं कोई घटिया कपड़ा पहनूँ। अगले सप्ताह हमारे घर उत्सव है, उसी के लिए हैं।"

"हाँ, सिलाई तो वही दो रुपया होगी ?"

"सिलाई की क्या चिन्ता है ?" छाया ने उन सुन्दर कपड़ों पर नज़र गढ़ाकर कहा, फिर बोली, "धागा अब मँहगा हो गया है और तुम कह रही हो तुम्हें ये अगले सप्ताह ही चाहिएँ…"

"तो मैं आपको तीन रुपया दूँगी। ठीक है न ?"

"ठीक है, तुम अपने स्वास्थ्य का ध्यान रखो।"

मालती चली गई।

तीन रुपया बहुत ज़्यादा तो नहीं ? छोड़ो, कोई बात नहीं। मालती दे सकने की स्थिति में है। शायद वह लोगों से कहेगी, 'छाया आण्टी ने मुझसे एक ब्लाउज़ का तीन रुपया लिया' चलो, कहने दो ! दर्ज़ी एक ब्लाउज़ का पाँच रुपये से कम नहीं लेता। अब छः रुपये और हो गए। वह अब उन रुपयों से तमिष् फ़िल्म देख सकेगी ! कहते हैं, इस फ़िल्म के अंत में हीरो मर जाता है। मरने दो, पापी ! उसके जीवित रहने से ही क्या भला हो जायेगा ?

छाया की हमेशा ही सिलाई में रुचि रही थी। उसकी ननद सरोज को तीन प्यारी प्यारी लड़कियाँ थीं। उनके सिर पर अंगूर के गुच्छों से काले घुंघराले बाल थे। सरोज उनके लिए कपड़े सिलवाना चाहती थी। तब छाया ने कहा था, "मुझे क्यों नहीं दे देतीं ? बच्चों के कपड़े मैं बना दूंगी।"

"क्यों नहीं !" सरोज ने हँस कर कहा था "हो सकता है जल्दी ही तुम्हारे भी लड़की हो जाए।"

फूलों के गुच्छों से पाँच-छः बच्चों की उसकी कामना थी।

"माँ, मुझे कम से कम आधी दर्जन बच्चे चाहिएँ।"

"पगली !" माँ कहती थीं।

लेकिन पिछले दस वर्षों में सिर्फ़ शेखर ही हुआ था। क्या यह भी बचत का ही भाग था ?छाया ने बहुत लगन से और समय लगाकर सरोज की लड़कियों के कपड़े तैयार किए थे। एक दिन शाम को जब काम से लौटकर भास्करन ने उसे सिलाई करते देखा तो पूछा, "ये सब किसके लिए हैं ?"

' सरोज की बच्चियों के लिए। कितनी अच्छी हैं न ?"

"शौकिया सिल रही हो ?"

"हाँ, अपना मन बहलाने को।"

अगले महीने जब उसने घर खर्च के लिए छाया को रुपये दिए तो दस रुपये कम थे। छाया ने उसकी ओर देखा तो वह बोला, "तुम सुई धागे में पैसा बरबाद कर दोगी इसलिए मैंने

कम दिया है।" अगली बार जब सरोज ने उसे कुछ सिलने के लिए दिया तो उसने कहा, "आजकल सिलाई करने का समय ही नहीं मिलता।"

"रहो भी, दोपहर में क्या करती हो?" सरोज ने चुनौती के स्वर में कहा।

"अच्छा ठीक है। मैं सिल दूँगी। एक बात बताओ सरोज, अगर तुम इन्हें दर्ज़ी को दो तो वह तुमसे कितने रुपये लेगा?"-

"क्यों, पाँच से क्या कम लेगा?"

"तो तुम मुझे उसका आधा ही दे दो फिर मैं सिल दूँगी। आख़िर मुझे भी तो धागा वग़ैरह खरीदना पड़ता है।"

सरोज ने घूर कर उसे देखा। छाया अभी भी उस तिरस्कार की दृष्टि को नहीं भूल पाई है। शायद उसे आश्चर्य हुआ था कि एक ऊँचा वेतन पाने वाले अधिकारी की पत्नी इतने निम्नस्तर पर क्यों उतर आई थी। लेकिन उसने केवल इतना ही कहा था, "ठीक है, मैं दे दूँगी।" उस दिन से छाया पैसे लेकर सिलाई करने लगी थी।

उसने मालती के टुकड़ों को लेकर दराज में डाल दिया। अगले दिन देने वाले ब्लाउज़ के दो कपड़ों को लेकर वह अपनी मशीन पर बैठ गई। ये दोनों ब्लाउज़ सामने वाले मकान की रंजीता के थे। रंजीता बिना नागा हर महीने दो ब्लाउज़ खरीदती थी। वह कहा करती थी, "अगर अच्छा खाया और अच्छा नहीं पहना तो आदमी कमाता किसलिए है?"

छाया सोचने लगी वह किसलिए जी रही है? शायद जीने का कारण मात्र इतना ही था कि मनुष्य अपनी इच्छा से मर नहीं सकता। उसे अब कपड़ों और गहनों में कोई रुचि नहीं रह गई थी। अब जब भी वह कपड़े की दुकान पर जाती तो किसी साड़ी की सुन्दरता को या किसी कपड़े की अच्छाई को पहचानने में स्वयं को असमर्थ पाती थी। अनजाने ही उसकी आँखें उस वस्तु की कीमत की चिप्पी पर टिक जातीं। लेकिन हर साल दीपावली पर एक कीमती रेशमी साड़ी खरीदने का उसने नियम बना लिया था। हालाँकि उसे इसकी कोई इच्छा नहीं रहती थी।

"तुम्हें रेशमी साड़ी लेनी है?" भास्करन बेमन से पूछता।

"हाँ।" उसका निश्चित उत्तर होता था।

वह सबसे कीमती साड़ी चुनती और भास्करन को लम्बी साँस खींचते हुए नोट गिनते देखकर प्रतिशोध की सुखद अनुभूति का आनन्द लेती। कभी कभी वह सोचती कि ऐसे आदमी से कुछ माँगने के स्तर तक क्यों नीचे गिर गई है। लेकिन ज़बर्दस्ती उससे खर्च करवाने का क्रूर आनन्द उसके विचारों को उड़ा ले जाता। जीभ के चटोरपन के लिए माँ उसे कितना डाँटती थी! पूरे आम को हाथ में दबाए वह उसे चूसती थी। आम के रस से उसके पूरे हाथ सन जाते थे। कितना सुखद होता था आम के रस का मुँह में भर जाना!

उसकी नई-नई शादी हुई थी। तब एक बार भास्करन सरकारी काम से सेलम गया था। आमों का मौसम था।

"सेलम से आम लाना मत भूलना।" उसने कहा था।

जब वह वापिस लौटा, उसने उत्साह से पूछा था, "जो मँगाया था वह लाए?"

"बहुत महँगे थे, नहीं खरीदे।"

जीभ के स्वाद को उस दिन उसने काट कर फेंक दिया।

सरोज उससे पूछती थी, "भाभी तुम्हें कुछ भी अच्छा नहीं लगता, भला किसलिए जीती हो?"

"ज़िन्दा रहने के लिए, और क्या कारण हो सकता है ?"

जब वह मध्यान्ह की सिलाई समाप्त कर चुकी तो चार बज चुके थे। शेखर स्कूल से लौट आया था और माँ को बताने के लिए उसके पास बीसियों सूचनाएँ थीं।

"मोहन तमिष् की परीक्षा में कक्षा में प्रथम आया है। उसके पिताजी ने उसे तीन पहिये की सायकिल लेकर दी है।"

"तुम्हें भी चाहिए ?" छाया ने पूछा।

"अरे नहीं, मैं तो अब बड़ा हो गया हूँ। मैं तो बाइसिकिल पर ही चढ़ूंगा।"

"तो तुम्हें बाइसिकिल चाहिए ?"

शेखर अपनी जेब से कुछ सिक्के निकालकर दिखाता हुआ बोला, "देखो, मैं सायकिल खरीदने के लिए पैसे बचा रहा हूँ।"

हे भगवान ! कैसे अपने बाप की ही तरह बोल रहा है !

"क्या तुम्हें सचमुच बाइसिकिल चाहिए ? तुम्हारे लिए एक खरीद दें ?"

"बहुत महँगी नहीं होती, अम्माँ ?"

उसका मन भारी हो गया। वह चाहती थी कि शेखर सायकिल के लिए ज़िद करते हुए तूफ़ान खड़ा करता। वह स्वाभाविक होता। वह अपने ओंठ भींचकर ऐसा बुड्ढा क्यों हो गया है ? सायकिल न मिल पा सकने की बात को उसने क्यों ऐसे चुपचाप स्वीकार कर लिया है ? क्या अब बचपन जैसी कोई चीज़ रह ही नहीं गई ? उसने जल्दी से कहा, "जाओ खेलो, लेकिन धूल में मत खेलना।"

थोड़ी देर बाद भास्करन घर पहुँचा।

"छाया, कल वो गोपालन के लड़के का जनेऊ है। तुम चली जाना। मैं भी थोड़ी देर के लिए हो आऊँगा।"

"उसे क्या उपहार दोगे ?"

"ऐसे अवसर पर कोई उपहार देने की ज़रूरत नहीं है।"

"लेकिन हमें वहाँ भोजन करना होगा क्यों ?"

"यदि मैं अपने मित्र के लड़के के जनेऊ पर ही नहीं खाऊँगा तो और कब खाऊँगा ?"

"ठीक है, तुम जाना। मैं नहीं जाऊँगी।"

"जैसा ठीक समझो।"

फिर और कोई बात नहीं हुई। वह जानती थी कि भास्करन उससे दुबारा चलने के लिए कहेगा। उसके लिए बस के किराये की बचत होगी। बाद में उसने पूछा, "तो तुम अकेले जा रहे हो ?"

"हाँ, तुम्हीं ने तो कहा था कि तुम नहीं आ रही हो।"

"बिना कोई उपहार लिए कैसे जा सकते हैं ?"

"तुम्हें उपहार लेने से कौन रोक रहा है ? आख़िर तुम भी तो सिलाई करके पैसा कमाती हो। वह क्या रुपया नहीं है ?"

छाया काँप गई। यह अच्छा प्रश्न था। उसे पहले क्यों नहीं सूझा होगा कि वह अपने पैसे स्वयं खर्च कर सकती है ? अब भी उसे अपनी बचत के पैसों को निकालने की इच्छा नहीं हुई···वह सहसा काँप गई। क्या वह भी वैसी ही घिनौनी बन रही थी ? कंजूस ! जब शेखर ने

उससे सायकिल की बात की थी तब भी उसे यह नहीं सूझा था कि वह अपने रुपयों से सायकिल ख़रीद सकती है। ठंडे हाथों से उसने बगल में रखी कुर्सी को थाम लिया।

"क्या बात है ? तुम एकदम चुप क्यों हो गईं।" उसने ताना दिया।

"कुछ नहीं।" छाया बोली और डिज़ाइन की पुस्तक में से ब्लाउज़ के लिए नया डिज़ाइन खोजने लगी।

थोड़ी देर बाद, जब वह बैठा समाचार पत्र पढ़ रहा था, छाया उससे फिर बोली, "शेखर को एक सायकिल चाहिए।"

उसने रूखा उत्तर दे दिया, "उसे तो हज़ारों चीज़ों की ज़रूरत होगी। क्या हम वे सब खरीद सकते हैं ? दो चार साल में वह बड़ा हो जाएगा ओर सायकिल उसके लिए बेकार हो जाएगी। कितनी बड़ी फ़िज़ूलख़र्ची होगी।"

"तो अब क्या चीज़ ज़रूरी है ?" उसने पूछा।

भास्कर ने आश्चर्य से उसकी ओर देखा।

"आज तुम्हें क्या हो गया है !"

"कुछ नहीं। मुझे एक चीज़ की बहुत ज़रूरत है लेकिन वह तुम मुझे दे नहीं सकते।"

"क्या चीज़ है ?"

"मन की शान्ति।" उसने झपाटे से अपनी क़िताब बन्द कर दी।

"अगर तुम सायकिल लेना इतना ज़रूरी समझती हो तो स्वयं क्यों नहीं खरीद लेतीं ?"

"मैं लेने वाली हूँ।" उसने दृढ़ता से कहा।

उसे अचानक आश्चर्य हुआ कि अपना निश्चय इतनी दृढ़ता से प्रकट करने के पीछे कहीं वह स्वयं को आश्वस्त तो नहीं करना चाहती थी कि वह कंजूस नहीं है। उसने फिर दुहराया, "हाँ, मैं खरीदूँगी।"

"तो फिर इस बारे में मुझसे क्यों पूछती हो ?"

"मैं पहले तुमसे पूछ लेना चाहती थी और यदि तुम मना करते, मैंने निश्चय किया था कि मैं ख़ुद खरीदूँगी।"

"ठीक है, तुमने अपने पैसों के बारे में पहले नहीं सोचा, क्यों ठीक कह रहा हूँ ?"

"तुम 'तुम्हारा पैसा' 'मेरा पैसा' क्यों कहते हो ? क्या बच्चा हम दोनों का नहीं है ? या तुम्हें इसमें भी सन्देह है ?"

"चुप रहो !"

वह चुप हो गयी थी।

उन्होंने चुपचाप भोजन निबटाया। जब तक उसने रसोई की सफ़ाई की, शेखर रसोईघर की चौखट के पास ही फ़र्श पर पड़ा-पड़ा सो गया था। उसने उसे बिस्तर पर लिटाया, बत्तियाँ बुझाईं और अपने बिछौने में घुस गयी। भास्करन गहरी नींद में सोया था। यह देखकर वह फिर चिढ़ गयी। ऐसे मारक प्रश्नों से उसे आहत कर वह भला ऐसी गहरी नींद में कैसे सो लेता है ? लेकिन वह क्यों न सोये ? नींद ही तो एक ऐसी चीज़ है जिसके लिए उसे एक धेला भी ख़र्च नहीं करना पड़ता था ! वह सोचता है मैं कितनी संकुचित दिमाग़ की हूँ ! क्या मैं ही कंजूस हूँ ?

फिर भी···कोई चीज़ कीड़े की तरह उसके दिमाग़ को कुरेदने लगी। तो उसने क्यों क़भी अपनी बचत के पैसों को ख़र्च करने की नहीं सोची ? वह किसलिए बचत कर रही थी ?

किसी आपातस्थिति के लिए···कैसी आपातस्थिति ?—किसके लिए ?

जैसे बिजली कौंधने पर अंधकार में कुछ क्षणों के लिए सब कुछ दिख जाता है, वैसे ही मन की गहराई से कुछ भाव अनायास ही उभर आए थे।

उसे अपनी बैंक की पास बुक की रकम देखकर वैसा सन्तोष क्यों होता था ?

अपने ही विचार डरावने भूतों की तरह हँसकर उससे कहने लगे, "तुम भी उसी की तरह हो।"

उन विचारों को उसने परे धकेलने की कोशिश की लेकिन वे काले कम्बल की तरह उस पर पूरी तरह छा गए। उसका दम घुटने लगा, गला सूख गया और आँखों में आँसू आ गए।

"तुम रो रही हो ?"

वह चौंक गई। वह रो रही थी।

"अब आधी रात को किसलिए रो रही हो ?"

एक यही चीज़ तो ऐसी है जिसमें उदारता दिखाई जा सकती है।

भास्करन ने उसे अपनी बाँहों में भर लिया।

नियमतः जो पति अनिच्छित समय पर अपनी पत्नियों के प्रति प्रेम प्रकट करते हैं उन्हें···।

उसकी जकड़ मज़बूत होती गयी।

छाया ने अपने आप को ढीला छोड़ दिया पर उसका मन अलग-थलग रहा। छाया अचानक सोचने लगी वह शायद इसलिए प्रेम कर रहा है क्योंकि इसके लिए उसे कुछ ख़र्च नहीं करना पड़ता। यह विचार उसके मन में अंगार की तरह दहकने लगा।

जैसे कोई गरम-गरम चीज़ खाने को उत्सुक हो, वैसे भास्करन का मुँह उसके मुँह के निकट आ गया।

नियम होने चाहिएँ···नियम-नियम-नियम !

जो पति इस तरह अपनी पत्नियों के प्रति ज़बर्दस्ती करते हैं उन्हें स्थायी रूप से लाल बत्ती वाले क्षेत्रों में बसा दिया जाना चाहिए।

आँसुओं की धारा चुपचाप उसके दिल पर चोट करती रही।

"डाकिया !"

"छाया, तुम्हारे लिए चिट्ठी है।"

उसने कमर में बँधे अँगोछे से अपने हाथ पौंछकर अपना हाथ उसकी ओर बढ़ाया। लेकिन उसने तत्काल छाया को पत्र नहीं दिया। वह जल्दी जल्दी भुनभुनाकर उसे पढ़ रहा था।

छाया ने अपना हाथ खींच लिया। गुस्से के कारण उसकी अँगुलियाँ धीरे-धीरे घूँसे के आकार में बँध गईं। बहुत दिन हुए, उनके विवाह के तत्काल बाद उसकी एक सहेली ने उसे पत्र लिखकर बीस रुपये उधार मँगाए थे। उसके बारे में अब सोचकर, उसे आश्चर्य हुआ कि तब उसे इतना साहस था। उसने रुपये भेज दिए थे और तब से भास्करन ने उसके पत्रों की जाँच-पड़ताल शुरू कर दी थी।

"तुम्हारी माता जी की है।"

"तुमने पढ़ तो ली है, क्या लिखा है तुम ही बता दो न ?"

जब वह छोटी थी, वह कभी भी अपनी कोई चीज़ बाँटती नहीं थी। यह मेरी फ्रॉक है,

यह मेरा रिबन है, यह मेरी पैन्सिल है। और अगर किसी ने उसकी थाली में खाना खा लिया तो वह राक्षसी का रूप धारण कर लेती थी। उसके इमली के बीज भी अलग थे। टेढ़े-मेढ़े दाँतों वाली उसकी मौसी हँसकर कहती, "तू बहुत तेज़ है रे!"

वही इमली के बीजों वाली छाया का अपना पत्र आज उसके हाथों में था। माँ के प्यार से भरा वह पत्र! ऐसा लग रहा था जैसे शीतल जल गर्म रेत में पड़कर भाप बनकर ऊपर उठ रहा हो।

उसके पढ़ चुकने के बाद पत्र पढ़ना छाया को बहुत बुरा लगता था। उसे ऐसा लगता जैसे भास्करन की निर्मम दृष्टि ने पत्र के सम्पूर्ण आनन्द को सोख लिया हो।

"क्या ख़ास बात हो सकती है! तुम स्वयं पढ़ लो। तुम्हारी बहन को देखने कोई लड़का आने वाला है। इस मौके पर तुम्हें बुलाया है। वे लोग स्वयं आकर नहीं कह सकते? बेपेरी से चिट्ठी भेजना ज़रूरी है?"

"सच! लाओ चिट्ठी दो!

जैसे किसी छोटे से बिल्ली के बच्चे को उठाते हैं, वैसे ही उसने वह पत्र अपने पति के हाथों से ले लिया।

यह माँ की चिट्ठी है!

"मेरी प्रिय छाया..."

जब वह पत्र पढ़ चुकी तो भास्करन की ओर देखकर बोली, "क्या करूँ?"

"मुझसे क्या पूछती हो? हज़ारों लड़के आएँगे तुम्हारी बहन को देखने के लिए, क्या हर बार तुम वहाँ जाओगी?"

कैसी ज़ुबान है इस आदमी की!

"लेकिन अम्माँ की इच्छा है कि मैं आऊँ।" उसने झिझकते हुए कहा।

लेकिन इस मामले में कोई निश्चित राय दिए बिना वह अपने ऑफ़िस चल दिया। उस क्षण उसे एकाएक एक बात सूझी। ऐसी बात, जिसे न सोचने के बारे में ही उसे सिखाया गया था। उसने सोचा, वह उसे छोड़ देगी। उसे लगा कि दस वर्षों की यातना के बाद अब उसका दिल पूरी तरह टूट गया है, और जिस क्षण उसने निश्चय किया कि वह उसे छोड़ देगी, उसे लगा कि उसके कन्धों से एक भारी बोझ उठ गया है। वह पढ़ी लिखी है (अरे वह अब तक यह सब क्यों भूल गयी थी?) और अपना पेट पाल सकती है। तो फिर वह इस क़ैद में क्यों पड़ी है? दूसरी औरतें आँख मूँदकर अपने पतियों की सेवा करती हों तो करें। वह अपने मन की करेगी। क्या भला है और क्या बुरा इसके बारे में कोई निश्चित नियम नहीं हो सकते। लेकिन जिससे किसी के मन को संतोष मिलता है वह निश्चय ही भला है। जिस चीज़ से आदमी को रात में शान्ति से पंखे के नीचे, बिना बिजली के बिल की चिन्ता किए हुए, सो पाने का अवसर मिले वही चीज़ ठीक होगी।

उसे अपने पंख पसार कर उड़ान भर लेनी चाहिए। वही ज़िन्दगी है।

उसे नौकरी मिल जाएगी। क्यों, अभी उस दिन किसी ने उससे पूछा तो था कि नज़दीक के ही स्कूल में वह सिलाई सिखा देगी? वह नौकरी उसे न भी मिली तो कोई बात नहीं। सिलाई मशीन तो उसकी अपनी है, उसे माँ ने दी थी। वह पेट पालने के लिए सिलाई कर सकती है। एक ब्लाउज़ के दो रुपये। क्या बढ़िया ज़िन्दगी होगी! सिर्फ़ वह और शेखर! दो-एक कमरों

वाला एक छोटा-सा घर—दो फ़ोल्डिंग कुर्सियाँ, शेखर के लिए एक मेज़-कुर्सी, एक कोने में उसकी सिलाई मशीन···वह रोज़ सिलाई करेगी, शेखर स्कूल जाएगा। शाम को वे दोनों सब्ज़ी खरीदने मायलापुर जाएँगे। जब शेखर का जन्मदिन होगा तो वे लोग उसके सब दोस्तों को अपने घर पर निमंत्रित करेंगे। वह उन लोगों के लिए मिठाइयाँ बनाएगी, भले ही चीनी कितनी महँगी क्यों न हो। रात में वह अकेले सो पाएगी। बिना बाल वाली उस छाती के स्पर्श या उन खुरदुरे हाथों के आलिंगन की कोई ज़रूरत नहीं। सारा बिछौना केवल उसका होगा। उसके मनसूबे धुएँ के बादलों की तरह ऊँचे उठने लगे।

"अम्माँ।" शेखर ने आवाज दी।

वह एक झटके के साथ होश में आई जैसे पहाड़ की चोटी से नीचे गिरी हो। काँपते हुए उसने पूछा, "क्या है?"

उसकी आवाज़ जैसे मन्सूबों के धुँधले बादलों को छाँटती, उसके पसरे डैनों को सिकोड़ रही थी। उसे अपने मन्सूबों की सचाई पर शंका होने लगी। वह एक आवेशपूर्ण खूनी की तरह हो रही थी जो हाथ में चाकू लिए खड़ा हो और उसे विश्वास न हो रहा हो कि वह खून उसने ही किया है। अपने विचारों को सही या ग़लत होने के सम्बन्ध में सोचने का उसे ख़्याल नहीं आया। उसे केवल आश्चर्य इस बात का हो रहा था कि आज तक उसने कभी ऐसी स्वतंत्रता अनुभव नहीं की थी, कि उसके मन में भी ऐसे विचार थे। वह अब समझ रही थी कि वह ऐसा कुछ नहीं करेगी। इसलिए नहीं कि उसे ऐसा नहीं करना चाहिए बल्कि इसलिए कि ऐसा करने का कोई फ़ायदा नहीं···।

विचारों के वेग ने उसे झिंझोड़ दिया। दस वर्ष की बोझिल कड़ुवाहट और क्षुब्ध मन में इस सबसे बाहर निकल आने की बात आ सकती है यह सोचकर उसे स्वयं आश्चर्य हुआ। वह शेखर के निकट चली गयी।

"तुम मुझे क्यों बुला रहे थे?"

"अम्माँ, मैं गेंद खेल रहा था और यह टूट गया।" वह भास्करन, उसका और शेखर का फ्रेम में जड़ा हुआ फ़ोटोग्राफ़ था। काँच टूट गया था। शेखर की ज़िद पर यह फ़ोटोग्राफ़ लिया गया था। इस फ़ोटो में उसने लाल किनारे वाली बैंगनी रंग की साड़ी पहन रखी थी और शेखर ने चारखाने की कमीज़ और निकर पहन रखी थी, और भास्करन—वह अभिशप्त नल—उसने क्या पहन रखा था?

अब फ़ोटोग्राफ़ देखकर उसे भास्करन पर बड़ी दया आने लगी। जब उसने अपने मायके वालों को यह फ़ोटो दिखाई थी तो झटपट कहा था, "कपड़ों में क्या धरा है? आदमी का दिल सब कुछ होता है।" मानो वह उसके बेढंगेपन के लिए दलील दे रही हो। जबकि वास्तव में वह जानती थी कि वह इस दलील का मतलब नहीं समझता। ऐसा नहीं कि वह अच्छे पहनावे का महत्व नहीं समझता हो बल्कि वह अपनी उस कंजूसी को भी खूब समझता था जिसके कारण वह पहनावे की मद में ख़र्च नहीं कर पाता था।

शुरू-शुरू में उसके भाई भी चट से कह देते थे, "अगर तुम अपने पति को समझाकर उसकी आदतें नहीं सुधार सकती हो तो यह तुम्हारी हार है।" उसे भाई की बात बहुत बुरी लगती थी वह मानती थी कि कोई कितना ही निकट सम्बन्धी क्यों न हो उसे दूसरे की व्यक्तिगत स्वतंत्रता में हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए। उसके पति को अधिकार है कि वह अपनी तरह जिए और उसे अधिकार है कि वह इससे असहमत हो। फिर भी, भाई की बात सुनने के बाद उसने

अपने पति की आदतों में बदलाव लाने का प्रयत्न किया था। वह दिल खोलकर ख़र्च करने लगी। उसे सुनाते हुए वह कभी-कभी टिप्पणी कर देती कि जीवन में पैसा ही सब कुछ नहीं होता, जीवन में प्रसन्नता होनी चाहिए। उसे यह सब समझ में नहीं आता था और न ही उसकी समझ में छाया का इस तरह ख़र्च करना आता था। वह इस तरह काम करता मानो उसने अपने वैवाहिक जीवन में ख़र्चपात की योजना बहुत पहले बना ली हो। और अब उस योजना के अनुसार चलना चाहता हो।

कुछ दिनों छाया ने जानबूझकर भास्करन से बोलचाल बन्द कर दी। लेकिन उसने इस बात पर ध्यान ही नहीं दिया तो मजबूर होकर छाया को स्वयं पहल करनी पड़ी, "तुम्हें मालूम है मैं पाँच दिन से तुमसे क्यों नहीं बोली ?" एक रात उसने पूछा।

' क्या तुम मुझसे नहीं बोल रही थीं ?" उत्तर में उसने पूछा।

तब भास्करन ने उसे मितव्ययी होने की आवश्यकता समझाई। जब वह अपनी बात कह चुका तो छाया ने मीठे स्वर में उसे समझाया, "तुम जब छोटे थे तो तुम्हें बहुत कष्ट उठाने पड़े। तुम्हें रोटी और शिक्षा के लिए कई लोगों पर आश्रित होना पड़ा। तुम्हें रोटी के लिए कितने ही घरों में कुंए से पानी भर कर ले जाना पड़ा। चूँकि तुम्हें पैसों के अभाव के कारण इतनी तक़लीफ़ें उठानी पड़ीं इसलिए तुम सोचते हो पैसा बहुत महत्वपूर्ण चीज़ है। लेकिन अब सब चीज़ें बदल गई हैं। क्या तुम्हारे लिए अब भी, मेरी अपेक्षा पैसा ज़्यादा महत्वपूर्ण है ?"

छाया ने तब सोचा था कि उसने भास्करन के व्यवहार का बहुत सही विश्लेषण कर लिया है। अब वह समझी कि अपने पति का विश्लेषण करने से अधिक और मूर्खतापूर्ण कोई काम नहीं हो सकता। वास्तव में ऐसा करने की कोई ज़रूरत ही नहीं थी। वह तो उसे दान कर दी गई है। वह उससे उम्र में बड़ा और अधिक शक्तिशाली है। वह उसकी सम्पत्ति है—वैसे ही जैसे लकड़ी का कोई फ़र्नीचर हो। अगर उसके पति की मृत्यु हो जाए तो लोग छाया के जीवन पर पर्दा डाल देंगे और उस पर 'समाप्त' लिख देंगे। फिर फ्रायड को पढ़ने और अपने पति को समझने का सवाल ही कहाँ उठता है ? वह अब बदलने से रहा क्योंकि उसे इस बात का पक्का विश्वास है कि वह शासन करने के लिए पैदा हुआ है।

वास्तव में, उसके मनोविश्लेषणात्मक भाषण पर वह छाया को घूरता रहा था और फिर ठहाका मारकर हँस दिया था।—"ऐसी बेवकूफ़ी की बातें क्यों कर रही हो ?" उसने छाया से पूछा था। उस दिन उसे लगा कि सैकड़ों घड़े पानी कुएँ से निकालने के साथ ही उसका हृदय भी कोमल भावनाओं से रिक्त हो गया है।

फ़ोटोग्राफ़ में उसका पहनावा बहुत ही भद्दा लग रहा था। लेकिन वह अक्सर, अपने मित्रों की व्यंग्यात्मक हँसी से बेखबर, उनसे कहता कि उसका फ़ोटो बहुत अच्छा उतरा है। ऐसे मौक़ों पर छाया को उस पर तरस आता था। उसे तब यह लगने लगा कि वह उसके लिए जो कुछ करती है वह पति होने के कारण नहीं बल्कि इसलिए कि वह एक प्राणी था जिस पर उसे दया आती थी। वह उसे भोजन कराती और उसकी दूसरी ज़रूरतों पर वैसे ही ध्यान देती जैसे वह पड़ौसी के पिल्ले का ध्यान रखती थी जब वह बारिश में भीगकर काँपता हुआ घर में घुस आता था।

"अम्माँ, क्या अप्पा नाराज़ होंगे ?" शेखर ने पूछा।

"नहीं बेटा, लेकिन आगे से घर के अन्दर गेंद मत खेलना।"

"इसे जल्दी से फिर मढ़वा लेंगे माँ, इस फ़ोटो में तुम कितनी अच्छी लगती हो !"

उसे उस क्षण प्रसन्नता की ऐसी तीखी अनुभूति हुई कि अपने आप पर संकोच होने लगा। क्या उसे बिल्कुल समझदारी नहीं है? एक छोटे बच्चे की प्रशंसा पर ऐसे खुश होना चाहिए?

"अम्माँ, तुम सुन्दर हो···"

कितना अच्छा सुनायी दिया था! एक दिन शेखर ऐसे ही शब्द अपनी पत्नी से कहेगा··· छाया को तब अनुभव हुआ कि उसके पति ने कभी ऐसे शब्द नहीं कहे थे, उनके चरम शारीरिक आवेग के क्षणों में भी नहीं! प्रेम की प्रक्रिया को उसने यांत्रिक, घृणित वस्तु में बदल दिया था। यहाँ तक कि वह स्वयं को उस वेश्या से भी गई बीती समझने लगी थी जिसके पास कम से कम आर्थिक मजबूरी का कारण तो था। उसके लिए निजी समर्पण का क्या कारण था? क्या वह अपना कर्त्तव्य निभाने वाली सती थी? दुनिया ऐसा कह सकती है, उसे स्वयं को पति पर निछावर कर देने वाली पवित्रता की देवी के रूप में प्रतिष्ठित कर सकती है। लेकिन सचाई यह न थी। यदि ढोंगी स्त्रियाँ ही सती होती हों तो वह भी सती हो सकती है। अपनी ज़िन्दगी की खुशियों को मारकर अपने आपको शहीद समझना, अपने आपको धोखा देना—यह स्त्रीत्व के के लिए गौरव की बात समझी जाती है। (नियम: ऐसी तमिष् फ़िल्मों के निर्माताओं के विरुद्ध कानूनी कार्यवाही की जानी चाहिए जो बलिदान हुई स्त्रियों का चित्रण करते हैं) क्यों कोई ऐसे देवत्व के लिए जिए जिसका कोई अस्तित्व ही नहीं है।

मुझे ऐसा आदमी चाहिए जो मेरे शरीर को ऐसे परखे जैसे वह किसी सुन्दर चित्र को परखता हो, और जिसके लिए मेरी बगल में लेटना मात्र ही प्रसन्नता का कारण हो। यह है जो मुझे चाहिए! लो! ये निषिद्ध विचार मेरे मन में आ गए! अब क्या होगा? क्या पवित्र भारत भूमि भस्म हो जाएगी?

"अम्माँ, मैं बाहर खेलने जा रहा हूँ।" शेखर ने आवाज़ दी।

वह विचारों में खोई-खोई-सी थी कि अँगुलियों से फिसलकर पत्र नीचे गिर गया। वह पत्र को उठाने के लिए झुकी।

जब यह एक पत्र उसके मन में भावनाओं का ऐसा ज्वार ला सकता है तो उसके लिए अपनी माँ से मिलना कितना ज़्यादा ज़रूरी होगा? वह आदमीनुमा काठ का बुत इसे क्यों नहीं समझता!

वह सोच रही थी आज उसकी छोटी बहिन भूमा कितनी रोमांचित हो रही होगी। भूमा और वह केवल बहिनें ही नहीं, सखियाँ भी थीं। अपनी इस बहिन से उसने अपने दुःख के अलावा और कुछ भी नहीं छिपाया था।

वह सोचने लगी, भावी वर कौन होगा! उसे मालूम था कि भूमा अक्सर कॉलेज से ईश्वरन नाम के एक युवक के साथ घर लौटती थी। अच्छा खुशमिज़ाज़ लड़का था। वह क्षणिक रुककर सोचने लगी, कहीं वह अपने अवचेतन मन से यह तो नहीं चाहती कि भूमा अपने मन की शादी करे, क्योंकि उसका अपना विवाह माता-पिता ने तय किया था।

उसने हलके से अपना सिर हिलाया। वह आज बहुत ज़्यादा सोच रही थी। सोचने से क्या होता है। कोई क्रान्ति तो नहीं आ जाती! उसने तय किया कि वह वेपेरी जाएगी। भास्करन उसके पास कुछ भी रुपये-पैसे छोड़कर नहीं गया था और साढ़े बारह बज गए थे। अब बैंक जाने का समय नहीं था। वह रसोईघर में गई और उस डिब्बे को टटोला जिसमें वह रेज़गारी रखती थी। उसे दो रुपये और कुछ पैसों की रेज़गारी मिली। अपनी कपड़ों की अलमारी

खोलकर उसने एक बैंगनी रेशमी साड़ी भूमा को पहनाने के लिए निकाली। शेखर अन्दर आ गया।

"अम्माँ, तुम नानी के घर जा रही हो ?"

"हाँ, चलो, तुम भी चलो।"

"तुम क्या पहन रही हो, अम्माँ ?"

उसे थोड़ा चैन मिला। जब वह शेखर की चुनी हुई साड़ी पहन चुकी तो शेखर हाथ में गुलाब का एक फूल लिए दौड़ता हुआ अन्दर आया।

"कहाँ से लाए बेटा ?"

"मैंने ख़रीदा नहीं अम्माँ, सामने वाली आण्टी ने दिया।"

शेखर का पहला वाक्य आग की लपट की तरह उसे छू गया।

"क्यों, अपनी अम्माँ के लिए फूल ख़रीदने में कोई हर्ज़ है ?"

शेखर की समझ में नहीं आया कि क्या उत्तर दे। वह असहज होकर खड़ा-खड़ा उसे ताकता रहा।

"अरे बुद्धू, आदमी को खूब खर्च करना चाहिए।" उसने शेखर के बाल सहलाते हुए कहा।

उन्हें देखकर छाया की माँ का चेहरा खुशी से चमक उठा।

'मैं जानती थी तुम आओगे।" वह बोलीं—"अगर तुम न आतीं तो भूमा को बुरा लगता। आओ, मुन्ना ! क्या तुम्हें मालूम था कि तुम्हारी मौसी की शादी होने वाली है ?"

"वर कौन है अम्माँ ? तुमने चिट्ठी में इस बारे में कुछ नहीं लिखा था। क्या वह हम लोगों की जान-पहिचान वालों में से कोई है ?"

"नहीं, नहीं। वह एक कॉलेज में लेक्चरर है। अरे, अभी थोड़ी देर में तुम उसे देख ही लोगी। भूमा से क्यों नहीं पूछती ? वह और उसके पिताजी ही विस्तार में जानते हैं।"

"क्या वह तुम्हारी लड़की नहीं है ?" छाया ने माँ को चिढ़ाते हुए कहा, "तुम्हें भी तो सब बातें विस्तार से मालूम होनी चाहिएँ।"

"लड़की तो मेरी भी है, लेकिन तुम्हारे पिताजी मुझे कभी कुछ बतलाते हैं ?" अम्माँ ने उत्तर दिया।

छाया अपनी माँ का दुःख जानती थी कि उनके पति उनसे कभी किसी बात पर राय नहीं लेते। वास्तव में, जब उसके लिए भास्करन का चुनाव किया गया था तो वे बहुत अप्रसन्न थीं। छाया को एक घटना अभी भी याद है :

उसके विवाह के बाद की बात है। वे सब लोग विवाह के फ़ोटोग्राफ़ देख रहे थे। अम्माँ ने अलबम अपनी गोद में रख लिया था और वे एक-एक चित्र को देख रही थीं। छाया और भूमा उनकी अगल-बगल बैठी थीं। बीच-बीच में अम्माँ चुपके से अपनी आँखें पोंछ लेती थीं। छाया ने उस समय इस पर विशेष ध्यान नहीं दिया। वह स्वयं फ़ोटो देखने में मगन थी। अचानक अम्माँ उठकर रसोईघर में चली गई थीं और थोड़ी देर बाद जब छाया वहाँ पहुँची तो उसने उन्हें एक कोने में चुपचाप छत को सूनी निगाहों से घूरते पाया था।

"क्या हुआ अम्माँ ?" उसने जल्दी से पूछा था।

"कुछ नहीं, मुझे थोड़ी घबराहट हो रही थी और कुछ नहीं।" उन्होंने उत्तर दिया था।

"लेकिन तुमने यह तो बताया ही नहीं कि तुम्हें फ़ोटो कैसे लगे !" छाया ने ज़िद की थी।

"उसमें बताना क्या है? तुम जैसी रोज़ दिखाई देती हो वैसी ही लग रही हो···· सुन्दर।"

"लेकिन तुमने उनके बारे में कुछ नहीं कहा···।"

"ओह" अम्माँ उठकर चूल्हा जलाने लगी थीं, "जाओ, अच्छी बेटी, थोड़ा पानी ला दो। कॉफ़ी बना दूँ, देर हो रही है।"

"अम्माँ, तुम रो क्यों रही हो?"

"कहाँ रो रही हूँ? यह स्टोव का धुआँ आँखों में लग गया। जाओ, मैंने जो कहा है वह करो।"

उसे तब वह घटना इतनी महत्त्वपूर्ण नहीं लगी थी। लेकिन, बाद में उसे वह याद आती रही इसलिए उसने माँ से उस घटना पर फिर बात की थी।

"माँ, तब जब मैं खुश थी तो तुम क्यों उदास हो गईं और रोने लगी थीं?" उसने पूछा था—"क्या मेरी खुशी तुम्हें अच्छी नहीं लगती? मेरे पति को अगर यह मालूम हो गया तो उन्हें कैसा लगेगा?"

"मुझे माफ़ कर दो छाया, मुझसे ग़लती हो गई।" अम्मा ने धीमे स्वर में उत्तर दिया था। बाद में, उसने अपने भोलेपन में भास्करन से इसका ज़िक्र किया था।

"वे जैसा चाहें उन्हें सोचने दो, मैं तो तुम्हें बहुत प्यार करती हूँ।" उसने भास्करन से कहा था। इसके उत्तर में वह बोला—"यह भी कोई ध्यान देने वाली बात है!"

उसने बाद में, बहुत बार उस घटना को याद किया। अचानक, सोने से पहले या दोपहर के एकान्त में, माँ की वह छवि उसकी आँखों में आ जाती थी जिसमें माँ अँधेरी रसोई में बैठी सूनी आँखों से छत की ओर टकटकी लगाए बैठी होतीं।

भूमा अपने कमरे में बैठी एक क़िताब पढ़ रही थी।

"तुम पढ़ रही हो या पढ़ने का बहाना कर रही हो?" छाया ने उसे चिढ़ाया।

"क्यों, बहाना बनाने की क्या बात है?" भूमा ने उत्तर दिया।

"मुझे पूरी बात बताओ, भूमा।"

"बताने को है ही क्या? शाम को वह आएगा और तुम देख लेना।"

"लेकिन वह मेरी जान-पहिचान वालों में से कोई है?"

"तुम तो उसे जानती हो लेकिन अप्पा और अम्माँ नहीं जानते।"

"क्या वह ईश्वरन है?"

भूमा ने स्वीकृति में सिर हिला दिया।

"अच्छा! तो यह बात है! रुको, मैं उन लोगों को सब बताती हूँ!"

"क्यों? कम से कम मेरी तो खुशियाँ बनी रहें?" भूमा ने तीव्रता से प्रश्न किया।

"तुमने क्या कहा, भूमा?"

"कुछ नहीं। ऐसे ही मज़ाक कर रही थी!" भूमा ने हँसने की कोशिश की। लेकिन छाया समझती थी कि यह मज़ाक नहीं था।

माँ ने रसोईघर से उसे पुकारा। वे लोग नाश्ता तैयार करने में व्यस्त थे, तभी शेखर

अपने कई साथियों के साथ दौड़कर अन्दर आया।

"अम्माँ ! आइसक्रीम के ठेलेवाला आया है। हम लोगों के लिए ख़रीद दो न !"

"नहीं, आइसक्रीम तुम्हारे लिए ठीक नहीं होती। जाओ, अब जाओ।"

"अरे बच्चा है, ज़िद कर रहा है, क्यों नहीं ले देती ?" उसकी माँ ने शेखर का पक्ष लेकर कहा।

"लेकिन अम्माँ, मुझे फिर सब बच्चों के लिए ख़रीदनी पड़ेगी···देख नहीं रही हो।" छाया ने झुंझलाकर उत्तर दिया।

अम्माँ ने एक क्षण के लिए घूर कर उसकी ओर देखा। फिर, रसोई की अलमारी खोलकर एक पांच रुपये का नोट निकाला और उसे शेखर को थमा दिया।

"जाओ, अपने लिए और अपने दोस्तों के लिए आइसक्रीम ले लो।" उन्होंने प्यार से कहा। शेखर ने झिझककर अपनी माँ की ओर देखा।

"ले लो !" छाया चिल्लाई—"लालची सुअर ! हर वक़्त खाने की ही सूझती है, जैसे नीचे से ऊपर तक सिर्फ़ पेट ही पेट हो ! जाओ जो मन हो खरीद लो !"

शेखर ने नोट गिरा दिया और दयनीय स्वर में बोला—"मुझे गाली मत दो अम्माँ !" उसके होंठ काँपने लगे।

"ऐसे क्यों बोलती हो छाया ? देखती नहीं बच्चा है ? उस से रुपया उठाने को कहो।" छाया की माँ ने कहा। छाया चुप थी।

फिर उसकी माँ ने स्वयं आगे बढ़कर रुपया शेखर के हाथ में रख दिया और बोली—"माँ काम कर रही है मुन्ना ! तुम्हें अब कुछ नहीं कहेगी। अब जाओ, आइसक्रीम ले आओ। फिर आकर नानी को एक चुम्मी देना।"

शेखर दौड़ कर बाहर चला आया।

"तुम्हें हो क्या गया है छाया ? सिर्फ़ एक तो तुम्हारा बेटा है, उसे भी खुश नहीं रख सकतीं ?"

"मैं उसे ठीक ही रखती हूँ। तुम्हारे लिए उपदेश देना आसान है। मेरी परेशानियाँ कौन जानता है ?"

अम्माँ ने फिर कोई चर्चा नहीं की। पूरे दिन वे दूसरी दूसरी बातों से छाया का मन बहलाने की कोशिश करती रहीं। लेकिन छाया तनी ही रही और अन्त में माँ के लिए यह असह्य हो उठा।

"देखो छाया, कभी-कभार तो तुम यहाँ आती हो। तो भी तुम ऐसी चिड़चिड़ी क्यों रहती हो ? वैसे तुम गुस्से में भी सुन्दर लगती हो।"

छाया तब हँस दी थी और उसने सामान्य होने का प्रयत्न किया था। जब वह भूमा को सजाने में मदद कर चुकी तो घर के पिछवाड़े मुँह धोने चली गई। घर के प्रवेशद्वार पर दूधवाला हाँक लगा रहा था। वह जब तक ताज़गी से भर नहीं गई मुंह पर ठण्डे पानी के छींटे मारती रही और फिर वापिस भूमा के कमरे से तौलिया लेने चली आई। वह दरवाज़े पर ही ठिठक गई, अन्दर भूमा और माँ बातें कर रही थीं—"दूधवाला रुपये उधार माँग रहा है भूमा, अप्पा चाबियाँ अपने साथ ले गए हैं। मैं क्या करूँ ? छाया से माँग लूं क्या ?" माँ कह रही थीं।

"बेवकूफ़ी की बात मत करो माँ ! देखा नहीं आइसक्रीम लेने की बात पर उसने कैसा बवाल किया ? मैं यहाँ से सब सुन रही थी। अब वह हमारी पुरानी छाया नहीं रही। बहुत

बदल गई है। दूधवाले से कह दो कल आए रुपया लेने।"

छाया के पैर काँपने लगे। क्या यह भूमा बोल रही थी? माथे पर फैली पानी की बूँदों के साथ पसीना छलकने लगा। वह जल्दी से वहाँ से हट गई और उसने अपनी साड़ी से ही मुँह पोंछ लिया, फिर जल्दी से अपने बालों में कंघी की।

"तुम अपनी साड़ी नहीं बदलोगी छाया?" माँ ने रसोईघर में घुसते हुए पूछा।

"क्यों, ? किसलिए?" छाया ने उत्तर दिया—"यह ठीक तो है। आख़िर मैं तो दुल्हन नहीं हूँ!"

वह अच्छे कपड़े पहन कर भूमा की बगल में बैठ ईश्वरन से बात करना चाहती थी। लेकिन अब उसका कोई अर्थ नहीं होता। भूमा अब वह नहीं रही थी जैसा वह उसे समझती थी…।

उसे सामने वाले हॉल से अपने पिता की आवाज़ सुनाई दी। वे लोग शायद आ गए थे। उसने रसोई की खिड़की से झाँक कर देखा। ईश्वरन था। वही ईश्वरन जिसे उसने पहले भी देखा था। लेकिन आज वह बिलकुल बदला हुआ नज़र आ रहा था। भूमा और ईश्वरन को एक साथ देखकर उसे लगा, उनकी जोड़ी बहुत सुन्दर है। उसे उस फ़ोटोग्राफ़ की याद आई जिसे शेखर ने तोड़ दिया था। वह बरबस ही स्थूल, भद्दे भास्करन और खूबसूरत ईश्वरन की तुलना करने लगी। उसके सिर में हथौड़ियाँ सी चलने लगीं। थोड़ी देर बाद, उसके पिता ने उसे हॉल में बुलाया और उसका परिचय कराया। वह थोड़ी देर वहाँ बैठी और औपचारिकता निभाने के लिए उनसे बातें करती रही। फिर वह कमरे से निकल आई और घर के पिछवाड़े चली गई। उसका माथा बहुत जोरों से दुख रहा था। वह बेचैनी से कपड़े धोने के पत्थर पर बैठ गई। इस उम्मीद में कि ठंडी हवा के झोंके से उसकी तबियत सुधर जाएगी। लेकिन उसकी उद्विग्नता और बढ़ने लगी। अँधेरा हो गया था और संध्या को खिलने वाले फूलों की गंध हवा में भर गई थी। उसे लगा जैसे अचानक वह एक घने अंधकार से घिर गई है।

बन्द आँखों के अँधेरे में एक पुच्छल तारे की तरह कुछ कौंध गया। लाल, हरी, नीली फुलझड़ियाँ उसमें से निकल रही थीं। चकाचौंध करने वाला प्रकाश था, लेकिन फिर भी वह आँखों में नहीं चुभ रहा था। फूलों की पंखड़ियों की तरह वे गिर रहे थे। किसी शिशु के स्पर्श से कोमल। कपास के छोटे-छोटे कणों की तरह वे इधर-उधर उड़ रहे थे। फिर वे आपस में मिल कर एक हो जाते। उस सफ़ेद बिम्ब में से दो नीली आँखें उभर आई थीं। फिर वे ओझल हो गई। एक गोलमोल गुड़िया के हाथों और श्वेत शंख की तरह धवल पेट की छवि उभर आई थी और वह पुच्छल तारा फिर से घूमने लगा।

"बहुत हो गया! बहुत हो गया! अब मुझसे नहीं सहा जाता।" वह चिल्लाई।

"छाया!" हवा की सनसनाहट की तरह माँ का स्वर उस तक पहुँचा।

"अम्माँ!" हिचकी की तरह उसके कण्ठ से स्वर उठा।

"क्या हुआ बेटी? क्या बात है?"

अम्माँ ने उसे अपनी बाँहों में भरकर आहिस्ता से उसका सिर अपनी गोदी में रख लिया था।

उसके अन्दर एक ज्वर सा उठा और उसके कण्ठ तक पहुँच गया। छाया को अपने मुँह में खट्टे पित्त की अनुभूति हुई और उसने मुँह पर अपनी हथेली रख ली।

अम्माँ ने उसे बिठाकर उसकी पीठ सहलाते हुए कहा—"मैं भूमा और तुम्हारे अप्पा को

बुलाती हूँ। मैं इतनी परेशान थी कि उन्हें बुलाने का ख़्याल ही नहीं आया।"

"नहीं, मत बुलाओ।" छाया ने अपना सिर झटककर कहा—"अम्माँ, मैं···!"

"मैं समझ रही हूँ। कितने महीने हो गए ?"

"पता नहीं।" उसने वेचारगी से कहा। वह माँ को अँकवार में भरकर रोने लगी। वह बेझिझक रो रही थी, सिसक रही थी जैसे वह पूरी तरह पराजित हो गई हो।

"क्यो···क्यों हुआ ऐसा ? उफ़··· मैं कितनी अकेली हूँ···क्या मैं कभी मुक्त नहीं हो पाऊँगी ?"

"वेवकूफ़ लड़की, ऐसे क्यों रो रही है ?" उसकी माँ फुसफुसाई, उनका स्वर भावना की आर्द्रता से भीगा हुआ था।

"भूमा···कह रही थी मैं बदल गयी हूँ···लेकिन इसके लिए मैं क्या करूँ ?···अम्माँ··· उसने मुझे पैसे का लोभी बना दिया है। उफ़, तुमने मेरी शादी क्यों की···।" सिसकियों के बीच छाया के शब्द फूट रहे थे।

"क्या बात है छाया ? ऐसे क्यों बोल रही हो ?" चिन्तित होकर उसकी माँ ने पूछा।

माँ के स्वर में जो चिन्ता थी सहसा उसका आभास छाया को हुआ और वह अपने आँसू पोंछती हुई उठ बैठी।

"मैंने क्या कहा था ?" उसने घवराकर पूछा, "मैं शायद वेहोशी में कुछ बड़बड़ा रही थी। मुझे थोड़ी थकान हो रही है—बस।"

"छाया, कोई बात है जो तुम मुझे नहीं बता रही हो। क्या बात है बताओ ?" चिन्तित होकर उसकी माँ ने पूछा।

"कुछ नहीं अम्माँ ! यह गर्मी है न ! और···और इस बारे में मुझे मालूम ही नहीं था··· अगर मुझे मालूम होता तो मैं धूप में आती ही नहीं—अभी किसी को मत बताना।"

छाया के साथ माँ भी घर के अन्दर आई। लड़की के आँसुओं से उनके ब्लाउज़ का कन्धा भीग गया था।

जब छाया मुँह धो चुकी तो उसने शेखर को आवाज़ दी, "अब घर चलें मुन्ना !"

भूमा ने अपने कमरे से ही उसे विदाई दे दी। उसके पिता हमेशा की तरह बोले—"ठीक से जाना।" अकेली अम्माँ उसके साथ दरवाज़े तक आई और उसके कन्धे पर हाथ रख, दीर्घ निश्वास भरकर बोली—"फिर आना, जल्दी।" छाया ने सिर हिला दिया और चल पड़ी। वह जानती थी कि अम्माँ उसे ठीक-ठीक समझ पाती है। इसलिए नहीं कि वह उसकी माँ है बल्कि इसलिए कि स्वयं उन्होंने छाया की तरह कष्ट भोगे हैं। उसे माँ के घर में उपेक्षित पड़ी वह पुरानी वीणा याद हो आयी।

अपने यौवन में अम्माँ बहुत अच्छी वीणा बजाती थीं। विवाह के तत्काल बाद, वे रोज़ शाम को पति के दफ़्तर से लौटने का समय होने तक वीणा बजाती रहती थीं। एक दिन पड़ौस के उन बुजुर्ग ने अम्माँ को बुलाकर कहा था। "पिछले जन्म में तुमने भगवान को शहद का लेप किया होगा इसलिए तुम्हारे संगीत में इतनी मिठास है। मुझे रोज़ सुनाओगी ?"

अम्माँ तब पन्द्रह वर्ष की रही होंगी। उन दिनों अपने स्नेहिल पिता से बिछुड़ने के कारण वह उदास रहती थीं और उन पड़ौसी बुजुर्ग को देखकर उन्हें अपने पिता की याद आती थी। इसलिए उसके लिए वीणा वादन में माँ को प्रसन्नता ही हुई थी।

एक शाम अम्माँ जब वीणा बजा रही थीं तभी अप्पा ऑफ़िस से आ पहुँचे। राग बीच

में ही न रोककर, अम्माँ टुकड़ा पूरा करने पर ही अप्पा का स्वागत करने उठी थीं।

जब वह बुजुर्ग चले गए तो अप्पा ने अम्माँ से पूछा—"तुमने किससे शादी की है?"

"क्यों, तुमसे।" अम्माँ ने बात न समझकर उत्तर दिया।

"तो जो कुछ तुम्हारा है वह मेरा है। तुम्हें हर ऐरे-गैरे के लिए वीणा बजाने की ज़रूरत नहीं है। मुझे सुनाने के लिए बजा लो वही काफ़ी है।" अम्माँ की हँसी फूट पड़ी थी। ऐसे आदमी के लिए जिसे हरि कौमुदी और मोहनम् का अन्तर न मालूम हो वह क्या वीणा बजाएगी? बाद में रात में, जब पति सो गए थे तो उन्होंने वीणा के तार खोल दिए और फिर उसे कभी नहीं बजाया।

"तुम ऐसा कैसे कर पाई?" छाया ने एक बार आश्चर्य से अम्माँ से पूछा था।

"तब मैं कर पाई थी। अब मैं अगर वीणा को छू लूँ तो पागल हो जाऊँगी। मेरे सारे निश्चय चूर-चूर हो जाएँगे···।"

छाया को लगा कि अब से सिर्फ़ अम्माँ ही उसकी मित्र हो सकती हैं। सिर्फ़ वे ही उसकी परेशानियों को समझ सकती हैं।

छाया और शेखर बस स्टॉप पर बस की इन्तज़ार में खड़े थे। अगले कुछ महीनों में वह बिल्कुल भी सिलाई नहीं कर पाएगी और डॉक्टर के बिल देखकर उसका पति उदास होने लगेगा। शायद अबकी बार लड़की हो। वह लड़की के लिए बहुत सारे सुन्दर सुन्दर फ्राक बना-सकती है···लेकिन इस समय यह विचार अच्छा नहीं लगा। अब यह सोचना कितना विचित्र लगता है कि कभी उसने बहुत सारे बच्चों की चाह की थी। अब तो उसे आने वाले दिनों के मेडिकल बिलों की और कई महीनों तक सिलाई से आमदनी न कर पाने की चिन्ता होने लगी थी। क्या वह दुबारा माँ बनने की खुशी भी महसूस नहीं कर पाएगी? वह इसे आख़िर क्यों जंजाल समझने लगी है? कल्पनाएँ! इस जीवन में कल्पनाओं की भी बलि चढ़ गई है।

नियम बनने चाहिएँ: नियम बनने चाहिएँ। किस चीज़ की रोकथाम के लिए? ओह, हर चीज़ की रोकथाम के लिए। इस दुनिया की हर बेहूदा चीज़ को रोकने के लिए।

उनकी बस आ पहुँची। वह अपने विचारों से बोझिल, बस में चढ़ गई, और वैसा ही बोझिल मन लेकर उतर भी गई। शेखर और वह धीरे-धीरे चलने लगे। जब वे लोग अपने घर पहुँचे, उसका मन घर में घुसने को नहीं हुआ। उसने चाहा कि वे लोग अपने मकान को पीछे छोड़ते हुए चलते चले जाएँ।

अचानक उसे भास्करन की याद आयी। वह अगर चली जाए तो वह कभी समझ नहीं पाएगा कि कैसी दारुण मानसिक यातना से गुज़र कर वह गयी है। उसे केवल इस बात का दुःख होगा कि उसके ऊपर ही यह विपत्ति आनी थी! मन ही मन उसे हँसी आई। वह दुबारा शादी भी नही करेगा क्योंकि उसके लिए यह एक और फ़िज़ूलख़र्ची होगी। हँसी अब उसके होठों तक आ पहुँची।

भास्करन ने घर में घुसते ही उन्हें डाँटना शुरू कर दिया।

"तुम कहाँ चली गयी थीं छाया? बड़ी गैर-जिम्मेवार हो!" वह चिल्लाया। छाया ने सोचा, भले और कुछ न सही यह जोकर बिना पैसे का तमाशा तो खड़ा कर देता है।

"कहाँ गई थीं तुम?" उसने फिर पूछा।

"वेपेरी।" रसोईघर की ओर जाते हुए उसने उत्तर दिया।

"तो तुम क्या समझती हो, ये बस में आने-जाने के पैसे कौन देगा?"

उसने अनुभव किया कि उसे इस छोटे से ड्रामे में सचमुच मज़ा आने लगा है।

छाया ने शान्ति से उत्तर दिया—"तुम इस छोटे-मोटे ख़र्च की चिन्ता क्यों कर रहे हो जबकि तुम्हारे ऊपर तो और भी भारी ख़र्चे आने वाले हैं ?"

"क्या ? कैसे ख़र्चे ?"

"बाद में बताऊँगी।"

"तुम तो हमेशा रहस्य ही बनाकर रखोगी !"

रात में जब वह बिछौने पर पहुँची तो वह अभी जाग रहा था।

"हाँ, वह ख़र्चे वाली बात क्या थी, जो तुम कह रही थीं ?"

उसे नहीं सूझ पाया कि वह क्या कहे इसलिए चुप रही।

"बताओ न !"

छाया को वह दिन याद आया जब उसने शेखर के बारे में उसे बताया था। तब उसके स्वर में लज्जा और शरारत रही थी। अब, उसके शब्दों में वैसा माधुर्य और गरिमा नहीं थी। बड़ी उपेक्षा से वह बोली—"दूसरा बच्चा होने वाला है।"

कमरे में मौन छा गया।

थोड़ी देर बाद भास्कर बड़बड़ाया —"हः—एक और ख़र्च बढ़ा।" उसने इसकी परवाह नहीं की। वह अब इन बातों की आदी हो चुकी थी। अब उसे इन सब बातों से छुटकारा पाने की भी कोई इच्छा नहीं रह गयी थी। पंख कटे पक्षी की तरह वह थक कर बिस्तर में घुस गयी। वह सोना चाहती थी।

भास्करन आने वाले ख़र्चों और भविष्य की कटौतियों के बारे में बोलता चला जा रहा था।

नियम···नियम···नियम···छाया सो गयी।

अंग्रेज़ी से अनूदित : शेखर जोशी

प्रवासी पौत्र

□ ना. पार्थसारथी

कनकसभै के भारत आने का समाचार जब उसके पत्र से मिला, बूढ़े वेदगिरी का मन उत्साह से भर गया। पर अंतिम पंक्तियों को पढ़ते ही सारा उत्साह काफूर हो गया। बेटे ने लिखा था, इस बार समयाभाव के कारण वे गाँव नहीं आयेंगे। उन्हें लगा, अगर उन्हें अपनी अनदेखी बहू और पोते को देखना है तो उन्हें मद्रास जाना होगा। बेटा मद्रास में एकाध दिन रुकने वाला था।

इस बुढ़ापे में गाँव में अकेले जीते उन्हें कई साल होने को आए। सारी तकलीफ़ें, अकेलेपन की तमाम टीस जैसे हवा हो गयीं। बेटे, बहू और पोते को देखने की तीव्र इच्छा हावी होने लगी और उनके रोम रोम में दुलार फैल गया।

खूब याद है उन्हें, इस बिन माँ के बेटे के लिए वे माँ और पिता दोनों ही भूमिकाएँ निभाते रहे थे। बेटे को अच्छी तरह पढ़ाया लिखाया। स्कॉलरशिप लेकर वह विदेश चला गया। फिर वहीं उसने अपनी सहपाठिन कोलंबो वासिनी तमिष् लड़की से विवाह भी कर लिया। दोनों को वहीं नौकरी मिली और वहीं बस गए। पोते का जन्म भी हो गया। पर इन तमाम घटनाओं से वे पत्रों के माध्यम से ही जुड़े रहे।

बेटे ने उन्हें अमेरिका आने का आमंत्रण दिया था, पर वे टाल गए थे। बेटे ने वापसी टिकट भी भेजने का अश्वासन दिया था। पर बुढ़ापे का ख्याल कर वे टाल गए। कभी भारत

आयेंगे तो मिल लेंगे।

डाक से, पहले शादी के चित्र फिर पौत्र के चित्र आते रहे। वे देखकर फूले नहीं समाते। कभी नदी के किनारे से लौटते हुए, शाम टहलते हुए अपने हमउम्र साथियों को अपने नन्हें पोते-पोतियों के साथ घूमते देखते तो, कलेजे में जैसे हूक सी उठने लगती। वे हज़ारों मील दूर बैठे पोते की याद में खो जाते।

"बेटे का नाम भी आपके नाम पर ही रखा है। घर पर प्यार से कुमार कहते हैं। स्कूल में बी० गिरि।" कनकसभै ने स्कूल में पढ़ने वाले बेटे की एक-एक बात लिख भेजी थी। उन्हें तो खूब खुशी हुई। सोचा, चलो उनका नामधारी बिरवा वहीं दूर अमेरिका में ही सही, पल तो रहा है।

कनकसभै को अमेरिका से सीधे आना था। वहाँ दो दिन ठहरकर फिर श्रीलंका होते हुए सिंगापुर, फिर वहीं से वापसी की योजना थी। अगर उनसे मिलने बरगुपट्टी आता तो फोकट में पाँच दिन ठुंक जाते। फिर छुट्टी मुश्किल से दस पंद्रह दिनों की ही मिल पायी है। बेहतर यही होगा कि वे मद्रास आ जाएँ और वहीं मिलना मिलाना हो जाए। स्वयं उन्होंने भी बेटे की व्यस्तता को ध्यान में रखकर यही योजना बनायी थी।

बच्चे तो उन्हें यूँ भी बेहद भाते। गांधी जयन्ती हो या पंद्रह अगस्त वे अपनी पेंशन की रकम से मिठाइयाँ खरीदते और बच्चों में बाँट देते। कुछ ग़रीब बच्चों को क़िताबें और कापियाँ दिलवा देते।

अब तो वे स्वयं अपने पोते को देखने जा रहे हैं। क्या लेकर जायेंगे। उन्हें जैसे चिंता होने लगी। महाराजिन को बुलवाकर आनन-फानन में तमाम चीज़ों के आर्डर दे डाले।

मुरुक्कु, गुलगुले, थालीपीठ, मूँग के लड्डू और जाने क्या-क्या! उन्हें पूरा विश्वास था कि इन स्वादिष्ट भारतीय व्यंजनों को उनका पोता पहली बार बड़े चाव के साथ खायेगा। महाराजिन कुरकुरे नमकपारे, मुरुक्कु और तमाम पकवान स्टील के बड़े पीपे में भर कर रख गयी। उनसे अपना हिसाब भी पूरा कर गयी।

वे तो जैसे मगन होने लगे थे। इन दिनों लगातार बेटे और बहू के बारे में सोचने लगे थे। जाने कितनी कल्पनायें गड्ड मड्ड होने लगी थीं। कपालीश्वर का मंदिर, मेरीया बीच, अडयार का वह विशाल बरगद—वे अपने पोते को जी भरकर घुमायेंगे। बेटा-बहू व्यस्त रहते हों तो रहें, वे खुद एक ऑटो करेंगे और पोते को ले जायेंगे। इस बात की कल्पना ही उनके लिए सुखद थी।

आख़िरकार वह दिन भी आया, जब उन्हें मद्रास के लिए रवाना होना था। पकवानों से भरा पीपा, वर्षों पहले गुजरी पत्नी का एक पुराना चित्र, उनके साथ था। मन में जैसे प्यार रह-रह कर उमड़ रहा था। झुर्रियों से भरे शरीर में जैसे स्फूर्ति का संचार होने लगा था। हालाँकि यह उम्र अकेले सफ़र करने की क़तई नहीं थी पर पोते को देखने की इच्छा ने जैसे उनके भीतर अदम्य साहस भर दिया था।

उन्होंने बेटे को पहले ही लिख दिया था कि वह उन्हें लेने स्टेशन आने की तक़लीफ़ न उठाए। शेंकोटा पैसैंजर अलस्सुबह एग्मोर पहुँचती है। अपनी नींद वह व्यर्थ में ही खराब करेगा। खुद वे ऑटो करेंगे और पहुँच लेंगे। पर भीतर से उनकी अपेक्षा थी, कि बेटा अपनी आसक्ति के तहत ज़रूर चला आयेगा। आख़िर इतने दिनों के बाद मिल रहे हैं। बहू को भी वे पहली बार देख रहे हैं। हो सकता है बहू उनके पैरों पर झुक आए। वे तो जी भर कर उसे असीसेंगे। दूधों

नहाने और पूतों फलने, अखंड सौभाग्यवती होने का आशीष। उनका मन इस आशीष की कल्पना मात्र से भर आया।

पोता तो अमेरिका में ही पला है, हो सकता है वह यहाँ के तौर-तरीक़ों से वाकिफ़ न हो। पर बेटा भारतीय परंपराओं और रीति-रिवाज़ों को कतई नहीं भूला होगा। वह अपने बेटे को ज़रूर टोकेगा—"बाबा के पैर छूकर आशीर्वाद लो बेटे।" उनकी कल्पना उड़ान भरने लगी थी। जो भी मिलता उसी से कहते फिरते कि वे बेटे से मिलने मद्रास जा रहे हैं।

मद्रास में उन लोगों को कुल अड़तालीस घंटे ठहरना है। उसमें भी एक दिन तो निकल ही गया समझो। शाम छह बजे उन्हें कोलंबो रवाना होना है। रात नौ बजे, वे गाँव की गाड़ी ले लेंगे। उन्हें हवाई अड्डे पहुँचाकर वे सीधा स्टेशन निकल लेंगे। उन्होंने हिसाब लगाया। कुल मिलाकर बारह घंटे वे साथ रह लेंगे। लेकिन क्या हुआ ! अमेरिका से आया पोता अपनी तोतली आवाज़ में जब उन्हें 'बाबा' कहेगा, तो क्या वह क्षणांश एक युग के बराबर नहीं होगा ? उस एक क्षण के लिए काल की गति क्या रुक नहीं जाएगी ? उनकी मीठी कल्पनाएँ उन्हें गुदगुदाने लगीं। नींद नहीं आयी। वे बर्थ पर करवटें बदलते रहे। ट्रेन देर से पहुँची। एग्मोर उतरे तो सात बज चुके थे। एक हाथ में पीपा और दूसरे हाथ में झोला लिए जब वे स्टेशन पर उतरे, उनकी आँखें चारों ओर दौड़ गयीं। एक हल्की-सी अपेक्षा थी भीतर, शायद बेटा स्टेशन लेने आया हो।

वे दस मिनट तक खड़े रहे। पूरा प्लेटफॉर्म खाली हो गया। उनकी आँखें बेटे को खोजती रहीं। न, वह नहीं आया। बेटे ने, जिस इंटरकांटिनेंटल होटल का पता दिया था, वहीं के लिए उन्होंने ऑटो तय किया और कुछ भारी मन से चढ़ गए। बदरंग धोती कुरता, कानों में लाल पत्थर के कुंडल, टूटी कमानी वाला चश्मा, झोला और पीपा लिए जब वे रिसेप्शन पर पहुँचे, सब उन्हें घूरने लगे। यह तो भला हुआ जो वे ऑटो से उतरे वरना दरबान उन्हें भिखमंगा समझकर दुत्कार ही देता।

"अमेरिका से कनकसभै, मेरा बेटा यहाँ आया है।" वे हकलाते हुए बोले।

"ओह, वी. के. सभाय! कमरा नम्बर एक सौ दो, थर्ड फ्लोर।" रिसेप्शन पर बैठी महिला ने कहा। एक लड़के को बुलवाकर उन्हें लिफ़्ट तक पहुँचाने का आदेश दिया। दरवाज़े तक पहुँचे तो उनके हाथ-पाँव फूलने लगे। लिफ्ट ब्वॉय कालिंग बेल की ओर इशारा कर चला गया। उनकी खुशी का ठिकाना नहीं था। लगभग खुशी से काँपते हुए हाथों से उन्होंने बेल दबाया।

देर तक बेल दबाते रहे। भीतर से कोई आवाज़ नहीं आयी। उन्होंने सोचा था कि उनकी अगवानी में बेटा और बहू, जल्दी उठकर तैयार हो गए होंगे। बेटे ने ही आकर दरवाज़ा खोला। क्षण भर के लिए तो उन्हें जैसे पहचान भी नहीं पाया।

"किससे मिलना चाहते हैं आप ?" उसने अपरिचित आवाज़ में पूछा।

"मैं हूँ, तुम्हारा पिता !" उन्हें अपना परिचय देना पड़ा।

"ओह। भीतर आइए।" वह संभल गया और उन्हें भीतर ले गया।

नाइटी पहनी युवती उनींदी आँखों से कॉफ़ी की चुस्कियाँ ले रही थी। 'आयम फ्राम टेक्सास' बनियाइन पहने एक लड़का सोफ़े पर बैठा था। टाँगें सामने की तिपाई पर फैली थीं। हाथों में अख़बार था और पैरों में कैनवास के जूते। जीन्स में ढेरों पैबंद लगे थे।

"प्रेमा, गाँव से पिताजी आए हैं।" कनकसभै ने उस युवती से कहा और युवती ने मुस्करा कर इनकी ओर देखा। "हैलो —" औपचारिक अभिवादन के बाद वह चुस्कियाँ लेने लगी। उन्हें लगा, यही उनके बेटे की पत्नी यानी उनकी बहू है। शादी के बाद पहली बार देख रहे हैं।

दोनों में से किसी ने भी उनके पैर छूकर आशीष नहीं चाहा।

"बैठिए।" बेटे ने उन्हें सोफ़े पर बिठाया और इन्टरकाम पर कॉफ़ी का आर्डर दिया। सोफ़े पर अधलेटे पोते के कैनवास के जूते, ऐन उनके चेहरे के सामने ताल दे रहे थे।

एक असहजता-सी फैल गयी। अरसे के बाद बाप और बेटे में हुई इस मुलाकात में, कोई आवेग, लगाव या गर्मजोशी नहीं थी। उन्हें साफ़ लग रहा था कि इस सारे माहौल में उनकी बदरंग धोती और यह गंदला झोला बिल्कुल अनफिट हैं। बेटे की हिचक शायद उन्हें इस रूप के साथ, इस माहौल में अपनाने की नहीं थी।

पोते ने क्षण भर के लिए अख़बार से सिर उठाया और उन्हें किसी अजूबे की तरह घूरने लगा। फिर कनकसभै की ओर देखकर अमेरिकी लहज़े में बोला—"हू ईज़ दिस डर्टी ओल्डमैन या?" कनकसभै कुछ अकबका गया। एकदम टोककर बोला—"डौंट से लाइक़ दैट! ही ईज़ योर ग्रांड फ़ादर।"

पोते में कोई परिवर्तन नहीं हुआ। उसने सूचना भर जान लेने के अंदाज़ में सिर हिलाया और फिर अख़बार में डूब गया।

वे भौंचक्के रह गए। लगा जैसे उन्होंने अपने ही पैरों पर कुल्हाड़ी मार ली।

"बाऊजी, आप बुरा न मानें। दरअसल आजकल के लड़के अदब क़ायदे कुछ जानते ही नहीं।" बेटे ने पोते की ओर से माफ़ी माँग ली।

कहाँ तो वे पोते के अंग-अंग को प्यार करना चाहते थे। उन्हें कहीं कोई तकलीफ़ हुई। उन्हें लगा, यहाँ लगाव, रिश्ता जैसे शब्दों के भारतीय मूल्यों का कोई अर्थ नहीं रह गया है। बेटे ने उनके बारे में अगर कुछ पूछ भी लिया है, तो शायद औपचारिकतावश ही।

भाड़ में जाने दो! इन पकवानों को तो दे ही दें। वे पीपा उठाकर पोते के पास गए। पोते ने सशंकित नेत्रों से पहले उन्हें देखा फिर पकवानों को छूकर देखा। फिर बोला, "आइ कांट ईट दिज़ स्टोन।"

"एक बार खाकर तो देख लो बेटे, तुम फिर छोड़ोगे नहीं। पूरा खाली कर डालोगे।' वे मनुहार भरे स्वर में बोले। वह शायद समझ नहीं पाया। पिता की ओर देखकर बोला, "डैड, ह्वाट दिज़ ओल्डमैन सेज़?" भूलकर भी वह उन्हें 'बाबा' या 'ग्रांड फ़ादर' नहीं कहना चाहता था।

पोते ने तो कुछ भी नहीं छुआ।

"बाऊजी, वह नहीं खायेगा। आप नाहक परेशान हो रहे हैं।" बेटे ने उन्हें टोका। पोते' में न तो उनके प्रति आसक्ति थी न आदर भाव।

ऊपर से एक बार भी कनकसभै या उसकी पत्नी ने इस संबोधन को लेकर नहीं टोका। पर उनका प्रेम तो उस गँवई बाबा का सा था, जो मेले में अपने पोते को कंधे पर बिठाकर ले जाता रहा हो। उनका हृदय फटने लगा था।

लगा, जैसे वे काँटों में बैठे हैं। एक-एक क्षण युग की तरह खिचने लगा था। पोता कनकसभै से ऊँचा निकल आया था, पर स्वभाव से एकदम उद्दंड। तमिष् तो वह समझता ही नहीं था। शरीर से विकसित पोता मन से अविकसित ही रहा।

कहते हैं पौधे को जब एक ज़मीन से उखाड़कर दूसरी जगह रोपा जाता है, तो पिछली वाली ज़मीन की थोड़ी-सी मिट्टी वहाँ फैला दी जाती है। पर अमेरिका में पल रहे बच्चे इस पुरानी मिट्टी से वंचित रह गए हैं। उनसे भारतीय पारिवारिकता, पारस्परिक स्नेह सद्भाव या आदर की अपेक्षा की भी कैसे जा सकती है? उन्होंने अपने को लाख समझाने की कोशिश की।

पर मन था कि भारी हो गया ।

यही तनाव शाम तक बरकरार रहा । उनके निकलने का समय भी आ गया पर खिंचाव जैसे ढीला नहीं पड़ा । कितने प्यार के साथ वे पकवान बनवाये गए थे । न बेटे ने हाथ लगाया न बहू ने । यहाँ का तेल उन्हें पचता नहीं ।

बेटे ने होटल से ही विदा माँग ली ।—"इस बुढ़ापे में आप कहाँ तक चलेंगे ? हम लोग चले जायेंगे । आप यहीं से स्टेशन निकल लीजिए । अगले साल एक सेमीनार में दिल्ली आना होगा । तब मैं खुद गाँव आकर आपके साथ एकाध दिन ठहर लूँगा ।" बेटे ने उनसे विदा ली ।

पोते और बहू ने तो कोई ख़ास वार्तालाप भी नहीं किया । विदा लेने के पहले वे एक बार पोते को गले से लगाना चाहते थे । वे पास पहुँचे तो पोता चीखता हुआ भागा—"डोंट टच मी, यू बुलशिट ।"

"रहने भी दीजिए बाऊजी । वह यह सब नहीं समझेगा ।" कनकसभै ने उनका हाथ पकड़ लिया ।

वे अपने उसी सामान के साथ ऑटो में एग्मोर लौट आए । ट्रेन के लिए पर्याप्त समय था । उनकी गाड़ी रात नौ बजे की थी ।

सीढ़ियाँ चढ़ने लगे तो फटी निकर पहने, घुँघराले बालों और सुंदर आँखों वाला लड़का उनके पास आ खड़ा हुआ ।

"बाबा, मैं यह झोला उठा लूँ ! चवन्नी दे देना ।" उसके स्वर में याचना का सा भाव था ।

वे 'बाबा' के संबोधन मात्र से पुलकित हो उठे । लगा, जैसे ढेरों गुलाब उन पर बरस पड़े हों । गंदी फटी निकर पहने, टुकुर-टुकुर ताकते बालक को उन्होंने ध्यान से देखा ।

"क्या है बाबा ? ऐसे क्यों देख रहे हो । मेरे पास लाइसेंस नहीं है । बिल्ला भी नहीं है । बिल्ले वाला पोर्टर आपसे दो रुपये ले लेगा । मैं तो खाली चवन्नी माँग रहा हूँ ।"

"पर मेरे पास कुछ सामान भी तो नहीं है, बेटे ।"

"जो भी है, हमें पकड़ा दो बाबा ।"

वह जितनी बार 'बाबा' कहता, उनका मन उतनी बार हल्का होता । आँखें भर आयीं । वे वहीं सीढ़ियों पर बैठ गए । पीपा खोल लिया और उसकी ओर बढ़ाते हुए बोले —"प्लेटफ़ार्म के अंदर फिर चलेंगे, पहले इसे खा लो बेटे ।" वे गद्गद स्वर में बोले । बच्चा पहले सहम गया फिर धीमे से हाथ बढ़ाकर उसने एक गुलगुला उठा लिया ।

"यह सब तुम्हारे लिए ही है बेटे, आराम से खा लो ।"

उसने एकाध लड्डू और उठा लिया । अब की बार फटी फ्राक और धूल से सने बालों वाली एक लड़की कहीं से भागी-भागी आयी ।

"बाबा, हमें नहीं देंगे ?"

"तू भी ले न, बिटिया ।"

फिर आ गया नाक बहाता एक नन्हा बच्चा ।

"बाबा हमें, बाबा हमें ।" की गुहार मच गयी । पूरा पीपा मिनटों में खाली हो गया ।

तोतली आवाज़ों के बीच वे खोये रहे । अपने अमेरिका वाले पोते को वे भूल चुके थे । एग्मोर के प्लेटफ़ार्म पर अचानक मिल गए इन पोती-पोतों ने उन्हें पूरे प्यार के साथ ट्रेन में बिठाया । ट्रेन चली तो कई नन्हें हिलते हाथों के प्रत्युत्तर में वे लगातार हाथ हिलाते रहे ।

तमिष् से अनूदित : सुमति अय्यर

इस दरख्त को साक्षी मानकर

□ आदवन सुन्दरम्

एक और शाम ! एक और मुक्ति ! उफ़···!

दफ़्तर के कपड़े, दफ़्तर के चेहरे और दफ़्तर के नियमों को साबुन के झाग के साथ घोलकर बहा दिया । अब चेहरा ताज़गी से भरा था । पिछवाड़े के बगीचे की ओर चला आया । लगा जैसे चेहरा ही नहीं मन और चिंतन भी धुल पुंछ गया हो ।

बगीचे की खुली घास पर बेंत की कुर्सी पर बैठा, मैं अपने को किसी राजा से कम नहीं समझ रहा था । कुछ ही देर बाद दंडपाणि आ गये ।

"आइए!" मैंने कहा ।

दंडपाणि मेरे पास ही पड़ी दूसरी कुर्सी पर बैठ गये । हमारी ही कॉलोनी में रहते हैं । यों, देखा जाए तो मेरे इकलौते दोस्त भी कहे जा सकते हैं ।

अभी सात, आठ माह पहले तक उन्हें दोस्त नहीं समझता था । बस दूध के डिपो में या बस स्टैंड पर मुलाकातें होती थीं । सह प्रजा के रूप में हम रह रहे थे । मेरी गंभीरता को उन्होंने कतई प्रभावित नहीं किया था । इसी तरह मेरे सुख-दुख ने उन्हें कभी नहीं कचोटा । उन दिनों मेरी भावनाओं में मेरा साथ देने वाले और लोग थे । (ऐसा मैं उन दिनों समझा करता था) मेरी युवावस्था में मेरे कई मधुर क्षणों में मेरा साथ देने वाले और इस वक़्त नगर के कोनों में छितरे पड़े मेरे मित्रगण । (हाँ, शायद आदतन ही मैं उन्हें अपना सच्चा मित्र माना करता था) लंबी

बस यात्रा की दारुण तकलीफ़ झेलकर मैं उनसे मिलने जाया करता था, अपने भीतर की तमाम भावनाओं, एहसासों को उनके साथ बाँटता था। अपनी तमाम इच्छाओं, विश्वासों और निश्वासों का इजहार उनके सामने किया करता था।

पर यह सब अचानक ही हुआ कि मैं इन तमाम दोस्तियों से ऊब गया। बस स्टैंड की उबाऊ तपस्या। लंबी यात्रा इतनी अधिक तकलीफ़ देह होने लगी थीं, कि उनसे मिलकर चर्चा करने का सुरूर ही गुम होने लगा। कई बार तो मुझे शक होने लगा कि जिसे मैं विचार-विनिमय समझता रहा था, क्या सचमुच वह वैसा था? कई बार लगा कि मित्र शब्द ही जैसे कमज़ोर क्षणों की निर्वीर्य उपज है, जिसमें हम आराम से अपने को लुभाते चलते हैं। लगा, मैं बार-बार जिसकी खोज में जा रहा हूँ, वह दोस्ती नहीं, मेरा अहं है, अपनी आत्मुग्धता है!

अपनी बुद्धि की प्रतिध्वनि की तलाश में...

अपने हास्य के लिए ठहाकों और दुख के लिए रेशमी रूमालों की तलाश में—

महिलाओं में अपने प्रति आकर्षण जगाकर उनके विरह ताप को हवा देने वाले एक अपूर्व प्रेमी को स्वयं अपने में तलाश करते हुए...

क्रोध, लोभ, मोह और चालाकी से रहित अपनी कमल के पत्ते की सी तटस्थ स्थिति की स्वीकृति प्राप्त करने...

कितनी रंगबिरंगी सुविधाजनक टोपियाँ थीं, जिन्हें मैंने अपने लिए खास तौर पर सिलवाया था।

एक दिन सहसा ये टोपियाँ जोकर की टोपियाँ लगने लगीं। लगा, बिना किसी टोपी के, क्यों, बिना किसी कमीज के सिर्फ़ पिछवाड़े के बगीचे में ही बैठा रहूँ:

दफ़्तर में अगले वर्ग तक पहुँचने का शार्ट कट अपनाया। (बाद में हालाँकि इस शार्ट कट से नफ़रत होने लगी थी) जाने किस किस के कंधे पर हाथ रखे, किस किस की पीठ खुजलाता रहा, पैर पूजता रहा। अन्त में अन्तरिक्ष में ही किसी मज़बूत और आवश्यक पकड़ को मिस कर देने भर से, नीचे कलाबाज़ियाँ खाते हुए गिरने वाले, ट्रेपीज़ आर्टिस्ट की तरह जाने किस जगह, मन चूक गया था कि गिरा तो फिर उठ नहीं पाया।

इस तरह गिरने के परिणाम भी भुगते। मूक चोटें, फिर उनकी वजह से मैं भड़क गया। कारण और कार्य की खोज करता हुआ। अपने निर्दोष दोस्तों पर ही बरस पड़ा। उन पर तरह-तरह के आरोप लगाये। मुझे वे हमेशा छेड़ने वाले लगे और मेरा विश्वास था कि इन मित्रों ने मुझे—स्वार्थी, अहंकारी पशु में तब्दील कर दिया है। जाने क्या-क्या सोचता रहा था।

हो सकता है, सच भी हो! हो सकता है, सब मेरा भ्रम भी रहा हो।

पर भले ही कुछ हो। शाम को अब मैं किसी से मिलने नहीं निकलता। बस पिछवाड़े में बैठा रहता हूँ। यह सच है कि ऐसा करना मेरे लिए सुविधाजनक और आश्वस्तिकारक है। यहाँ बाड़ में लगे केले के पेड़, उनमें लटकते फूल। कुछ दूर स्थित तितली के पेड़ (यह मेरा दिया हुआ नाम है, उनको मैं इसी नाम से बुलाता हूँ) कुछ दूर पर उगा नीम! इनका हल्की सी हवा में डोलना, मुझे घंटों व्यस्त रखता। एक एक पत्ते का हिलना भी एक सुन्दर दृश्य है। एक पूरे दरख़्त के पत्तों का एक साथ हिलना—हवा में लहराते बालों की तरह—उन्हें दूर से देखना सचमुच एक सुखद अनुभव है। एक ही स्थान पर पूरा जीवन बिता देने वाले पेड़ जैसे मुझे कुछ शिक्षा दे रहे हैं। इस तरह सारी दुनिया में भटकते हुए, जाने कितने चेहरे देख लिए, क्या मिला इसमें?

'तितली का पेड़' मैं उसे इसलिए कहता हूँ कि इसके पत्ते जब हिलते हैं, तो लगता है तितली पंख फड़फड़ा रही है। अब मेरी पत्नी और बच्चे भी उसे इसी नाम से जानते हैं। मुझे ख़ुशी है और इस बात का गर्व है कि मैंने एक नाम की सृष्टि की है। मैं नहीं जानता कि दुनिया में लोग उस पेड़ को किस नाम से जानते हैं, न ही मैं जानने की इच्छा रखता हूँ। फिर यहाँ तो किसी को गाली देते हुए भी ठूँठ का इस्तेमाल किया जाता है। फिर यहाँ के लोगों की रुचि की बात ही क्या कहूँ! ये लोग तो पेड़ों को नस्लों में बाँटने से लेकर नामकरण तक, अपनी बुद्धिमत्ता के प्रदर्शन के लिए करते हैं। सिर्फ़ एक भ्रम कि वे इन पेड़ों के स्वामी हैं।

पर इस पेड़ को मैंने यह नाम इसलिए नहीं दिया है, कि अपनी बुद्धिमत्ता का परिचय मुझे देना है, बल्कि अपने स्नेह के कारण। मेरे और उसके बीच की अनन्यता, सहज भाव, पारस्परिक अधिकार, प्रभाव, इन तमाम बातों का प्रतीक है, यह नाम।

मेरे प्रिय श्रीमान तितली वृक्ष! आप ही मेरे परम मित्र हैं।

आपके साथ रहकर आपकी सादगी और संतोष को मैं महसूस करना चाहता हूँ। अपने तमाम नक़ाबों को उखाड़ फेंक कर आपके चरणों में निर्वस्त्र लेटना चाहता हूँ।

दंडपाणि मंत्रिमंडल के अंतर्विरोधों की बातें शुरू कर देते हैं। तितली के वृक्ष पर आँखें लगाये बैठे, मुझे खीझ होने लगी है। साथ ही उन पर तरस भी आ जाता है। श्रीमान दंडपाणि! आप नाहक इस पचड़े में सिर खपा रहे हैं। कुलदीप नय्यर, टी. आर. आर., कस्तूरिरंगन-इन तमाम पत्रकारों की रोज़ी-रोटी पर लात क्यों मार रहे हैं। देखिए तो, सुनिए, वह पेड़ हमसे क्या कह रहा है?

'पता नही, बारिश कब होगी" ! मैं ऊपर देखता हुआ बोल उठा हूँ।

दंडपाणि का चेहरा उतर गया। "हाँ...आज उमस भी बहुत है!" वे अब राजनीतिक उमस से देह की उमस पर उतर आये।

"कमज़कम हवा ही चलती...।"

"हाँ...।" दंडपाणि अब पेड़ की ओर देखते हैं।

"देखिये तो, पत्ता तक नहीं हिल रहा।"

दंडपाणि पत्तों को देखते हैं। उफ़! यह भी मेरे लिए एक सफलता है।

मेरी पत्नी खाली कप उठाने आयी, तो हमें एक दिशा में घूरते देख, स्वयं भी वहीं घूरने लगी।

"क्या हुआ?" मुझसे पूछती है।

"कुछ नहीं, देख रहे हैं कि पत्ते किस कदर चुप हैं।"

"हाँऽऽ! हवा चल ही नहीं रही। चले, तब न पत्ते हिलें!"

उसने जैसे कोई बड़ा सच ढूंढ लिया और उसे हमारी तरफ़ उछालकर भीतर चली गयी। दंडपाणि ने मेरी ओर देखा और मैंने दंडपाणि की ओर, दोनों ही मुस्कुरा दिए। औरतों की फूहड़ता पर, सीधी लकीर पर चलने वाली उबाऊ तार्किकता पर, हम लोगों ने प्यार में झिड़कते हुए मुस्कुराहट फेंकी थी। इस मुस्कुराहट के बीच अनायास एक प्रश्न भी उभरा, क्या दंडपाणि इतने आत्मीय हो गये हैं कि मैं अपनी पत्नी का भी, उनके साथ मिलकर मज़ाक बना सकता हूँ।"

यह ख़्याल जैसे मुस्कुराहट का स्विच ऑफ़ कर देता है। भीतर जैसे कोई फुसफुसा दिया, "होशियार।"

"हवा चलती है, इसलिए पत्ते हिलते हैं, या पत्तों के हिलने से हवा चलती है??" मैं दंडपाणि से पूछता हूँ।"

"रेगिस्तान में, जहाँ पेड़ पौधे नहीं है, हवा वहाँ भी चलती है। इसलिए हवा ही पत्तों को डुलाती है।"

"आप कभी रेगिस्तान गए हैं?"

"न, फ़िल्मों में तो देखा ही है।"

मेरे भीतर की हँसी फूट कर निकलती है। ठहाकेदार हँसी थी। लगा, कहीं गला ही न निकल पडा हो।

"आप जानते हैं कि फ़िल्मों में जो भी देखते हैं वह स्टूडियो के सेट होते हैं, या ट्रिक शॉट !"

दंडपाणि अपना सिर, जैसे कुछ समझते हुए हिला रहे हैं। क्षणाँश के लिए रुके फिर बोले, "गाँव में हमारे घर शाम होते ही ठंडी ठंडी हवा चलने लगती थी···! पर वहाँ तो आस-पास कहीं भी पेड़ नहीं हैं।"

"अब आये न रास्ते पर। आपने जो कुछ देखा है और भोगा है, उसी अनुभव पर बातें करें। फ़िल्मों में दिखाये जाने वाले झूठ, या अख़बारों में छपने वाली गप्पों के आधार पर ज़िंदगी को समझना ज़रूरी है क्या ?"

"समझ रहा हूँ मैं आपकी बात, पर अपने अनुभवों को हम एक सीमा के बाद नहीं फैला सकते न? पृथ्वी के गोल होने का विश्वास, छोटे से घाव के सड़ जाने पर होने वाले ख़तरे का भय, साँप के डसने से ज़हर फैलने का ख़ौफ़,—क्या हम एक एक बात पर प्रयोग के बाद ही विश्वास करते हैं। फिर यह प्रयोग कितना ख़तरनाक़ भी हो सकता है।"

"यानी कि, हमें अपने साथियों पर विश्वास कायम रखना होगा।"

"हाँ···आप कार को एक मोड़ पर मोड़ रहे हैं। कोई कहता है कि रास्ता आगे बंद है—कोई कहता है कि बस स्टाप अब यहाँ नहीं आगे है, पड़ौसन आपका पत्नी को बताती है, कि नुक्कड़ वा सांई तौल में गड़बड़ी करता है·· क्या हम इन बातों पर विश्वास नहीं कर लेते ?

"शाबाश !" मैं उनके विचारों के प्रवाह पर मुग्ध होकर सिर हिलाता हूँ। मुझे लगता है, कि आपकी बात और मेरी बात कहीं न कहीं परस्पर एक है। बहुत पहले, जब टी. वी. या रेडियो या न्यूज़ पेपर नहीं थे, तो हम एक गाँव के समाचार उस गाँव से आने वाले से पूछकर जान लिया करते थे···इसी तरह राजधानी से आए किसी व्यक्ति से राजधानी की खबरें ले लिया करते होंगे···है न ?"

"हाँ, अब स्थानीय संवाददाता इस काम को कर रहे हैं।"

"पर उनका विश्वास नहीं हो पाता न ?"

"पर इस तरह की अविश्वसनीय बातें तो रामायण और महाभारत के ज़माने में भी रही थीं न···?"

"अब इसमें समस्या क्या है? विश्वस्त व्यक्तियों की कमी, या हममें अविश्वास की प्रवृत्ति···?"

"विश्वास अविश्वास तो काले और सफ़ेद की तरह एकदम अलग नहीं किए जा सकते न? इन दोनों के बीच की भी तो स्थिति हो सकती है। हम हमेशा अति तक ही क्यों जाने की कोशिश करें? सब पर विश्वास करने के जो ठोस आधार हो सकते हैं, उसी तरह के आधार

अविश्वास के भी तो हो सकते हैं। मेरा तो विचार है कि किसी पर भी निश्चित राय नहीं दी जा सकती। ज़िंदगी और उसकी स्थितियाँ इतनी उलझी हैं कि बस···।"

"पर क्या सचमुच वैसा करना संभव हो पायेगा? इज़ इट पासिबिल टु कीप ऑन सस्पैंडिंग जजमेंट? हमारा मन एक निश्चित स्थिति यानी कि 'इक्विलिब्रियम' की याचना करता रहता है, यह बात आपने ही तो कल बतायी।"

"पर क्या अधकचरे निर्णयों के आधार पर आप इक्विलिब्रियम ढूँढेंगे?"

"पर समस्या यह नहीं कि मुझे क्या नहीं चाहिए। यह मेरे भीतर सतत चलने वाला एक मुद्दा है। यह निर्णय और अच्छे और बुरे के ये मुद्दे।"

"यदि आप नाराज़ न हों तो एक बात कहूँ?"

"कहिए!"

"आपने एक बार मेरा परिचय इन महिला से करवाते हुए कहा था कि यह आपकी पत्नी हैं। मैं आपके विवाह में शामिल नहीं हुआ, न आपके विवाह का अलबम ही मैंने देखा है। फिर भी आपने जो कुछ बताया, उस पर मैंने विश्वास किया?"

"पर क्यों?"

"क्योंकि मैं विश्वास करना चाहता था, इसलिए किया। यदि मैं इस बात पर विश्वास न करना चाहूँ कि वह आपकी पत्नी नहीं हैं, तो जानते हैं इसका अर्थ क्या होगा?"

मैं उन्हें अवाक् घूरता रहा। यह बहुत गंभीर व्यक्ति है। गहराई है, इस शख़्स में। मुझे यह अच्छा भी लगा, नहीं भी लगा। मुझे लगा, जैसे मेरा मुकुट छीन लिया गया है।

पहला सवाल जो मेरे भीतर उठा, मेरे दफ़्तर में जिस तरह मुझ पर लोग विश्वास नहीं कर पाये, उसी तरह क्या लोगों को विश्वास न कर पाने का अवसर देना ही मेरी असली समस्या है?

दूसरा प्रश्न : क्या मेरे मित्र निरपराधी हैं?

मेरी पत्नी निटिंग लिए बगीचे में आ गयी। तीसरी कुर्सी पर बैठ गयी। मैं इन तमाम बातों से बेख़बर दंडपाणि को घूरता रहा। देखता रहा कि उनकी आँखें क्या सचमुच मेरी पत्नी की ओर उठती हैं? यदि उठती हैं तो क्या उनके चेहरे पर कोई हलचल होती है या नहीं। पर जैसे वे भाँप गए मेरे इरादे को, और चेहरे को भावहीन बनाये रहे। मैं मन ही मन बुदबुदाया, 'यह भी तो अपराध वृत्ति है। यदि छल न हो मन में, तो सहज भाव से उनकी ओर देखा जा सकता था।'

मुझे लगा कि व्यक्ति भोला नहीं है, सामान्य भी नहीं। डमी नहीं है यह। यह एहसास मुझे थका गया है, साथ ही कुछ फुर्ती भी आ गयी।

जैसे जीतने के लिए एक शत्रु और हाथ लग गया हो।

"आपकी पत्नी कब लौट रही हैं? मेरी पत्नी ने स्वेटर बुनते हुए प्रश्न किया।"

मुझे तो दोहरी खीझ होने लगी। पहली खीझ तो उसके स्वेटर बुनने पर हुई (एक कृत्रिम दिखावा होता है औरतों का कि वे हर वक़्त घरेलू होने का दावा करती हैं, इसके माध्यम से) दूसरी खीझ उसके प्रश्न पर हुई? अरे यही पूछ लेती कि कौन सी फ़िल्म देखी? कमीज़ के कपड़े की तारीफ़ कर देती! या फिर मज़ाक ही कर लेती कि पत्नी की अनुपस्थिति के कारण आजकल दफ़्तर से जल्दी लौटने लगे हैं! वग़ैरह वग़ैरह!! क्या शीलवान प्रश्न किया है, पत्नी के बारे में पूछकर। दिस इज़ व्हाट आयम सपोज़्ड टू आस्क यू डियर, एंड दिस इज़ ऑल विल

आस्क यू तुम अपनी पहचान क्यों नहीं बनातीं ? कण्णगी की परंपरा में जनमी हो। मूर्ति बनकर समुद्र के किनारे स्थापित होने के लिए क्यू में खड़ी इन्तजार कर रही हो…।

"एक मिनट।" मैं बाथरूम के बहाने उठा और घर के भीतर आ गया। टायलेट के शीशे में, एक जगह पेंट उखड़ गया है, जिसकी दरार से बगीचे में बैठे दंडपाणि और पत्नी को आराम से देखा जा सकता था। वे लोग कुछ बातें कर थे। लगा, मेरी उपस्थिति में वे उतने नहीं खुल पाये थे जितना मेरी अनुपस्थिति में खुल गए थे। मुझे सहसा एक बात सूझ गयी। क्यों न ऑफ़िस के दौरे का बहाना कर डालूँ और कल सुबह ही निकल जाऊँ। दंडपाणि पर घर की जिम्मेदारी भी सौंप दूँ ? हो सकता है, तब कुछ सुंदर, निश्चित घटना घट जाए।

दंडपाणि का इक्विलिब्रियम ?

मेरे हट जाने पर ही यह स्थिति पैदा हो सकेगी। मैं विश्वास नहीं कर पाता कि यह शख़्स रोज़ शाम केवल मुझसे मिलने आता है। इस तरह का अविश्वास मेरा अधिकार है।

मुझे विश्वास दिलाना उनका अधिकार है। मेरी पत्नी के लिए यदि वे मेरे घर आते हैं तो मुझे उसमें कोई ईर्ष्या नहीं है। पर उनका यह स्वाँग ही मुझे चिढ़ा देता है।

मैंने झटके से फ्लश की चेन खींच दी। पानी की आवाज़ बाहर भी पहुँची होगी। उन लोगों की बातचीत सहसा बंद हो गयी।

क्या यह भी अचानक ही घटा है ?

दंडपाणि अक्सर कहते हैं कि "हम उसी बात पर विश्वास करते हैं, जिसको हम चाहते हैं।"

साले !

टायलेट से निकलते हुए मैंने खिड़की खोल दी। मैंने देखा तितली के पेड़ की पत्तियाँ हिल रही थीं। मुझे लगा कि मेरे विश्वास या अविश्वास दोनों में किसी एक को वह पत्तियाँ प्रमाणित कर रही हैं।

तमिष् से अनूदित : सुमति अय्यर
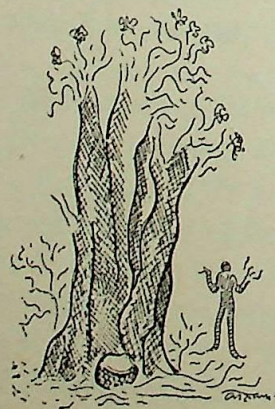
पराजय

□ सुब्रह्मण्य राजू

शादी के बाद भैया और भाभी टैक्सी से उतरे तो अम्माँ ने उनका द्वारचार किया था। मुझे खूब याद है, कि भैया के चेहरे में एक नामालूम सी मूर्खता झलक गयी थी, क्षणांश के लिए। मुझे जाने क्यों लगा कि ज़िन्दगी में वे सब कुछ हार गए हैं और केवल भाभी ही उनके हिस्से में शेष हैं, जिन्हें लिए दरवाज़े पर आरती उतरवा रहे थे। आप लोग भी हैरान हो रहे होंगे कि यह कैसा भाई है जो अपने सगे बड़े भाई के बारे में उल्टा सीधा बोले जा रहा है। पर आपको पहले भैया के बारे में बता देना चाहता हूँ। पर अभी वाले भैया के बारे में नहीं शादी के पहले वाले भैया के बारे में!

कैसे थे वह भैया। लम्बे बाल, सिगरेट को होंठों में लापरवाही से लगाए। लोग उनसे बोलते, काँपते थे। दुनिया जहान की बातें उन्हें याद थीं। जब देखो एक क़िताब लिए बैठे रहते। अब तक कोई हज़ार पुस्तकें पढ़ चुके होंगे। शाम होते ही सजधज के निकल जाते, जैसे अपनी बातें किसी को सुनाने जा रहे हों···! कोई न कोई बात तो होती ही थी, उनके पास।

भैया, मीटिंग में भी बोला करते। एक इतवार की मीटिंग में मैं भी गया था। गुस्से में तमतमाया चेहरा – जाने क्या-क्या कहते रहे थे। समाज, वर्ग भेद, युवा वर्ग, पत्रिकायें, सिनेमा और जाने किस-किस को गालियाँ दे रहे थे।

वे कहानियाँ लिखते। उनकी लिखी कहानियाँ मेरी समझ में कभी नहीं आयीं। कभी-

कभी तो लगता कि वे जान बूझकर ऐसी कहानियाँ लिखते हैं कि मैं समझ नहीं पाऊँ। बस इसी तरह तो किसी पत्रिका में उन्होंने लिखा था। कहानी में जाने क्या-क्या अश्लील वाक्य थे। अम्माँ पढ़कर बड़बड़ायी थीं। —"तुम यह सब क्या समझोगी अम्माँ! अगर यह पाप है, तो फिर हमारा जन्मना भी पाप है, क्यों? आप लोग ये नक़ाब कब उतार फेंकेंगे?" बदले में एक प्रश्न झोंककर वह चले गए। अम्माँ ने माथा पीट लिया।

बाऊ के साथ भी इसी तरह झगड़ा करते। पूछते—"बाऊ आप तो रटे रटाए श्लोक बोले जा रहे हैं, उनका अर्थ भी जानते हैं?" बाऊ का उत्तर होता कि—उन्हें जानना ज़रूरी नहीं है। ये जवाब में कहते कि "ऐसे मंत्र के सहारे पूरी दुनिया को चूतिया बनाये चले जा रहे हैं। कैसा ईश्वर! कैसा धर्म!" बाऊ, बस गंजे सिर पर हाथ फिरा लेते।

भैया हमेशा भीड़ लगाये रहते।

उनके खिलाफ़ बोलने की हिम्मत किसी की नहीं होती। कोई भूल से बोल भी देता, तो वे चढ़ बैठते।

एकबार की बात खूब याद है। गाँव से मामा का लड़का आया था। पैसे वाले थे मामा जी। उसकी शादी को तीन-चार महीने ही हुए थे।

बस फँस गया वह भैया के चक्कर में। किसी फ़िल्म की बात चली थी। भैया हाथ धोकर पड़ गए पीछे।

"तुम लोगों की तो रुचि ही नहीं रही। सुबह दस बजे बीवी को टाटा करके निकलोगे साले, तो शाम पाँच तक दफ़्तर में घिसोगे। यह बताओ कि तुम कभी कार से ही सही, अपने दफ़्तर किसी दूसरे रास्ते पहुँचे हो? वही सड़क! रोज़-रोज़ उसी से आना जाना। अपनी बीवी के अलावा किसी दूसरी औरत से आँख मिला सकते हो? दफ़्तर से छूटे तो गजरे वाले के यहाँ पहुँचे। दो गजरे लिए। फिर किसी दुकान से मिठाई बँधवाई। घर लौटकर खुद ही गजरा बालों में लगाओगे। फिर रेडियो पर त्रिविध भारती सुनोगे! सुबह का छूटा अखबार पढ़ोगे। फिर खाना तैयार। खाओगे, फिर··· दाम्पत्य···। तुम लोगों के लिए तो खाना बनाने के लिए, तनख़्वाह को जिम्मेदारी के साथ ख़र्च करने के लिए, तुम्हारी थाली साफ़ करने, इतवार की शाम समुद्र के किनारे हाथ मिलाकर चलने के लिए, रात दूध पिलाने के लिए, फिर बिस्तर गरम करने के लिए ज़रूरत है एक अदद औरत की···। बस शादी कर लेते हो, तुम लोग। चमेली के फूल···। वाह! कैसे खरीदते हो तुम लोग औरतों को? तभी न तुम लोग, यूँ ही रह गए हो। कभी सोचा है, अपने घर की मेहरी के अभाव के बारे में? उसकी भूख के बारे में···?

भैया जाने क्या-क्या कहते रहे! मामा जी का लड़का बस फ़क्क रह गया। चुपचाप सिर झुकाकर बाहर चला गया।

भैया की पढ़ाई ख़त्म हो गयी थी। दो साल वे बेकार ही रहे। बाऊ रिटायर हो गए, इस बीच। तनख़्वाह पेंशन में बदल गयी। रात में दही का स्थान अब छाछ ने ले लिया। घर का अभाव अब उभरने लगा था। शांति ने भी पाउडर, क्रीम लगाना बंद कर दिया था। शांति मुझसे बड़ी पर भैया से छोटी थी। पी. यू. सी. पास कर अब घर के दर्पण के सामने खड़ी है।

बस भैया का रवैया ही, सबकी समझ से परे था। हम सब उनकी नौकरी की प्रतीक्षा में थे। सुबह निकलते तो रात ही लौटते। बाऊ ने जाने कहाँ से, सिफ़ारिश जुगाड़कर, उन्हें कहीं नौकरी दिलवायी थी। दूसरे ही दिन छोड़कर चले आए। उनका कहना था कि, वहाँ काम ज़्यादा है पर तनख़्वाह कम। इसलिए लड़कर चले आए।

फिर तो हम समझने लगे कि घर में पैसे की किल्लत बढ़ती जा रही है। अम्माँ ने भैया को बुलाकर सारी तक़लीफ़ें बयान कीं और आँचल ढाँपकर रोने लगीं। भैया सारे समय सिर नीचा किए सुनते रहे। मुझे लगता है, कि उनका सिर पहली बार नीचे झुका था। घर से चाँदी का बर्तन उठाकर ले गए और कहीं गिरवी रखकर रुपये ले आए थे। इसी तरह कुछ दिन निकल गए। अम्माँ ने अलमारी में शांति के विवाह के लिए जो भी बर्तन, गहने सहेजे थे, सब चावल, दाल में तब्दील होने लगे।

मैं एक रोचक घटना के बारे में तो बताना ही भूल गया। इसका ज़िक्र तो पहले ही करना था। और फिर बात जब गायत्री की है। हाँ, यही तो नाम था, उसका। पिछले साल सामने वाले घर में रहा करती थी। अब नहीं है। शादी हो गयी और कलकत्ता चली गयी। अभी-अभी जच्चगी के लिए आयी थी, पिछले माह लौटी है। बहुत सुन्दर लड़की है। टमाटर की तरह गोरा लाल रंग। लम्बी। भैया को कनखियों से देखा करती। छत पर खड़ी रहती घंटों और हमारे घर को ताका करती। आम लड़कियों की तरह उसने भी मेरे माध्यम से भैया से कहानी की पुस्तकें मंगवाईं। उन्हें तो यह सब मालूम ही नहीं था। लड़कियों के प्रति दरअसल वह बेहद लापरवाह थे। उनका कहना था कि अमूमन लड़कियाँ मूर्ख होती हैं।

भैया से पुस्तक माँगी।—"कौन है यह गायत्री?" भैया ने झल्लाकर पूछा। मैंने परिचय दिया। सामने वाले मुत्तुकृष्ण अंकल की लड़की। बी. ए. में परीक्षा देकर, आजकल खाली बैठी है। रात में छत पर फ़िल्मी गाने गुनगुनाती है। वही गायत्री। लम्बी, गोरी, को हिप की साड़ी में, शांति के पास आयी भी थी एकबार। गाना भी तो गाया था—'तुम गगन के चन्द्रमा…।"

भैया उठे, एक क़िताब लाकर दी, अंग्रेजी की क़िताब थी। भैया भी मूर्ख टहरे। वे समझ नहीं पाये कि गायत्री को दरअसल इन पुस्तकों की ज़रूरत नहीं है।

ख़ैर मैं वह पुस्तक उसे दे आया। उसने तो खोलकर भी नहीं देखा कि पुस्तक का लेखक कौन है। बस, राम की मुँदरी की तरह उसे लिया और सीता की तरह भीतर चली गयी।

हफ़्ते भर के बाद वह पुस्तक लौटाने आयी। भैया तब घर में नहीं थे। रात में भैया के लौटते ही मैंने क़िताब दी।

"पढ़ लिया?" भैया चौंक गए थे।

"हाँ, कह रही थी, कि क़िताब उसे बहुत पसन्द आयी।"

उन्हें तो विश्वास ही नहीं हुआ। उन्हें तो जैसे पूरा विश्वास था कि पुस्तक उसकी समझ के परे है। उसके बाद भैया से एक क़िताब और ली गयी। उसे भी सप्ताह भर में लौटा गयी। उस दिन भैया घर पर ही थे। उसे तो आश्चर्य होने लगा था। उसने इनसे अंग्रेजी में बातें कीं। बार-बार आँचल ठीक करती रही।

"क्या समझीं तुम?" भैया ने पूछा, जैसे उन्हें लगा हो कि दुनिया भर की अक़्ल का ठेका सिर्फ़ उनके पास है।

पर गायत्री को शायद वैसा नहीं लगा। वह अच्छी, समझदार लड़की थी। धीमे से मुस्कुरा दी।

"क्या समझीं तुम?" इस प्रश्न का एक बेहद सुन्दर उत्तर उसने दिया था। "आपको"— वह लौट गयी थी तेज़ी के साथ।

भैया जैसे अकबका कर रह गए थे। मेरा मन हुआ चीखूँ, मूर्ख भैया, वह तुमसे प्यार करती है। पर इन्हें तो जैसे तरस ही नहीं आया। ज़िंदगी की छोटी-छोटी बातों को, छोटी-मोटी

खुशियों को नकारने की बुरी आदत थी इनमें। हमेशा ऐसा भाव रहता चेहरे पर कि मानो खुद किसी पहाड़ की चोटी पर खड़े हों, और बाकी लोग रेंग रहे हों।

गायत्री ने एक और कोशिश की। इस बार उसने पत्र लिखा। मैंने तो अपने को बहुत रोका, पर रोक नहीं पाया। बाथरूम का दरवाज़ा बंद कर वहाँ पढ़ लिया। अंग्रेजी में लिखा प्रेमपत्र था। लगा जैसे जानबूझकर डिक्शनरी से छाँट-छाँटकर शब्द ठूँसे गए हैं। कई-कई जगह मैं कुछ समझ नहीं पाया। अंतिम पंक्ति थी, "डियर, मे आई नो यू ?"

भैया को पत्र दे दिया।

'क्या है ?"

"गायत्री ने दिया है ?"

"काहे !"

"तुम्हें देने को कहा है !"

पढ़ा उन्होंने। एक लापरवाह हँसी !—"ठीक है, शाम उसे पार्क में लेते आना। गांधी जी की मूर्ति के पास।"

मुझे तो कुछ समझ में नहीं आया। गायत्री को जाकर बताया। उसने अपने को प्रयास पूर्वक सजाया ! (नीली साड़ी, नीला ब्लाउज़, नीला हैंडबैग, नीली बिंदी, नीली आँखें, नीली गायत्री) मेरे साथ आयी।

मुझे तो लगा, जैसे वह मेरी भाभी बन गयी है।

भैया आए ! सिगरेट सुलगायी। बिना किसी भूमिका के सीधे मुद्दे पर आ गए।

"तुम तमिष, हिन्दी सिनेमा बहुत देखती हो ?"

"हाँ, पिछले हफ़्ते भी देखी थी···उसमें···"

"ओह, स्टाप इट। यही जड़ है। इस तरह की फ़िल्में ही तुम लोगों को बिगाड़ती हैं। बस इसी फ़िल्मी अंदाज में चलना-फिरना खाना, बातें करना···। मुमताज़ की तरह अपने को समझना फिर राजेश खन्ना की तलाश···।"

"फिर मेरी तो कोई नौकरी तक नहीं। मिलेगी भी, तो तुम्हारी अपेक्षाओं को पूरा करने वाली नौकरी तो, वह कतई नहीं होगी। मैं तुम्हें अच्छी तरह जानता हूँ। न तुम मेरे योग्य हो, न मैं तुम्हारे। तुम्हारी चाल, तुम्हारा सिंगार पटार सब कुछ वही सराह सकेगा जिसके पास हेराल्ड की कार हो, ऑफ़िस से लौटकर तुम्हें शापिंग पर ले जाए। तुम्हारी मुस्कुराहट के लिए तरसा करे, अपने गले में पट्टा बाँधकर तुम्हारे हाथों में उसकी जंजीर थमा दे ! तुम वही हो, तुम्हारे लिए वही पुरुष ठीक रहेगा। लेकिन मैं ऐसा कतई नहीं हूँ। मैं सीधा सादा हूँ, और इस वक़्त मैं बेरोज़गार हूँ।"

"पर आपकी नौकरी लग ही जाएगी।"

"लग भी सकती है, और नहीं भी। मान लो, मिल भी जाए फिर तुमसे विवाह कर लूं और तुम्हारे सपने टूट जाएँ तो ? सच बहुत कड़ुवा होता है।

गायत्री ने सिर झुकाकर भैया का नाम एक बार रेत में उँगलियों से लिखा, फिर मिटा दिया। फिर आड़ी तिरछी लकीरें बनाने लगी। लगा, रो देगी। भैया उठ गए।

"तो मैं चलूं ?" मुझे एक ज़रूरी काम से जाना है। तो ? शैल आई से गुड बाई ?"

गायत्री ने कोई उत्तर नहीं दिया। बस एकबार सिर उठाकर उन्हें देखा। मेरा मन हुआ चीख दूं। पर भैया पलट कर चले गए।

पार्क के गेट तक उन्हें, जाते हुए गायत्री देखती रही। फिर पाँच मिनट तक इसी तरह आड़ी तिरछी लकीरें बनाती रही। मुझे उस पर दया आ रही थी। तकलीफ़तो उससे अधिक मुझे होने लगी थी।

"चलें राजू?"

"चलो।"

गायत्री तेज़ी से लौटी थी। लगा, जैसे कुछ रौंदती हुई चली जा रही हो। उसका घर आ गया। वह भीतर चली गयी। वह अंतिम विदाई थी।

भैया को नौकरी नहीं मिली। हमारे लिए यह अहम मुद्दा बन गया था। बाऊ ओसारे पर आराम कुर्सी डालकर पड़े रहते। घर से निकलते तो, उधारी के चक्कर में। गली भर में उधारी चल रही थी। बाहर निकलना मुश्किल होने लगा था। भैया घर पर नहीं ठहरते। जाने किस किस से नौकरी के सिलसिले में मिलते। लौटकर कभी अम्माँ को दस या कभी पन्द्रह रुपये दे देते।

एक दिन अगले वक़्त खाने के लाले पड़ गए।

तभी नटराजन आए थे। नटराजन बाऊ के दूर के रिश्ते में कुछ लगते थे। कुंडली वगैरह मिलाया करते थे।

उन्होंने ही बताया था कि संपन्न घर के कोई सज्जन अपनी बेटी भी देने को तैयार हैं, नौकरी भी लगवा देंगे। उनके अनुसार कुंडली बहुत अच्छी तरह मिल गयी थी।

रात भैया लौटे तो अम्माँ ने डरते-डरते बात चलायी। वह गुर्रा पड़े।

"तुम्हरी उम्र भी तो हो रही है। नौकरी भी नहीं है। अब कोई भलामानुस नौकरी भी दिला रहा है. लड़की भी दे रहा है तो क्या काटता है? मैं कोई कुएँ में तो नहीं धकेल रहा हूँ।" बाऊ का तर्क था।

"बाऊ, आप चुप रहिए।" सब चुप हो गए।

तकलीफ़ तो मुझे भी थी।

एक दिन, रात में उसी तरह बैठे थे। भैया अचानक बाहर से आए। शांति से पानी मँगवाया और बोले—"मैं उस विवाह के लिए मान गया हूँ।"

"किस विवाह के लिए?" अम्माँ ने पूछा।

वही तुम जो बता रही थीं। आज मिल आया हूँ उनसे। सोमवार से नौकरी पर जाऊँगा।

सबके चेहरों पर ताज़ा खून दौड़ गया।

भैया की नौकरी लग गयी। छह सौ रुपये माहवार।

अगले महीने शादी भी धूमधाम से हुई। भाभी घर आयीं, दान-दहेज में काफ़ी सामान लायी थीं। रुपये भी मिले, गहने, कपड़े लत्ते भी। भाभी इकलौती थीं। उनके पिता ने बचपन में काफ़ी तकलीफ़ें झेली थीं, पैसा तो बाद में खूब कमाया। उनका विचार था कि अपनी ही तरह तकलीफ़ें उठाने वाले किसी बुद्धिजीवी को अपनी बेटी देना बेहतर होगा। नटराज चाचा को भैया की याद आ गयी।

भाभी का भी अपना अलग अंदाज़ था। हमेशा चुप बनी रहतीं। कोई नाम भी पूछ लेता तो सोच समझकर उत्तर देतीं। पर भैया को वह पसंद थीं या फिर पसंद करने की कोशिश कर रहे थे, शायद। हमेशा उनसे बातें करते रहते। अक्सर अपने कमरे में उन्हें बुलवा भेजते। रोज शाम

उन्हें घुमाने ले जाते। जिन फ़िल्मों को देखने पर मुझे डाँट पड़ती थी, वे ही फ़िल्म बड़े चाव से देखते, दिखाते। घर पर सारी पत्रिकाएँ मँगवाते। हर महीने उनके लिए साड़ी आती। सबके साथ प्यार से बातें करते।

भैया बदल गए थे। मूर्ख। मैं अब उनसे नफ़रत करने लगा था। उनका वह गुस्सा, वह घमंड, वह लापरवाही। मेरे विचार में वही उन पर फबता भी था। तब उनके चेहरे पर तेज़ था। पर अब! एक मूर्खतापूर्ण खिसियायी हँसी।

भाभी के पिता जी अक्सर कार लेकर आते। उनके साथ घंटों बातें करते। तमीज़ से पेश आते। उनकी खुशामद करते। कॉफ़ी बनवाते! कभी-कभी तो भाभी की साड़ी पर प्रेस भी कर देते। मैं जानता हूँ वह यह सब क्यों कर रहे हैं। एक दिन भाभी को पाँवों में दर्द होने लगा, तो ये पाँव दबाने लग गए। अब उनके लिए सिर्फ़ रातों का अस्तित्व शेष रह गया था। सबसे जो तर्क के बल पर जीता करते थे, वे ही हर रात हार कर निकलते। हर रात हार कर सुबह निकलते तो जैसे भाभी, कल फिर युद्धक्षेत्र में मिलने का न्यौता देतीं और ये उसे स्वीकारते।

एक दिन दोपहर भैया की अलमारी से एक पुरानी क़िताब निकालकर पढ़ रहा था। बर्ट्रेंड रसेल! पहले कुछ समझ में नहीं आ रहा था किन्तु जैसे-जैसे पढ़ता गया, कुछ-कुछ समझ में आने लगा। विवाह के खोखलेपन पर तार्किक प्रहार था।—"बेरोज़गारों के लिए ही ये क़िताबें लिखी गयी हैं।" बाऊ अक्सर कहा करते थे।

भाभी ने कॉफ़ी लाकर दी। पीने के बाद सिगरेट की तलब लगी। रसेल को बंद कर बाहर आ गया। शाम होने लगी थी। दफ़्तर से घर लौटने का वक़्त था। नायर की दुकान से सिगरेट लेकर बाज़ार तक पैदल चला गया। सामने से भैया चले आ रहे थे। सिगरेट को छिपाकर उन्हें देखकर मुस्कराया। वह भी मुस्कराते हुए आगे बढ़ गए। आगे बढ़ते हुए मैंने देख लिया था कि उनके हाथों में गज़रा है मोगरे का। जिसे वह छिपाने की कोशिश कर रहे थे। मोटे-मोटे मोगरे···! मैं ठहाका लगाकर हँस पड़ा।

तमिष् से अनूदित : सुमति अय्यर

अंतिम यात्रा

□ वासन्ती

"अभी तक आप नहाने नहीं गयीं ?" वह गुर्रायी आवाज़ दरवाज़े से होकर भीतर आयी।

कोठरी के कोने में दीवार के पास, कोरी सफ़ेद साड़ी पर पसरी नागू दादी ने सिर उठाकर देखा। पार्वती का थुल-थुल शरीर धुँधला-सा नज़र आ गया।—"अभी आयी···।" वे लेटे-लेटे ही बोलीं।

"कुआँ खाली है क्या ?"

"हाँ, हाँ, खाली है। अब आप उठिए भी···।" पार्वती झल्ला गयी।

"तो ठीक है, अभी जाते हैं।" दादी ने सिरहाने रखे अँगोछे को झटका और दीवार के सहारे रखी लाठी को टेकती उठ गयीं।

"क्या बजा होगा ?"

"साढ़े नौ···।"

"बस···।" दादी का स्वर खिंचा।

"बस···क्या लगा रखी है। अभी तो आप घंटा भर नहायेंगी। फिर पूजा-ऊजा निपटाते बारह बजा देंगी। आज कामू को लेकर बाज़ार जाना है। चौका बटा दें पहले···"

"क्या लाना है, बाज़ार से ?"

"येल्लो, इस बुढ़िया को सब बताना पड़ेगा। अरे, कुछ भी लेंगे। आपको क्या ? कल वह

बंबई जा रही है न, बिटिया के पास। जाने क्या क्या लेना होगा उसे। और आप हैं फालतू बातें किए जा रही हैं···।"

"अरी नहीं री, बस अभी गयी और आयी। देर नहीं लगाऊँगी।"

दादी, लाठी टेकती हुई, पिछवाड़े कुएँ के पास आयीं। पट्टम्मा कपड़े पछींटने में लगी थी।

"क्यों री पट्टू, अभी तेरा काम नहीं निपटा? पार्वती तो कह रही थी कि कुआँ खाली पड़ा है···।"

"अरी ओ पट्टू झटपट खाली करो उहाँ से। आज जाने सूरज कहाँ से उग आया कि बुढ़िया टेरते ही उठ गयी। उसे नहा लेने दे। मुझे बाहर जाना है···।"

"अभी कर देती हूँ, बहूजी। साफ़ कर दूँ ज़रा। साबुन का पानी है, कहीं फिसल गयीं, कुछ हो हवा गया तो···?"

"हो ही जाये। कुछ होता भी तो नहीं। अब इनकी मौत तो ऐसे ही आएगी। वरना ये आसानी से जाने वाली कहाँ?"

पट्टम्मा ने चौंककर दादी के चेहरे को देखा। पर दादी बेअसर खड़ी थीं।

"हो गया पट्टू।" सहजता भरा स्वर था उनका।

"हाँ, दादी···।" पट्टम्मा ने झाड़ू फुर्ती से लगाया और किनारे को हो गयी।

दादी ने सँभालकर पैर आगे बढ़ाए।

"वह भी अघा गयी वेचारी!" दादी बुदबुदायीं—"अब क्या करें पट्टू हम भी तीस बरस से इसी इंतज़ार में हैं कि कब वह उठा ले···पर यमराज भी झाँसा दिये जा रहा है हमें···।"

"उसकी लिस्ट में आपका नाम छूट गया होगा दादी माँ।"

धोती ढीली कर नहाने बैठीं, तो कामू वहाँ आ गयी। पार्वती की चिड़चिड़ाहट और खीझ इसके चेहरे पर नहीं आती।

"बैठिए दादी माँ···पानी डाल देती हूँ।"

दादी का चेहरा खिल गया। नीचे उकड़ूँ बैठ गयीं।—"चलो, डाल दो।"

कामू कुएँ से पानी खींचकर डालती रही।

"बिटिया से मिलने जा रही हो?" दादी ने प्यार से पूछ लिया।

"हाँ, कल ही निकल रही हूँ। हमने तो कहा था कि जच्चगी में हियाँ आ जाओ। पर मानी नहीं। अब तो बच्ची भी तीन माह की हो रही है। हमारा भी निकलना कहाँ हो पाता है···।"

"हाँ, तू कैसे निकलती, तेरा आदमी पैर तुड़वाकर पड़ा रहा।"

"देखा बहूजी, दादी को सारी बातें याद हैं।"

"कामू, ओ कामू, बुढ़िया बातों में लगाये रहेगी। फिर हो चुका तुम्हारा बाज़ार-वाजार।"

"बस, दादी माँ, कि और डालूँ?"

"बस री, बिटिया। पूजा की धोती निकाल के रख दी?"

"हाँ, दादी! ये रखी है।"

दादी ने कोरी धोती उठायी और काँपते हाथों से पहनने लगीं।

पट्टम्मा ने पूछा, "दादी कल नाई को बुलवा दें का?"

"अरे हाँ, हम भी सोच रहे थे। चुभने लगे अब तो। ऊपर से मार खुजली के नींद नहीं आती। अब रोज़ कोई न कोई बहाना लगाकर टाल ही देती हूँ। अब बुलवा ही दो उसे···।"

"दादी, आप अपना जाप ख़त्म कर लीजिए।"

"आई···।" दादी बुदबुदाती आँगन से होकर, भीतर आ गयीं। टटोलकर किसी तरह स्विच जला लिया।

शहर का यह खपरैल वाला मक़ान, अभी दादी के लिए नया है। जब तक वे ज़िंदा रहे, गाँव के घर में आराम से हाथ-पाँव डोला करते थे। अभी भी याद है उन्हें। ज़मींदार की हवेली कहलाती थी वह। रोशनी ही रोशनी! हवा इत्ती कि पूछो मत। इस तरह थोड़े ही कि दिन-दहाड़े बत्ती जला लो। पर तब की बात ही कुछ और थी। रानी की तरह रहती थीं वे। यह पार्वती? हिम्मत थी इसकी कि सामने पड़ जाये? वे तो पुण्यात्मा थे कि इस लानत-मलामत के पहले ही उठ गए।

पूजा घर में आले पर रखे भभूत को झुर्रियों वाली उँगली से माथे पर लगा लिया।

"कब उठाओगे मुझे प्रभु?" मन ही मन बुदबुदायीं।

पीढ़े पर बैठकर 'शुक्लांबर विष्णु···।' गुनगुनाते अगली पंक्ति ही दिमाग़ से उतरने लगी।

"उनकी लिस्ट में आपका नाम छूट गया होगा···"

हाँ, यही हुआ होगा। ऐसा नहीं कि यमराज दरवाज़े तक आए नहीं, आए। यहाँ ओसारे पर मैं पतझर की पाती-सी पड़ी रही और जवान पत्तियाँ, नन्हीं कोपलों को उड़ा ले गये। किस-किसका नाम लें। छाती पर शूल गड़े हैं कि···। शुरूआत सुबुण्णी से हुई थी···

कैसा लगता था, लम्बा, ऊँचा, गोरा। घर का पहलौठा था। एकदम राजकुमार सा। वकालत में दोनों हाथों से कमाता रहा। पार्वती तो उसे देखते ही बौरा जाती थी। पर हुआ क्या? मन धरा का धरा रह गया। वकालत में जिरह करते-करते, अटैक पड़ा और वहीं कचहरी में सब कुछ ख़त्म हो गया।

फिर उस सदमे में ये भी कहाँ जी पाये? मैं ही हूँ, जो बैठी हूँ खूँटा गाड़कर। एक के बाद एक बाला, मीनू, वेंकटू, एच्चू, रमेश···! सबके सब खेलते-खाते बिना किसी पूर्व सूचना के एक के बाद एक चले गए और मैं···ओसारे पर पापिन बैठी रही निहारते···। मैं ही जानती हूँ, मेरी आत्मा कितनी कलपती है, हर बार जब भी कोई लाश दरवाज़े से उठती है।

कर भी क्या पायी, सिवाय चुपचाप देखते रहने के अलावा। आँखें हैं कि अब भी साफ़ देखती हैं। कानों से साफ़ सुनाई भी देता है। मानो प्रभु की ही इच्छा हो, कि लो और देखती रहो, जो चल रहा है, सुनती रहो जो कहा जा रहा है। मन को लकवा मार गया। वरना सुबुण्णी की मौत के दिन या फिर जब रमेश अचानक गुज़र गया था। पार्वती ने वो ताने दिए थे कि दूसरी होती तो वहीं प्राण त्याग देती।

"दादी! जाप ख़त्म हो गया हो तो···।"

"पता नहीं यह बुढ़िया इत्ता जप-तप किसके लिए किए जा रही है। उम्र तो उसकी बढ़ती ही जा रही है। परिवार को कोई लाभ हो तब न···।" "तुम भी चुप करो अम्माँ! बेचारी इस उम्र में भी किसी को तंग नहीं करतीं। अपना काम अपने आप कर लेती हैं।"

"अरे तो उससे किसी को क्या लाभ हुआ? इतनी उम्र तक धरती पर बोझ बनी पड़ी है। हमें मालूम है, जवान बेटे की मौत का दर्द। यही चली जाती, तो क्या बिगड़ जाता···।"

"अम्माँ, पर उसके लिए बेचारी दादी क्या करेंगी ? उनका क्या दोष···।"

"तू नहीं जानती कामू। यह पापिन है, डायन कहीं की। जब तक यह ज़िंदा रहेगी, तब तक छाती पर बोझ रखा रहेगा।"

"तुम भी अम्माँ···! मुझे इन बातों पर विश्वास नहीं है···।"

दादी उठ गयीं। गलियारे की बत्ती किसी ने बुझा दी थी। अब तो आँखें अँधेरे की भी आदी हो गयी हैं। धीमे-धीमे चलती हुई, चौके तक पहुँच गयीं। कामू चौके में ही थी।

"आइए दादी ! आपके लिए पत्तल बिछा दिया है।"

"तूने खा लिया ?"

"न, अम्माँ के साथ खा लूँगी।"

"पार्वती कहाँ चली गयी ?"

"बाहर सब्जी वाला खड़ा है, वहीं गयी हैं।"

"अच्छा, अच्छा !"

दादी, खाने लगीं।

"यह सब्जी तूने बनायी है, कामू ?"

"हाँ दादी ! कैसी बनी है ?"

"अमृत जैसी !"

"हाँ, हाँ, अमृत ही तो हुआ जा रहा है, जो भी खाती है, तभी न···।" पार्वती ने हंडिया भीतर रखते हुए कोंच दिया। माँ-बेटी एक-दूसरे को देखकर मुस्करा दीं। दादी ने जैसे ध्यान ही नहीं दिया। खाने में मग्न रहीं।

बैठक में टेलीफ़ोन की घंटी बजी।

कामू झल्लायी—"अब तक तीन बार बज चुकी है, घंटी ! उठाती हूँ तो कट जाता है।"

"हो सकता है, बंबई से पद्मा का फ़ोन हो ! बाहर का कॉल है। इतनी आसानी से तो मिलेगा नहीं।"

पार्वती ने चावल परसा !

"बस थोड़ा-सा परसना ! ज़रा-सा मट्ठा देना।"

पार्वती ने परोसते हुए आवाज़ लगायी।

"पद्मा हो तो पूछ लेना, उसे क्या-क्या चाहिए।"

वे चावल छाछ के साथ मिला रही थीं कि बैठक में कामू की चीख़ सुनाई पड़ी।

"कौन ? क्या कहा ? पद्मा ? अरे, कब ? यह क्या कह रहे हैं आप ?" रुलाई फूट पड़ी। भीतर जैसे कुछ दरक गया। दादी ने घबराकर पार्वती को देखा। पार्वती करछुल वहीं पटककर बैठक की ओर भागी।

"क्यों ? कामू ? क्या हुआ ?"

कामू की रुलाई फूट पड़ी।

दादी के हाथ-पाँव सुन्न हो गए। तो अब कौन···?

"पद्मा को आज सुबह शॉक लग गया। वह नहीं रही अम्मा···।"

"हाय राम ! यह क्या हो गया ?"

कैसी चीख है यह ! तीनों लोकों का दुःख जैसे फूट पड़ रहा हो।

दादी को दुःख से अधिक आतंक ने घेर लिया। लगा जैसे पत्तल के आगे बैठकर वे कोई गुनाह कर रही हैं। दिमाग़ सुन्न पड़ने लगा। अगले वार की प्रतीक्षा में सहम गयीं।

पार्वती तमतमाये चेहरे में भीतर आयी। दादी का हलक़ सूखने लगा।

"मुझे छोड़ दे डायन ! तू मुझे···।" पार्वती ने चौके में रखा चावल का पतीला उनकी पत्तल में उलट दिया।

"लीजिए ! और भकोस लीजिए !" दादी की पत्तल में गिरते गरम-गरम चावल के दाने झुर्रियों भरी हथेली को भी छू गए। उन्होंने हथेली पीछे कर ली। वे अवाक्-सी चावल के ढेर को, कभी पार्वती को देखती रहीं।

"अरे, सबको खाने के लिए ही तो, यूँ खूँटा गाड़कर बैठी है, डायन ! और कब तक भकोसती रहेगी। तुझे वह यमराज उठाता भी तो नहीं। खेलते-खाते बच्चों को लिए जा रहा है।"

पार्वती के शब्द उनकी समझ से परे होते जा रहे थे। उनकी आँखों को बस वह विद्वेष, वह क्रोध, वह आवेश ही दिखायी दे रहा था।

इसको नातिन की मौत का इतना दुःख नहीं है, जितना मुझ पर विद्वेष। हो सकता है, यह हंडिया ही उठाकर दे मारे। पर अच्छा है, चलो प्राण छूटें तो किसी तरह···।

बाहर का दरवाज़ा ज़ोर से खड़का। पार्वती ने भरपूर गुस्से में दादी को देखा।

"पता है, पद्मा नहीं रही ! चौबीस साल की बिटिया···।"

कलेजा ठंडा हुआ अब ? अब भकोस लो, एक दाना भी नहीं छोड़ना समझीं···।

दादी ने पत्तल को देखा। अच्छा-भला, तीन लोगों के लायक चावल था। जाने क्या-क्या सूझने लगा उन्हें। पूरा शरीर काँप गया।

"क्या करूँगी इसका ? झूठे पत्तल में इतना चावल···? आज तेरे ससुर ज़िंदा होते तो क्या, इतनी हिम्मत कर सकती थी ?"

"राम ! राम ! अच्छा हुआ, वे पहले ही उठ गए। एक हम काफ़ी हैं, इस लानत-मलामत को सहने के लिए।"

"अब इसका क्या करें ?" बैठक में कामू का विलाप शुरू हो गया था।

पतीला अब भी गरम था। दादी ने उसे सीधा किया। चावल को मुट्ठी में भरकर पतीले में डालती रहीं। हाथ थक गए।

"कितने लोगों को खिला चुकी हूँ ! क्यों री, इतना सारा अन्न, इसे फिंकवाते···।" दादी मन ही मन बुदबुदाती रहीं। किसी तरह पतीले को भरकर दादी उठीं। लाठी टेककर चलते हुए लगा, जैसे बेहद कमज़ोरी आ गयी है। लगा जैसे शरीर का वज़न बढ़ता जा रहा है। पिछवाड़े के नल से कुल्ला कर बैठक की ओर जाती दादी के पाँव क्षणांश के लिए ठिठक गए। कामू बिटिया को कैसे आश्वस्त करेगी वह ?

दादी इसी सोच में बैठक तक चली आयीं। बैठक में लोग भर गए थे। अरे, इतनी देर में मोहल्ले की औरतें इकट्ठी हो गयीं क्या ?

दादी की नज़र किसी पर नहीं गयी। आँचल से मुँह ढाँपकर कलपती कामू के पास पहुँचीं। काँपती आवाज़ में बोलीं—"बेटी कामू ! यह क्या हो गया री···कैसा अन्याय है यह ?"

कामू ने झट आँचल चेहरे पर से हटाया। इसकी आँखों में दुःख के साथ क्रोध भी तो है। यह पार्वती है या कामू।

दादी का खून मानो जमने लगा।

"माँ ठीक कहती है। यह बुढ़िया डायन है। घर के एक-एक आदमी को खाकर ही यह यहाँ से टलेगी।" कामू चीखकर उठी।

कामू! क्या कामू भी इस तरह की बात कह सकती है? दादी का सर्वांग काँप गया। उन्हें आस-पास के लोगों की नज़रें चुभती-सी लगीं।

"क्या करूँ? मुझे वह बुला ही नहीं रहा···।" कमज़ोर आवाज़ में बोलीं।

"कैसे ले जाएगा?" पार्वती गरज पड़ी—"आपका तो मन लोहे का है। राजा-सा बेटा खोया, दामाद गया, फिर बिटिया! पोता, पोती और अब पड़पोती···सबको खाकर बैठी है, तू सचमुच डायन है।"

एक मौन पसर गया था वहाँ, जैसे उसकी बातों का अनुमोदन किया जा रहा हो।

"मैं क्या करूँ?" पार्वती ने झुँझलाते हुए नकल उतारी—"जाओ कहीं कुआँ-बावड़ी में डूब मरो।"

"क्या कह रही हो, बहन! यह मौत भयावह है माना, पर बुढ़िया बेचारी का क्या दोष?"

"तू नहीं जानती सरोजा! मेरा तो कलेजा जल रहा है!" पार्वती फूट पड़ी—"एक-एक करके···मौत पर मौत! तिस पर बुढ़िया है कि ठाठ में बैठी है।" और पार्वती की रुलाई तेज़ हो गयी।

"दादी, आप भीतर चली जाइए।" एक ने उन्हें वहाँ से उठा दिया।

दादी सिर झुकाए वहाँ से उठीं और कोरी बिछी धोती पर आकर बैठ गयीं। कामू का हरदम खिला चेहरा किस कदर विद्रूपता से भर गया था। वे बातें। वे ताने···।

तुम भी···

दादी धीमे से उठीं। बगैर किसी आहट के पिछवाड़े तक चली आयीं। उनकी जूठी पत्तल, पतीला भर चावल वहीं पड़ा हुआ था, यूँ ही। दादी आराम से बैठ गयीं और पतीले के चावल को मुट्ठी में भरकर मुँह में ठूँसने लगीं।

पिछवाड़े की ओर अचानक आयी सरोजा भीतर की ओर भागी।

"हाय राम, बहनजी! बुढ़िया का दिमाग़ चल गया है। ग़मी का घर है और पतीले में रखे चावल को ठूँसकर खाये जा रही है···।"

"यह क्या हो गया···?"

"वह सामान्य औरत नहीं है।"

"यह बुढ़िया पतीले को कैसे उठा ले गयी?"

"देखो तो···?" पार्वती आक्रोश के साथ उठी।

"आज छोड़ूँगी नहीं इसे। यह बुढ़िया तो मेरी जान लेकर ही रहेगी।"

उसके पीछे-पीछे बाकी औरतें भी तमाशा देखने भागीं। पतीला लुढ़का पड़ा था। आधे से अधिक चावल पतीले में बचा था। दादी के मुँह और गले में फँसे सूखे चावलों ने उनकी साँस रोक दी थी। दीवार से लगी, दादी की देह को सरोजा ने जमीन पर लिटा दिया।

"बेचारी का दिमाग़ चल गया था···।" सरोजा की आँखें भर आयीं।

तमिष् से अनूदित : सुमति अय्यर

मुखौटा

□ बाल कुमारन

आपके पास आपका चेहरा है न? एक पासपोर्ट साइज़ के कागज़ में अपने चेहरे को सुरक्षित रखा ही होगा आपने! पर्स में, घर की दीवारों में, अलबम में—आपका चेहरा हर कहीं होगा और उसे देखकर आप भी खुश हो लेते होंगे।

आपके असली चेहरे की तुलना में फ़ोटो वाला चेहरा सुंदर लगता होगा, है न? खूब पाउडर लगाकर, सलीके से बाल सँवार हँसने की बात कहते ही कैसा चमक जाता है चेहरा?

क्या कभी आपके साथ ऐसा हुआ है कि वह चिकना चुपड़ा चेहरा पत्रिका में भी छप जाए? और वह भी ऐसी पत्रिका में जो लाखों में बिकती हो, और उसके बीच वाले पृष्ठ पर दाँई ओर वह फोटो छप जाए? कैसा होता है उसका सुख?

फिर यदि उस फ़ोटो के नीचे नाम भी लिखा हो, पता वगैरह भी हो तो?

और यदि वहाँ आपके चित्र के नीचे किसी और का नाम हो तो? कैसा लगेगा आपको?

गुस्सा, आक्रोश, खीझ -- और एक अदद गाली।

यही कि एक पत्र झटपट लिख डालेंगे। संपादक महोदय को नमस्कार। सकुशल मंगल है। इस अंक के बीच वाले पृष्ठ में मेरा चित्र छपा है। पर नाम किसी और का···। गुस्सा भभकेगा न?

ठीक ऐसा ही गुस्सा कृष्णराजु को भी आया था।

"साला! अपनी औकात दिखा गया न, बाम्हन का बच्चा। फोटू हमार रहा और नाम मैं अपना डाल दिया। कहाँ का न्याव है ये? अरे ओ वेद गिरि, हम निपट लैबे, ई गोल-माल से। अगली बेर हमार नाम दे दे, तो ठीक नहीं तो हम···हाँ हाँ ठीक है। फोटो वोही खींचत रहे, पर एही खातिर फोटू में उसका नाम कइसे छप जाई? हमार नाम ही तो छपिहै ना···।"

जाने क्या-क्या गालियाँ देता रहा था वह, मुझे सब बताया गया। अगले ही सप्ताह उसका नाम पत्रिका में छप सकता था, पर उसमें कुछ दिक्कतें थीं।

मैंने जब कृष्णराजू की तस्वीर उतारी थी, वह रविवार की एक अलसाई दोपहरी थी। आकाश बादलों से ढँका था। मैंने नियमानुसार घर भर के जाले साफ़ किए थे। ग्यारह बजे, तीसरी बार कॉफ़ी पी थी, फिर तेल लगा कर नहाया था, और लगभग एक बजे साँबर, रसम और आलू की खूब तेल वाली सब्जी के साथ, दोपहर के भोजन से निपटकर ऊँघने लगा था।

"बहू जी"···लक्ष्मी ने दरवाज़े से आवाज़ लगायी।

"दूध आ गया, तो रख देना वहीं।" कमला ने अलसाते हुए कहा था।

"साहब को बुलाय रहे हैं।"

"कौन री?"

"हमरे हियाँ। कहत रहे, साहब को साथ ही मा लिवाय लाओ?"

"पर क्यों? बात क्या है?"

"दरवज्जा तो खोलो, बहू जी।"

कमला ने अँगड़ाई ली और उठकर दरवाज़ा खोल दिया। लक्ष्मी शरमाती सी वहाँ खड़ी थी। आम तौर पर लक्ष्मी को आज तक शरमाते नहीं देखा। बीस वर्षीया नटखट मुँह फट और तेज़ तर्रार युवती थी। काम भी मर्ज़ी से करती।

"गौरी के बाऊ···अरे उठो! आठ बजत हैं। गौरी, अपने बापू को उठाय दो। कब उठिहैं और कब हम बुहार के जाई! और जो हम बगैर झाड़ू के चली जायें तो तोहार अम्माँ हमार जान खींच डाले।"

मैं उठ बैठता और चादर के नीचे उतर गयी लुँगी को ढूँढता।

"अरे उठ गये ना! तो बिस्तर समेट के रख दो भैया जी! गौरी, तोहार बापू का ढूँढत हैं? पइसा बइसा गिर गवा रहा क्या?"

"अब तुम जाओ भी! लुँगी तो पहन लें उठकर!" कमला भीतर से हड़काती।

"तो का, तोहार घर में नंगे सोवत हैं?

"चल हट निर्लज्ज कहीं की। इधर आ।"

लक्ष्मी वहाँ से हटती और मैं जल्दी से उठकर पिछवाड़े की ओर भागता।

"अरे ओ भैया जी! ई सुतली काहे हियाँ छोड़ के जा रहे हो? रात में ई का भी उतार के सोवत रहे का।"

बिस्तर में पड़े जनेऊ को मैं उठाकर पहन लेता।

कमला चिढ़ती!—"तूने तो लाज हया बेच खायी है। घर के मरदों से कहीं ऐसी बातें की जाती हैं?

"उनसे? अऊर हम? तू तो अभी आई है बहू जी। केत्ता साल हुआ? आठ साल? अऊर हम तो भैया जी को तब से जानत रहे जब ये ऊ साइकिल मा आफिस जावत रहा। हम का

तो सब पता है। तुम्हें देख के जब आये रहे, तो ये तो मना ही करत रहे कि बियाह नहीं करेंगे। हम जानित हैं। एक सुंदर सी छोकरी आवत रही न तब, ये तो उसी से बियाह करना चाहत रहे। पता नहीं कइसे तोहार साथ फँस गए, बेचारे···।"

"कौन है, वह लड़की ?"

"अरे, तो हमें का मालूम ? भैया जी से पूछो।"

बातचीत की दिशा बदल गई थी और मैं सोचता रहा था, कौन रही होगी। जानबूझ-कर तीन चार नाम और लेता, फँस जाता।

वही लक्ष्मी आज बला की शरमा रही है।

"भैया जी, कल नुक्कड़ की दुकान से फ़िल्म खरीदत रहे न ?

"हाँ, तो ?"

"हमारे घर में फोटू खिचाय का परी। कहत रहे, भैया जी को लिवाय लाओ।"

"तो, क्या फ़िल्म, तुम्हारे घर के लिए डलवायी है। हम लोग बाहर जा रहे हैं। उनकी बहन की शादी है, इसलिए···"

"वो दुकानदार कहत रहा कि, भैया जी का बक्सा चालीस फोटू निकार सकत है···।"

"हाँ, छत्तीस खिचेंगी।"

"बहू जी, हमार दुलहे का फोटू खींचना है।"

"किसकी ? कृष्णराजू की ? तो क्या उसने भिजवाया है ?"

"नाहीं बहूजी। उसकी भौजाई कहला के भेजत रही। नाथन की दुकान तो बंद रही न आज। घर गये रहे उसके, तो कहीं चला गवा रहा। उसका लरिका ही बोलत रहा कि भैया जी कल ही तो फिलम लाये रहे···।"

'बस बस ! यह कैसे हो सकता है। हम तो शादी के लिए लाये हैं। दो माँगी थीं, एक ही थी, उसके पास। बारात से लेकर अगले दिन मंगलसूत्र धारण तक की तस्वीरें खींचनी हैं। यही कम पड़ेंगी।"

"अरे बहू जी ! ऐसे न बोलो। फिर ऊ सब लोग हमसे नाराज़ हो जाई···।"

"कौन लोग ?"

"अरे वोही, उनकी भौजाई, अउर कौन।"

"तो कल खिचवा लेना, नाथन की दुकान भी खुल जायेगी। आज ही कौन बियाह हो रहा है, तुम्हारे खसम का ?"

"आज बाघ का स्वाँग जो किए हैं।"

"क्या कहा ?"

"हाँ, बहूजी, आषाढ़ का महीना है न। आख़िरी इतवार को बाघ का स्वाँग रचत है, मंदिर के मेले मा। इस बेर हमरे ये ही रचत रहे···।"

"तो क्या इस वक़्त मंदिर जाना है।"

"नाहीं, हमरे घर के पिछवाड़े गोविंदम्मा के घर पर सजत रहे। फिर एक-एक गली मोहल्ले मा नाचत फिरि हैं। ऐ भैया जी, अब की जौन हम तुमका लेई के न गई तो फिर हमारा बियाह रुक जाई हाँ···।"

"अरे, तो कह दो दुकान बंद है। इसमें तुम्हारा क्या दोष ?"

"तो का करें, वो जान गये रहे कि तोहार घर फोटू वाला बक्सा और फिलम है। बोले,

वहाँ तो तुम काम करत हो ना, जाके बुलाई लाओ···।''

"नही जाएँ तो ?''

"वो लोग हमका खूब कोसि हैं। अउर का ? कहि हैं कि हम कंजूसी करत हैं। फिर लड़ाई पर तकरार सँग हुई जाई। ऐ बहूजी, अब दुई तस्वीर की बात है। कोई अउर होता तो हम ना कह देते, पर हियाँ कइसे कह दें ?''

लक्ष्मी की बात मेरी समझ में आ रही थी। पर एक फ़िल्म छप्पन रुपये की डलवाई है। एक तस्वीर पर पाँच रुपये ख़र्चा। दो यानी लगभग सोलह रुपये ?

'भैया जी, हम पइसा दे दइबे।''

"बहुत लगेंगे !''

"तो का हुई जाई। हम अपनी नाक की कील साहूकार के हियाँ गिरवी रख दइबे।''

"अरे नहीं···।''

"तो तुम चलोगे, भैया जी···।''

मैंने कपड़े बदले और कैमरा—फ़्लैश समेत उसके साथ चल दिया। लक्ष्मी अब भी शरमा रही थी।—"यही हैं हमरे भैया जी।'' जो भी मिलता सबसे यही कहती आगे बढ़ जाती। एक मकान के आगे रुक गयी और एक मोटी सी महिला के पास दौड़ गयी। मेरी ओर इशारा कर उसके कान में कुछ फुसफुसायी। फिर मेरे पास चली आयी।

"हमारी सासू जी हैं।''

"कौन ? कृष्णराजू की अम्माँ ? कही मेरे साथ आने का बुरा तो नहीं मानेंगी ?''

"हाँ···भैया जी, आप बाम्हन हो ना, तो बुरा नाहीं मानि हैं।''

"तो क्या ब्राह्मण को इतना गया बीता समझ रखा है क्या ?''

"अरे नाहीं ! बखत पे चाय पानी का जुगाड़ होवत है। फिर तनख़्वाह पूरी। काम भी कम। एक बात कहें भैया जी ! बाँमन को चालाकी नहीं आवत है। एही खातिर हम कहे रहे···।''

"हमें भी नहीं आती चालाकी।''

"चुपा जाओ। मुँह न खुलाओ हमार ! हम तोका जानत हैं ख़ूब ! ई तो कमला बहूजी हैं कि तोहार सँग गिरस्ती की गाड़ी खींच रही हैं नाही तो···हम तो बारह बरस से तोहार घर में झाड़ू बुहारी करत रहिन ना। अरे हाँ, भैया जी ऊ गोरी-गोरी लड़की से तुमने बियाह काहे नाहीं किया ?''

"चुप कर ! बहुत बकर-बकर करती है।''

"हाँ, भैया जी, जोन तुम हियाँ अबहिं आये नहीं होते, तौन हम एक दिन सब पोल पट्टी खोल देते हाँ···। अच्छा अब ऊपर चले जाओ चुप्पे से···।

एक लम्बे से आँगन में डिब्बेनुमा मकान। दरवाज़ों पर खड़ी औरतें, उनकी गोद में बच्चे, रास्ते में कूड़े का ढेर और जीने के पास बंधी भैंसे।''

"यहाँ तो भैंस बंधी है।''

लक्ष्मी ने हाँक लगाकर उन्हें परे किया। मैं दीवार से लगभग चिपकता हुआ ऊपर चढ़ गया।

ऊपर भी बच्चे, बूढ़े, बुजुर्ग और किशोर युवक जमा थे, और उनके बीच में बाघ।

"हियाँ साज हो रहा है, नौटंकी के ख़ातिर। जनानियों का हियाँ का काम ?'' एक बूढ़ा

दस साल की बच्ची को भगा रहा था। बच्ची ने नीचे उतरने का बहाना किया फिर जीने के पास से दुबक कर देखने लगी।

"फोटू वाले आय गये का?"

"हाँ···, आय गए। अब रास्ता छोड़ दो। परे हटो। ऐ···उधर! तू हट परे···नाहीं तू···।" तरह-तरह की आवाजें और भीड़ फिर वैसी की वैसी···।"

"हमार फोटू खींच दो, भैया जी···हमार···।" लड़के चिल्लाये।

"कृष्णराजू कहाँ है?

"उसी का तो साज हुई रहा है, भैया जी, टकप करवाय रहा है···।"

"टकप···वो क्या है?"

"टकप भैया जी···।" बूढ़े ने गाल और माथे पर हाथ फेर कर इशारा किया।

"ओह: टचअप···।" मैंने उसे समझाकर कहा।

कृष्णराजू मेरी ओर बढ़ा। हालाँकि कृष्णराजू से मैं पहले एक बार मिल चुका था। वह मुझे अच्छी तरह जानता है। मैं भी जानता हूँ। बात कभी नहीं हो पायी। एक बार मेरे स्कूटर को धक्का देकर उसने चलाया था। एग्मोर तक ऑटो में ले गया था। इसी ने बताया था कि लक्ष्मी के साथ इसकी बात पक्की हुई है। पर मुझे संदेह होने लगा कि यह सामने खड़ा बाघ कृष्णराजू ही है।

"आइए! सॉब!" उसकी आवाज़ पहचान गया। सिर से पैर तक पीली और काली धारियाँ पुती हुई थीं। सिर के बाल कनटोप के अंदर छिपे थे! कमर की चड्ढी में खुँसी लम्बी पूँछ।

टचअप करने वाला आदमी पीछे-पीछे आ गया और कुछ भूल-चूक ठीक करता रहा।

"फ़ोटो के लिए कह रहे थे तुम, शायद! यह रंगीन है।"

"हाँ, रंगीनै के खातिर कहत रहे हम। तभी न आपको बुलाय भेजत रहे! नाथन की दुकानो बंद रही। आज चूक गये तो फिर आषाढ़ मा ही फिर नौटंकी होगी। इसीलिए हम कहत रहे···।"

"बहुत तो नही खींच सकता राजू। अगले सप्ताह, तंजौर में मेरी बहन की शादी है। फ़िल्म उसी के लिए भरवायी है।"

"अरे सॉब! बस दुइठो बहुत है। हमका तो यादगार के ख़ातिर चाहिए रहा। बस! तो खिचि हैं! नीचे चलें का?

"नहीं, यहीं खींच लेंगे···।"

"हम पइसा दे दइहैं, सॉब···।"

"अच्छा-अच्छा, रहने दो। रोशनी तो अडजस्ट लूँ।"

बाघ पीछे हटा ओर दाँये-बाँये झूलता हुआ स्थिर हो गया।

इस बाघ के रूप का उद्देश्य क्या होता होगा? क्या है इसका आधार? इस नृत्य का मूल तत्व क्या है। मैं सोचता रहा और कैमरे को आँख में लगा लिया। शटर, स्पीड और रोशनी को ठीक कर जूम लेन्स को धीरे-धीरे घुमाकर पोज़ ठीक करता रहा। बाघ के पीछे भीड़ धकियाती रही। फ़्लैश चार्ज किया। सिग्नल लाइट की प्रतीक्षा करता रहा, फिर क्लिक कर लिया। पीछे खीसें निपोरते युवक और बीच में बाघ···! फ़्लैश की चमक फैल गयी। एक तस्वीर पूरी हो गयी।

"एक ठो अउर खींच दो सॉब···।"

मेरा मन नहीं था।

"पीछे भीड़ है राजू, पहले उन्हें तो भगाओ।"

"व्यो···यो···हारर र···" बाघ ने झपट्टा मारा और भीड़ को तितर-बितर कर दिया।

"अरी दैया री···।" छह साल के लड़के ने अपनी निकर थाम ली और चीख पड़ा। सारा फ़र्श गीला हो गया।

'भीड़ हँस पड़ी। दाँये और बाँये भीड़। मेरी सहनशक्ति चुक गयी थी। कृष्णराजू के दोस्तों ने भीड़ को काबू में किया।

एक बूढ़े को आगे धकेलते हुए बोले, "राजू! ई उस्ताद के संग फोटू खिचवाय लो···।"

नगाड़े-ढोल वाले दोस्त तीन और बीच में उस्ताद और बाघ।

"ढोल रहन दो···।"

"काहे! ढोल के बगैर कइसे···।"

"ना, ढोल तो होगा ही···।"

"डम डम डमक डम···।" ढोल बजने लगा। बाघ ने एक छलाँग आगे और एक छलाँग पीछे लगायी। फिर उस्ताद के पैरों के पास झुक गया। उस्ताद के बाँये हाथ में बेंत, और दाँया हाथ अभय की मुद्रा में···।"

राजू, तुम्हारी पीठ ही आ रही है, चेहरा नहीं दिख रहा है···।"

बाघ ने फिर छलाँग लगायी। अब की बार, उस्ताद के पैरों के पास लोटने की मुद्रा···।"

लगभग एक ग्रुप फ़ोटो रहा, इस बार भी। मैं पीछे हट गया और फ़ोकस किया बाघ को।

मैं चाहता था कि बाघ हँस दे। कैसा लगेगा हँसता बाघ?

"कृष्णराजू, हँस दो।" एकदम क्लोज़ अप आ रहा था इस बार। शार्प बैक लाइट। बाघ के मुँह पर काफ़ी सफ़ेदी पुती हुई थी। होंठ खुले, सफ़ेद दाँत काले कैसे होंगे? क्या बाघ, हँसता हुआ लगेगा! शायद लगे, न भी लगे। एक फ़ोटो मैंने अपनी मर्ज़ी से खींच ली।

बाघ आगे आ गया और हाथ मिलाया।

"बहुत थैंक्स सॉब! कब मिलि हैं फोटू?"

"अगले हफ़्ते।"

"तो घर अइहैं हम अबहि···।"

अब घर आने का मतलब मैं समझ नहीं पाया। सिर हिला दिया। ठीक तीन घंटे के बाद टी. वी. पर समाचार दर्शन देख रहा था। शाम के साढ़े पाँच बजे होंगे कि गली से ढोल की आवाज़ आयी।

मेरी बिटिया चीख पड़ी। चेहरा लाल हो गया था। मेरे पाँव से लिपट गयी थी। बाघ दरवाज़े से भीतर आया और आगे-पीछे उछलने लगा।

एक टाँग के बल पर ठुमकता हुआ मेरे पास आया। बाहर चीख-पुकार मची थी। गौरी पाँव से लिपटी अलग चीख रही थी। कमला दरवाज़े पर भिड़ती-पड़ती भीतर भागी।—"उसे भगाइए ना! यहाँ यह क्या मचा रखा है।" छाती पर हाथ रखे वह चीख पड़ी।

क्षणांश के लिए मेरी समझ में कुछ नहीं आया। पैरों से बच्ची की पकड़ ढीली नहीं कर पाया।

"कृष्णराजू। अब बस कर दो। बिटिया घबरा रही है।" दरअसल उसके नृत्य से घबरा मैं भी रहा था।

"घर का भूत परेत बाधा दूर हो जाई सरकार! बिटिया, हिंया आओ हमरे पास! हमका एक बार पियार कर लेओ···।" उसने हाथ बढ़ाया। बच्ची और भी तेज़ चीखने लगी। मुझे गुदगुदी होने लगी, वह मेरी टाँगों के बीच घुसने की कोशिश करने लगी थी।

"अरे, प्यार व्यार छोड़ो। यहाँ ये डर के मारे मरी जा रही है। अब तुम जाओ··।"

"बहुत थैंक्स साॅब!" वह फुदकता हुआ लौट गया।

कमला जल्दी से लपक कर आयी और दरवाज़ा भेड़ती हुई बोली—"और दरवाज़ा खोल कर बैठो। गधे और सुअर भी भीतर चले आयेंगे।" वह भन्ना उठी थी।

"यह तो आदमजात था, कमला।"

"आदमजात नहीं तो··। चल मेरे पास आ जा गौरी। देख रहे हैं, कैसे डर गयी बच्ची। फ़ोटो खींचकर चुपचाप लौटते नहीं बना, न्यौता भी दे आये।"

वह गौरी को पुचकारने लगी।

"अरे मैंने कहाँ बुलाया था। कह रहा था कि घर पर मिलेंगे। मैंने भी हामी भर दी। अब मुझे क्या पता था कि इस तरह हॉल में नाचता फिरेगा।"

मैंने दरवाज़े की झिरी से झाँक कर देखा। वह तीन घर आगे चला गया था।

बाहर बरामदे में आ गया। बाहर बूँदाबाँदी होने लगी। थोड़ी ही देर में तेज़ बारिश होने लगी। हल्का अँधेरा छाने लगा।

बाघ के साथ आयी भीड़, ढोल वाले, सब तितर बितर होने लगे। किनारे बनी दुकानों में छिपने की जगह ढूंढने लगे। बारिश तेज़ होती रही।

किसी ने बाघ को छतरी पकड़ा दी। वह थोड़ी दूर चलकर एक दीवार के सहारे बोगन बेलिया की लता के पास पहुँच गया। मैं भीतर भागा। कैमरे में फ़्लैश लगाया। चार्ज किया और लुंगी को घुटनों तक मोड़ लिया। पानी तेज़ होता रहा लगातार। शाम के धुंधलके में पानी की लकीरें नज़र आ रही थीं।

मैं गली में उतर गया। भीगता हुआ चीखा—"कृष्णराजू, वहीं बने रहना।" कैमरे को आँखों से लगाया। छतरी के साथ खड़ा बाघ, पीछे घनी बेल, एकदम गहरे हरे रंग की, उस पर झूलते गुलाबी रंग के फूलों के गुच्छे! कमर तक की ऊँचाई तक मटमैली सफ़ेद दीवार। सिर के ऊपर ललाई लिए आकाश! मैंने तुरंत क्लिक किया।

"राजू इधर आओ, मेरी ओर।"

बाघ मेरी ओर लपका, पानी की बरसती धार को चीरता हुआ, छतरी लिए हुए। एकदम खाली सड़क पर बाघ: यही वह तस्वीर थी जो एक प्रसिद्ध अंग्रेजी साप्ताहिक में छपी थी।

बीच वाले पृष्ठ के बाँईं ओर छपी चुनी हुई छह तस्वीरों में, एक तस्वीर यह भी थी। नीचे मेरा नाम लिखा हुआ था।

पतली मूँछे, सिकुड़े हुए होंठ और बिखरे बालों वाला कृष्णराजू मेरे पास आया।

"हमार नाम तो हियाँ कहूँ नाहीं लिखा है, साॅब। छूट गवा का? हमार नाम लिखा होता, तो हम चार जनी को दिखाय देते। एकठो गाँव भिजवाय देते! जहाँ हम काम करत रहे,

वहूँ दिखाय देते। हमार चेहरा, अख़बार में छपि गवा रहा। यह तो हमार लिए बड़ी बात है, सॉब ! अउर हमार नाम हियाँ छूट गया रहा।"

"हो सकता था, कृष्णराजू ! तुम्हारा नाम दिया जा सकता था। पर इसमें तुम्हारा चेहरा कहाँ है ? कैसे विश्वास दिला सकते हो कि यह तुम्हारा है। घर वालों को, या कंपनी वालों को। यहाँ तो बाघ का स्वाँग रचने वाले कितने ही मौहल्लों में है। अगर तुम्हारा नाम डल भी जाता तो क्या विश्वास होता लोगों को ? चेहरा तो बाघ का है न, तुम्हारा कहाँ है।"

कृष्णराजू ने पत्रिका को दोबारा पलटकर देखा।

"तुम कहो तो अगली बार तुम्हारा नाम डलवा देंगे। पर तस्वीर अब नहीं छपेगी।"

वह सोचता रहा। "रहन दो ! नाम भी छप गवा तो कउन समझेगा, कि ई हमही हैं। रहन दो, सॉब : थैंक्स।" वह धीरे से लौट गया। उसकी चाल थकी-थकी लगी।

वह जिस तरह लौटा—उसे लौटते देखकर मेरी आँखें भर आयीं। बहुत दिनों तक यह बात मैं भूल नहीं पाया।

तमिष़ से अनूदित : सुमति अय्यर

धन बहादुर की लाठी

□ समीरण छेत्री 'प्रियदर्शी'

बैंक से पेन्शन लेकर धन बहादुर अपनी लाठी टेकते-टेकते सीढ़ी से उतरा तो सब पेन्शनर एक टक उसे ही देखते रहे। रसिक धन बहादुर के जाने के बाद सब पेन्शनर उदास हो जाते थे। अठहत्तर बसन्त देख चुका धन बहादुर, अजीब मस्ती से चलता है—संतोष भी एक चीज़ है। बीस साल तो उसको पेन्शन लेते हो गए। उसके हाथ में यह लाठी आये भी चालीस साल हो चुके हैं। अड़तीस साल की युवावस्था में भी वह यही लाठी टेकता था। लँगड़ा होने के कारण धन बहादुर यह लाठी टेकता है, ऐसी बात नहीं है। इस लाठी के साथ जुड़ी कहानी ने धन बहादुर को लाठी टेकने के लिए बाध्य किया था।

दूसरे विश्वयुद्ध के समय सिंहमारी में फ़ादर सबुल नामक एक जर्मन पादरी रहता था। उसे जब स्वदेश जाना पड़ा तो अपनी चीज़ें नौकर-चाकरों को बाँटते समय यह लाठी धन बहादुर के हिस्से में पड़ी। धन बहादुर को बहुतेरे पागल का भी विशेषण देते हैं—उसे अपने ही मुँह से लाठी की स्तुति गाते सुनकर। जो भी हो, धन बहादुर की लाठी एक ऐतिहासिक लाठी है, अन्य हज़ारों लाठियों से भिन्न। पेन्शनरों के बीच धन बहादुर हीरो है हीरो। उसके जैसा, कौतुक जोड़कर, बातें कोई भी नहीं कर सकता। उसकी बोलने की भंगिमा भी अनुकरणीय है। ट्रेज़री में पहुँचते ही पेन्शनर उसे अभिवादन करते हैं। धन बहादुर पेन्शन लेकर जब लौटता है तो सबकी आँखें उसकी अहिबोधन्य साँप जैसी लाठी पर होती हैं। सच बात तो यह है कि यह लाठी

धन बहादुर बिना नहीं चल सकती और न धन बहादुर ही लाठी बिना चल सकता है।

यह लाठी इंडिगटन गिलास कारखाने के मालिक इंडिगटन साहब ने ही दार्जिलिंग के दौरे के समय फ़ादर सबुल को उपहार के रूप में दी थी, धन बहादुर का कहना है। जब वह अड़तीस साल का था तो उसके सबसे बड़े बेटे का जन्म हुआ था। तब यही लाठी लेकर ऊपर अस्पताल में प्रसूता को देखने गया था। मज़े की बात है - इंडिगटन साहब की लाठी कहाँ है यह? एकबार इंडिगटन कलकत्ता की लाट मेम को मुँह दिखाने वाला आईना भेंट करने कलकत्ता गया था तो उसे लँगड़ाकर चलते देखकर लाट मेम ने यह लाठी प्रेजेन्ट की थी। यह लाट साहब की भी अपनी ही लाठी थोड़े ही थी। जब वे इंग्लैंड से कलकत्ता आये थे तो उनसे पहले वाले लाट साहब की कोठी में पड़ी हुई मिली थी यह लाठी।

धन बहादुर सदा ही ट्रेज़री की लम्बी बेंच पर बैठकर अपनी और लाठी की कहानी सुनाता ही है। वह कहता है—जब वह युवक था तो माउन्ट हर्मन स्कूल की सुन्दर-सुन्दर छात्राएँ उसके रूप को देखकर दंग होती थीं। ऊँची श्रेणी में पढ़ रही एक सुन्दरी छात्रा ने तो उसको भगाकर इंग्लैंड ले जाने का भी प्रस्ताव किया था। जब वह मस्त तरुण हुआ तो उसे देखकर विदेशी युवतियाँ उसकी ग्रीक पुराण के किसी देवमुनि के साथ तुलना करती थीं। एक युवती तो उसे 'अपोलो' सम्बोधन करके बुलाती थी। मूंछ की काली रेखाएँ उभरना शुरू होते समय भी उसे अशेष अकृतिम स्नेह मिला था युवतियों से। सुन्दर-सुन्दर युवतियाँ मक्खी की तरह उसके आस-पास मंडराती थीं। ये सब थीं धन बहादुर की बातें—पेन्शनरों को लाठी की ओर आकृष्ट करने की कला।

कहते हैं—भूतपूर्व लाट भी यह लाठी विलायत से लाया था। लंदन में रहते समय किसी यहूदी व्यवसायी ने ठेकेदारी का काम दिलाने की ख़ुशी में लाट साहब को यह लाठी उपहार में दी थी। उस यहूदी को भी यह लाठी अक्तूबर विप्लव में मारको के जार युवराज के साथ भागकर आये एक वृद्ध यहूदी से मिली थी, कहा जाता है। गौर करने की बात यह भी है कि लाठी के एक कोने में छोटे-छोटे उकेरे हुए अक्षरों में 'जी. डब्ल्यू. गोथे-१७६०' लिखा हुआ है। इससे यह साबित होता है कि इस लाठी का उपयोग निश्चय ही जर्मन के प्रख्यात कवि गोथे ने भी किया था। गोथे की लाठी कहकर ही इंडिगटन साहब ने जर्मन फ़ादर सबुल को यह लाठी दी थी।

धन बहादुर लाठी हर वक़्त साथ ही रखता है। कहीं भी जाता है तो साथ ही लेकर चलता है। रूसी अक्तूबर विप्लव की कथा, सेन्ट पिटर्सबर्ग से प्रकाशित प्रावदा की कथा, हावड़ा का इंडिगटन गिलास कारखाना जहाँ दो वर्षों से लॉक-आउट चल रहा है की कथा—लाठी की देखी हुई हैं। दूसरे विश्वयुद्ध की दुखान्त घटनाएँ भी धन बहादुर की लाठी ने देखी हैं। धन बहादुर के जीवन में और उसके परिवार में आए सुख-दुःख, कष्ट-पीर, दर्द-खुशी सब लाठी देख चुकी है।

अपनी कोई भी प्यारी वस्तु खो जाने के बाद उसका महत्व और बढ़ जाता है। एक क्षण आगे लाठी धन बहादुर के हाथ में थी, अभी नहीं है। लाठी के न होने पर लाठी के साथ बीते सुख-दुःख की कथाएँ एकबारगी फ़्लैश बैक हो, आती रहती हैं। सेवक रोड के एक बुक-स्टाल में लाठी सँभालते हुए रखकर, धन बहादुर पत्रिकाएँ देख रहा था। एक पत्रिका में विचित्र रचनाएँ थीं। चश्मा उतारकर वह रचना पढ़ने में लीन हुआ।···संसार में लम्बी उमर तक जीवित मनुष्य··· वह पढ़ता ही गया।···संसार में सबसे ज्याद दीर्घजीवी मनुष्य था तिब्बत का युँग गियान—वह

२५२ वर्ष की उम्र में मरा था। मोम्पू नामक २४२ वर्ष की उम्र का जापानी कृषक, गाँव में बने नये पुल का उद्घाटन करने के लिए २०० वर्षीय बेटे को साथ लेकर गया था। इंग्लैंड का थामस कोर्न २०७ वर्ष जिया था। सोवियत यूनियन के सिरालो मिसमिलम का १६८ वर्षीय बूढ़ा सामेद आकुतालेम ईरान में अभी भी जीवित है। धन बहादुर को बहुत मज़ा लगा। पत्रिका खरीदकर जब वह अपनी लाठी पकड़ने लगा तो चकित हुआ—लाठी गायब थी। पागल की तरह वह इधर-उधर खोजने लगा, लेकिन उसे निराशा ही हाथ लगी। उसकी चिर संगिनी लाठी का उससे अलग होना वह बरदाश्त नहीं कर पा रहा था। आख़िर वह करता क्या? चुपचाप निराश होकर घर लौट आया।

घर में लाठी खो जाने की ख़बर सुनकर सब दुखित हुए। छोटे बेटे चन्द्र शमशेर ने पिता जी के पास बैठकर संवेदना जताते हुए कहा, "अब दु:ख नहीं मानिए, आख़िर खो ही जाना था, इसलिए तो खो गयी, मैं खो जाऊँगा, आप भी खो जाएँगे···यह घर भी खो जाएगा··· आपकी बहू खो जाएगी – माँ जिस तरह खो गयी·· महानदी में एक दिन धुएँ के साथ हम सब खो जाएँगे। इसलिए खाना खाइए। इस तरह कितने दिन चलेगा?"

धन बहादुर का मन विचलित और दुखित ही था। बेटे की ओर आँसू भरी आँखों से देखकर उसने होंठ चलाए, लेकिन चन्द्र ने कुछ भी नहीं सुना। आज धन बहादुर अँधेरे कमरे में सोने की चेष्टा कर रहा था। सदा की तरह रामायण पढ़ना छोड़कर उसने क़िताब भी लपेटकर ऊपर ताख में रखी। रामायण रखने के बाद वह अकेले कुछ बोलता ही गया—"ये देवता··· और शास्त्र—सब बकवास मात्र हैं···तीर्थ जाओ···व्रत रखो– सब खराबी ही है। ये सब झूठे हैं—सब झूठ।"

धन बहादुर ने एकाएक खुद को एक अपराधी जैसा महसूस किया। उसने करवट ली। उसे ऐसा लगा – दाढ़ीवाला फ़ादर सबुल उससे लाठी माँगने आया है। उसकी आँखों में अभी सैकड़ों लाठियाँ साँप बनकर डसने आ रही हैं। धन्य है, वह एक घर के ऊपर चढ़कर ही बचा। उसकी प्यारी-सी लाठी शेष नाग बनकर स्वर्ग की ओर उड़ रही थी।

बाप बेटे दोनों ने ही थाने जाकर लाठी खोने की रपट भी लिखाई थी। बहुत दिन हुए, लाठी हाथ नहीं लगी। लाठी खोने की चिन्ता में धन बहादुर बीमार हो गया।

"सब कुछ, एक दिन खो जाता है।" मन ही मन कहता है वह, "लेकिन लाठी मेरे खोने तक तो मेरे हाथ में ही होनी चाहिए।"

जैसे भी हो, आख़िर लाठी मिल गयी। थाने जाकर वह अपनी लाठी ले आया। लाठी पाने के बाद भी धन बहादुर ने धन बहादुर को नहीं पाया। वह क्षीण होता गया।

एक दिन एक पारसी साहब धन बहादुर को खोजते-खोजते आए। सुबह धूप में धन बहादुर शरीर गर्म कर रहा था। गाँव वाले सब चकित हुए—धन बहादुर के घर में एक साहब आया है। कानों-कान यह ख़बर भी फैल गयी कि साहब धन बहादुर की लाठी ख़रीदने आया है।

"कहाँ से पता लगाया उस साहब ने?"

"धन बहादुर की लाठी तो एक ऐतिहासिक अजूबा है।"

"क्या है वह अजूबा?"

ऐसी बातें खूब होने लगी गाँव में। अजीब-सा हो-हल्ला मच गया। उस साहब ने लाठी की कीमत एक लाख दी, लेकिन धन बहादुर है कि बेचना ही नहीं चाहता। उसके दोनों बेटे

आधी रात तक पिता जी को राजी करने की कोशिश में लगे रहे। कलकत्ता से पिता जी को देखने आई बेटी भी लौट न सकी। सब लाठी बिक्री करना चाहते थे। बेटी ने भी पिता जी को खूब समझाया, लेकिन पिता जी अपनी बात पर अडिग ही रहे। दोनों बहुएँ अपने-अपने पति को हर तरह से रिझाने लगी थीं। सुबह मिर्च-मसाला पीसते समय भी एक लाख को दो भाग करके अपनी-अपनी वस्तुएँ खरीदने लगी थीं। लेकिन धनबहादुर थोड़ा भी नहीं हिला। आख़िर साहब भी हार कर बेटों के कान में कुछ कहकर चला गया।

इस बार धन बहादुर पेन्शन लेने ट्रेज़री नहीं जा सका। सुबह छोटी बहू जब चाय देने गयी थी तो वह बड़ी मुश्किल से साँस ले रहा था, बोल नहीं पा रहा था। चन्द्र शमशेर घबराकर डाक्टर लाने को तैयार हुआ तो इशारे से बेटे को बुलाकर, कान में उसने कहा, "अब···डाक्टर ···मत···लाओ···अच्छा···होगा एक···वकील बुला···दो।"

वकील आया। कमरे से सब बाहर निकले। वकील से धन बहादुर की लम्बी बातचीत हुई। धन बहादुर ने सम्पत्ति के बटवारे का कागज लिखाया था – घर-ज़मीन और बैंक में जमा पैसा दोनों बेटों और एक बेटी के नाम।···लाठी के बारे में सब की विशेष उत्सुकता थी। वकील ने बताया, "आप लोग अफ़सोस न करें, उन्होंने अपनी लाठी अपने संग चिता में जलाने के लिए आग्रह किया है।

दोनों बेटे गुस्से में दनदनाते हुए कमरे में घुसे। लेकिन पिता ने उनके पहले ही संसार त्याग दिया था। लाठी, खाट से गिरकर ज़मीन में पड़ी थी।

नेपाली से अनूदित : बिर्ख खड़का डुवर्सेली

निर्णय

□ इन्द्रा वासवाणी

रिटायर होने पर सुन्दरदास बहुत प्रसन्न था। जब वह नौकरी में था तो उसने सरकार से सस्ता प्लॉट लेकर, कुछ अपनी जमा-पूंजी तथा कुछ सरकारी कर्ज़ लेकर अपना मकान बनवा लिया था। वह सोचने लगा—अच्छा हुआ जो अपना मकान बनवा लिया, कर्ज़ की किस्तें भी धीरे-धीरे भर दीं। नहीं तो आज अगर मकान बनवाता तो दुगने पैसे लगते। ग्रैच्युटी, जी. पी. एफ. मिलाकर डेढ़ लाख भी मिल गए और हर माह बारह सौ रुपया पेन्शन भी मिलेगी। बस, आनन्द से समय बीतेगा। अब सरकार की तरफ़ से आरम्भ की गई कर्मचारियों के लिए नई-नई योजनाओं से कर्मचारियों को बहुत लाभ है। फैमिली पेन्शन तो मानो वरदान-सी है। नहीं तो आज जैसा समय है, बेटों और बहुओं का क्या विश्वास ! पर फिर भी कृपा है भगवान की कि मेरा सुरेश सुपात्र है, उसकी बहू जया भी सुशील है।

फिर कोई विचार आते ही वह अँगुलियों पर कुछ गिनने लगता है—बहुत है, बेटियाँ दोनों विवाहित हैं उनकी कोई चिन्ता नहीं है। कभी-कभी बार-त्यौहार या कभी एक-दो माह रहने आएँगी तो भी कोई कठिनाई नहीं होगी। वेतन तो आधे से भी कम हो गया है पर बैंक में जमा धन पर जो ब्याज मिलेगा उससे कमी पूर्ति होती रहेगी। पेन्शन के बारह सौ में से एक हज़ार सुरेश को दूंगा। हम दोनों पर हज़ार रुपये से अधिक खर्च थोड़े ही होगा।

मन में कोई नया विचार आते ही वह प्रसन्न होने लगता है— आते महीने शीला को

साथ लेकर हरिद्वार हो आऊँ। बहुत समय से उसका मन है। शीला भी क्या याद करेगी कि पति के साथ गंगा स्नान कर आई। और अपनी पत्नी को आवाज़ देता है—"शीला, ओ शीला, यहाँ आना तो।"

शीला बाहर बैठी सब्ज़ियाँ काट रही थी, वहीं से कहा—"काम पूरा करके आ रही हूँ।"

बहू जया को, यूँ आवाज़ पर आवाज़ लगाना अच्छा नहीं लगता। जब से बाबूजी रिटायर हुए हैं तब से अम्माँ को पास बैठाए बस बातें करते रहते हैं। नौकरी पर जाते थे तो अम्माँ घर का काम काज तो अच्छी तरह करती थीं। इस बुढ़ापे में बाबूजी को अम्माँ के साथ बातें करने में आनन्द आता है।

शीला अन्दर गई और तुरन्त ही लौट आई। हँसते-हँसते जया से कहा—"बहू, बाबूजी मुझे हरिद्वार ले जा रहे हैं, गंगा स्नान कराने।"

जया ने कोई उत्तर नहीं दिया।

शीला ने कनखी से देखा कि बात सुनकर जया का मुँह उतर गया है। शीला ने कुछ कहा तो नहीं पर वह समझ गई कि माह दो माह वह नहीं होगी तो घर का सारा काम जया को ही करना पड़ेगा। बच्चों के साथ दिन भर घर में रहना होगा। वैसे उसे शीला से बहुत मदद है। आधे से अधिक काम तो शीला ही निपटाती है। सब्ज़ियाँ काटना, अन्न और दालें साफ़ करना, फटे-पुराने को टाँका लगाना, बच्चों को स्कूल छोड़ने जाना, कभी अगर बरतन साफ़ करने वाली नहीं आए तो उसमें मदद करना आदि।

रात को खाना खाते समय सुरेश ने पूछा—"बाबूजी, आप अम्माँ को हरिद्वार ले जा रहे हैं क्या?"

शीला ने जया की तरफ़ देखा जो सिर झुकाए खाना खा रही थी।

सुन्दरदास ने कहा—"हाँ, तुम्हारी माँ की बरसों से तीरथ करने की इच्छा थी। अब मैं फ़ुरसत में हूँ तो उसे एक-दो माह घुमा आऊँ।"

"एक-दो माह?" सुरेश आश्चर्य से मानो चिल्लाया—"दो माह हरिद्वार में रहकर क्या करेंगे?"

"हरिद्वार में तो पन्द्रह एक दिन रहेंगे। कुछ दिन दिल्ली में तुम्हारी मौसी के यहाँ ठहरेंगे। शीला की बहुत इच्छा है अपनी बहन से मिलने की। वैसे भी दिल्ली तो रास्ते में ही है। फिर सोचता हूँ उसे आगरा भी दिखा लाऊँ! ताज़महल भी तो देख ले या नहीं?" सुन्दरदास ने हँसते-हँसते फिर कहा—"और फिर निकले हैं तो जयपुर अजमेर भी सब रिश्तेदारों से मिल आएँगे। वैसे भी जीवन का क्या भरोसा है!"

"फिर तो ख़र्चा भी अच्छा-खासा हो जाएगा?" सुरेश ने कहा।

"हाँ ख़र्च तो होगा ही। पर अभी तो पैसे मिले हैं, चार-पाँच हज़ार ख़र्च हो भी गए तो कोई बात नहीं।" सुन्दरदास मुस्कराने लगा।

जया ने यूँ घूरकर देखा मानो सारा ख़र्च उसे ही देना पड़ेगा। उसने कुछ सम्भलकर कहा—"पर मुझे भी तो कठिनाई होगी।"

"बेटे, तुम भी तो हर बरस महीना दो महीना मैके जाती हो घूमने, कि नहीं। उस समय शीला भी तो अकेली घर सम्भालती है। अब तुम घर सम्भालोगी तो शीला घूम आएगी।"

जया को यह उत्तर अच्छा नहीं लगा।

उसके बाद जया का मुँह सदा ही चढ़ा रहता था। सब्ज़ियाँ उठाकर खुद ही काटने बैठ जाती थी या शीला से कहती—"अम्माँ, आप अन्न और दालें भले ही साफ़ न करें मैं कर लूँगी।"

शीला कहती—"जया बेटे, मैं कोई सदा के लिए तो जा नहीं रही, अभी तो जाने में भी दस दिन पड़े हैं। तुम्हें सब कुछ साफ़ करके दे जाती हूँ, कठिनाई कम होगी।"

पर जया का मूड सदा बिगड़ा हुआ ही रहता था।

दो चार दिन बाद शाम के समय सब चाय पी रहे थे कि सुरेश ने पिता से कहा, "बाबूजी, इस मक़ान के ऊपर एक मन्ज़िल बनवा लें तो कैसा रहेगा?"

सुन्दरदास आश्चर्य से बेटे की तरफ़ देखने लगा और कहा—"मैं तुम्हारी बात समझा नहीं, ऊपर मन्ज़िल बनवाकर क्या करेंगे? नीचे चार कमरे हैं, एक तुम दोनों के लिए, एक हम दोनों के लिए, एक बच्चों के लिए और एक ड्राईंग-रूम।"

"हाँ, पर कभी कोई मेहमान आ जाता है या रेखा और रंजना ही बच्चों के साथ···।"

सुरेश आगे कुछ कह ही रहा था कि सुन्दरदास ने बीच में ही उसकी बात काटते हुए कहा, "सुरेश, इससे पहले तो केवल दो कमरों वाले मक़ान में रहते थे, तब तो तुम्हें मक़ान तंग नहीं लगता था। आज तुम्हारा हृदय इतना सिकुड़ क्यों गया है? और ऊपर मक़ान बनवाकर करेंगे भी क्या? उसके लिए भी पैसे चाहिएँ।"

"आपको पैसे मिले तो हैं। पचास हज़ार में दो कमरे, छोटा-सा रसोई घर और बाथ-रूम, लैट्रिन बन जाएँगे। फिर वह किराए पर दे दिया जाए तो पाँच-सात सौ रुपये तो किराया ही आने लगेगा।"

सुन्दरदास ने चिढ़कर कहा—"भाई, मुझे किराया-विराया नहीं चाहिए। कौन ऐसे झंझटों में फँसे। एक बार मक़ान में किराएदार बैठा सो बैठा, यानी फिर मक़ान उनका।"

जया उठकर चली गई। शीला कुछ उदास हो गई।

सुन्दरदास आराम कुर्सी पर हाथ रखकर आसमान की तरफ़ देखने लगा। थोड़ी देर बाद सुरेश भी उठकर चला गया।

बच्चों का दादा-दादी से बहुत प्यार था। जिस दिन सुन्दरदास और शीला जाने की तैयारी कर रहे थे तो बच्चों ने भी साथ जाने की ज़िद्द पकड़ ली। उन्हें बहुत सारे खिलौने और बढ़िया-बढ़िया वस्तुएँ लाकर देने का लालच देकर शांत किया गया। परन्तु फिर 'टा टा' करते समय बच्चे बहुत रोने लगे। शीला की आँखें भी भर आईं तो सुन्दरदास का मन भी भर आया।

ट्रेन में जब तक सुन्दरदास को नींद नहीं आई तब तक वह यही सोचता रहा कि—छोटे बच्चे कितने अबोध होते हैं और बड़े होने पर कितने स्वार्थी बन जाते हैं। पर यह सब ऐसा ही होता है शायद। यद्यपि वह स्वयं ऐसा नहीं था। उसने स्वयं तो कभी भी अपने पिता से पैसों के विषय में नहीं पूछा था। वे चार भाई और एक बहन थे। वह सब में बड़ा था। जब पिता का स्वर्गवास हुआ तो सब कुछ उसके ही अधिकार में था। उसने अपनी माँ की राय से जायदाद को पूरे हिस्सों में बाँटकर सबको अपना-अपना हिस्सा दे दिया था। किसी भी भाई के मुह पर असन्तोष की रेखा नहीं थी। उसके बाद माँ तो सबकी माँ थी, यद्यपि वह अधिकांश अपने बड़े बेटे सुन्दरदास के पास ही रहती थी। फिर माँ के देहान्त के बाद भी उसका छोड़ा हुआ धन और सोना भी उसने भाईयों और बहन को बाँट दिया था। सुरेश उसका इकलौता बेटा है, अकेला उत्तराधिकारी! तब भी सुरेश और उसकी पत्नी जया के रंग-ढंग देखकर उसे लगता है कि उसके

जीते जी ही वे उससे जायदाद···। वह सोने का प्रयास करता है !

हरिद्वार घूमने का आनन्द भी घट गया था। वहाँ भी घूमते-फिरते। शीला और सुन्दरदास के बीच यही बातें होती रहती थीं। जैसे कोई काँटा, नहीं तो, एक फाँस-सी उनके हृदय में चुभती रहती थी। सुन्दरदास समझदार व्यक्ति था। उसने धीरे-धीरे शीला को समझाना आरम्भ किया कि—"जैसा समय है, हमें भी वैसे ही चलना चाहिए। नहीं तो हमारा बुढ़ापा तो दुखी होगा ही, बच्चों का भी आनन्द जाता रहेगा। बहू जया शायद ऐसा समझने लगी है कि अब हम उन लोगों पर बोझ हैं। वैसे मैं पूरा वेतन ही उन्हें देता था और हम पर उनका कम ही ख़र्च होता था। अब हम उन्हें कुछ कम देंगे और शायद उन्हें हम पर अधिक ख़र्चना पड़ेगा।"

शीला ने कहा—"पर हम दोनों पर कोई हज़ार रुपया थोड़े ही ख़र्च होगा? उसमें भी कुछ बचेगा ही। नहीं तो अब हमारी देखभाल करना क्या उनका कर्तव्य···।"

सुन्दरलाल ने बीच में ही टोका—"नहीं शीला, आज के समय में ऐसा नहीं चलेगा। जब मुझे पेन्शन मिलती है तो मेरा भी कर्तव्य है कि मैं बच्चों की सहायता करूँ। नहीं तो हमारा एक कौड़ी भर का भी आदर नहीं होगा।"

"पर सुरेश को जया ने ही बिगाड़ा है।" शीला ने कहा।

सुन्दरदास ने कुछ कड़ककर कहा—"सुरेश को अपनी समझ नहीं है क्या जो पत्नी के कहे अनुसार चलता है? जया वैसे ऐसी नहीं थी, बस ज्यों ही हमारी हरिद्वार जाने की बात सुनी, तो व्यवहार ही बदल गया! चार-पाँच हज़ार ख़र्च हो भी गए तो क्या, मैं ही तो कर रहा हूँ!"

"उनके लिए भी तो कुछ उपहार ले चलेंगे। वह खुद जब पीहर जाती है तब कैसे हम उसे बहुत से रुपये देकर भेजते हैं, ताकि उसका हाथ तंग न हो!" शीला ने कहा।

दिल्ली में रिश्तेदारों से मिलने-जुलने में खूब आनन्द आया। फिर आगरा घूमे।

जयपुर में सुन्दरदास ने अपनी पत्नी से कहा, "शीला! मैंने एक निर्णय किया है। तुम माँ हो इसलिए शायद अच्छा न लगे। पर आज के समय को देखते हुए मैं चाहता हूँ कि अब हम बच्चों से अलग रहना शुरू करें। तुम काम-काज के लिए कोई नौकरानी रख लेना। कम से कम मन की शान्ति तो रहेगी। यूँ तो रोज़ की खटपट अन्दर ही अन्दर मन को जलाकर राख कर देगी। हमारा बुढ़ापा क्यों ख़राब हो?"

शीला ने कुछ दुःखी होकर कहा—"पर लोग क्या कहेंगे?"

"देखो शीला, घर में खटपट होगी और झगड़े होंगे तब भी लोग निंदा करेंगे और प्रतिदिन करते रहेंगे। इससे अच्छा है एक बार कह लेंगे जो उन्हें कहना होगा।" सुन्दरदास ने समझाते हुए कहा।

शीला ने कहा, "पर हम दूसरा मक़ान कहाँ से लाएँगे?"

"मक़ान मेरा है। सुरेश को अलग मक़ान चाहिए, तो वह अपना अलग से किराए पर ले सकता है।" सुन्दरदास ने कहा—"अगर नहीं तो इसी मक़ान में एक छोटा-सा रसोईघर, बाथरूम, लैट्रिन बनवा लेंगे। यह थोड़ा-बहुत ख़र्च हमें करना पड़ेगा। फिर दो कमरे वे रखें और दो हम। यह सब इतना महँगा नहीं पड़ेगा जितना कि टूटते रिश्ते!"

स्टेशन पर लेने के लिए सुरेश आया। घर पहुँचे तो दरवाज़े पर जया खड़ी नहीं मिली, घन्टी सुनकर उसने आकर दरवाज़ा खोला। शीला ने आगे बढ़कर उसे बाँहों में भर लिया। सुन्दरदास ने सिर पर हाथ रखकर आशीष दिया।

"बच्चे कहाँ हैं ?" शीला ने इधर-उधर दृष्टि दौड़ाते हुए पूछा।

"स्कूल गए हैं।" जया ने कहा।

"आज ना ही भेजती उन्हें स्कूल बहू !" शीला ने कहा।

सुरेश ने बताया—"हमने उन्हें बताया नहीं था कि आज आप लोग आनेवाले हैं, नहीं तो ज़िद्द करके बैठ जाते। आज शनिवार है, बस, आने वाले ही होंगे।"

जया ने कहा—"हाँ, बेकार स्कूल से क्यों नागा करें !"

शीला ने पूछा—"हमें याद करते थे कभी ?"

"हाँ, रोज़ पूछते थे।" सुरेश ने शीघ्रता से कहा, "दादाजी, दादीजी कब वापस आएँगे ?"

जया ने कहा, "कोई विशेष नहीं, एक-दो बार ही पूछा था।"

बच्चे जब स्कूल से लौटे और अपने दादा-दादी को आया देखा तो दौड़ते हुए आकर उनसे लिपट गए। दादा-दादी तो उन पर बलिहारी जा रहे थे। उन्हें खिलौने और खाने-पीने की वस्तुएँ निकाल-निकालकर देने लगे...।

"यह मैं लूँगा...।"

"यह गुड़िया मेरी है...।"

बच्चे खिलौने और वस्तुएँ देखकर उछलने लगे।

जया ने उन्हें इस प्रकार उछलता और शोर मचाते हुए देखा तो उन्हें डाँटते हुए कहा—"इस तरह क्यों भूखों की तरह छीना-झपटी कर रहे हो, क्या कभी कुछ देखा ही नहीं ?"

शीला का मुँह उतर गया, वह कुछ उदास हो गई। उसने बैग में से तीन साड़ियाँ निकाल कर जया को देते हुए कहा, "इनमें से जो साड़ी तुम्हें पसन्द हो बहू, वह तुम रख लो, बाकी दोनों रेखा और रंजना के लिए हैं।"

जया ने रुखाई से कहा—"क्यों बेकार ख़र्चा किया, मेरे पास तो बहुत साड़ियाँ हैं।"

शीला ने प्यार से कहा—"बेटे ! हम पहली बार तो तीरथ करके आए हैं, बच्चों के लिए कुछ नहीं लाते क्या ?" और बाकी सामान भी निकालकर जया को दिया, "सुरेश, बेटे यह पैन्ट पीस तुम्हारे लिए है।" सुरेश को कपड़ा देते हुए माँ ने कहा।

सुरेश ने प्रसन्नता से पीस ले लिया।

दिन भर बातें होती रहीं।

दूसरे दिन सवेरे नाश्ता करते हुए सुन्दरदास ने सुरेश से कहा—"सुरेश, हम कल से अलग रहेंगे। मक़ान में चार कमरे हैं, दो तुम लोगों के लिए और दो हमारे लिए। जया बहू, कल से हमारे लिए खाना-वाना बनाने का कष्ट मत करना, मैं आज ही सीधा-सामान ले आता हूँ।"

सुरेश और जया अवाक् उनकी तरफ़ देखते रहे। उस समय तो वे कुछ नहीं बोले पर शाम को चाय पीते समय सुरेश ने कहा—"बाबूजी, आप अलग हो रहे हैं तो दो कमरे तो हम लोगों के लिए कम होंगे।" और हिचकते-हिचकते कहा, "और फिर आपकी ज़ायदाद पर...।"

सुन्दरदास ने बीच में ही बोलकर, वाक्य को पूरा करते हुए कहा, "तुम्हारा भी अधिकार है। सुरेश, यह तुम्हारा वाक्य सुनकर शायद किन्हीं पिताओं की हृदयगति रुक जाती। पर भाई, तुम्हें अगर अधिकार याद आया है, तो क्या कर्तव्य भी याद है ?"

शीला को यह सब सुनकर बहुत दुःख हुआ, उसने क्रोधित होते हुए कहा—"जया ने तुम्हें

ऐसी पट्टी पढ़ाई है कि तुम्हें और कुछ सूझता ही नहीं !"

जया ने झट से कमरे से निकलकर कहा, "मुझे क्यों दोष देते हैं ?"

सुन्दरदास ने शान्त स्वर में कहा—"तुम अपने मन को शान्त रखो सुरेश की माँ।" और सुरेश से कहा—"मेरी जायदाद पर अधिकार, मेरे मरने के बाद तुम्हारी माँ का होगा। तुम्हें मक़ान की आवश्यकता है तो तुम भले ही दूसरा मक़ान देख लो।"

सुरेश शा त हो गया। जया आश्चर्यचकित होती हुई सुरेश की तरफ़ देखने लगी।

रात के खाने के समय किसी ने किसी से कोई बात नहीं की।

रात को बहुत देर तक शीला सो न सकी, करवटें बदलती रही। सुन्दरदास ने कहा, "सो जाओ शीला, चिन्ता क्यों करती हो, समय देखकर क़दम बढ़ाएँगे।"

शीला ने कहा—"सुरेश के कमरे से जया और उसकी खुसर-फुसर-सी सुनाई दे रही है।"

सुन्दरदास ने कहा—"पता चलेगा जब चार-पाँच सौ रुपये किराया भरेंगे।"

दूसरे दिन सवेरे चाय पीकर, सुन्दरदास सामान खरीदकर लाने के लिए थैलियाँ लेकर ज्यों ही घर से निकल रहा था कि सुरेश आकर अपने पिता के सामने खड़ा हो गया। उसका मुँह उतरा हुआ था। वह कुछ बोल नहीं पा रहा था। सुन्दरदास ने पूछा, "कुछ कहना है क्या ?"

"जया कहती है कि आप अलग न हों।" सुरेश ने बड़ी कठिनाई से कहा।

सुन्दरदास ने गुस्से होकर कहा, 'आजकल जो कुछ कहती है, सो जया ही कहती है और तुम वही हमें कहकर सुनाते हो ! तुम्हें कुछ कहना नहीं आता क्या ?"

जया ने कमरे से बाहर आते हुए कहा, 'बाबूजी, हमें माफ़ कर दीजिए।"

सुन्दरदास ने कहा, "बहू ! यह कोई हिन्दुस्तानी फ़िल्म की कहानी नहीं, जहाँ बहू-बेटे ने माफ़ी माँगी कि खेल ख़त्म हो गया। हमारे परिवार का खेल तो अब शुरू होना है। तुम लोगों को रहना हो तो भले ही दो कमरों में रहो। हम अपना छोटा-सा रसोईघर और बाथरूम-लैट्रिन अलग से बनवा लेंगे। पर जया बहू ! तुम एक अच्छी बहू साबित नहीं हुई। पैसे के लालच ने तुम्हारा मन बदल दिया, और एक बार मन में गाँठ बन गई तो वह खुलती नहीं। वैसे हमारे देहान्त के बाद सारी जायदाद तुम लोगों को मिलती, पर अब, अब तुम लोगों ने अधिकार की बात कही है तो यह अधिकार सबको मिलेगा। हम दोनों के देहान्त के बाद जितना हिस्सा जायदाद में सुरेश का होगा उतना-उतना इसकी दोनों बहनों का भी होगा। हाँ, कुछ हिस्सा मैं अपने पोते-पोती को भी दूँगा। सुरेश, तुम मजदूर बुलवा लो और अपना सामान उठवाकर अपने दोनों कमरों में रखवा लो। हम दूसरा सामान ले आएँगे। सामान का मैं कोई बँटवारा नहीं करूँगा।" हँसते-हँसते सुन्दरदास ने वातावरण को हल्का करने का प्रयास करते हुए कहा—"पर मेरा निर्णय अटल है।"

सिंधी से अनूदित : राधाकिशन चाँदवाणी

रेगिस्तान का जहाज़

□ नरेंद्र नागदेव

पंचतंत्र की एक कहानी है किसी समय एक रेगिस्तान में एक ऊँट हुआ करता था।

रेगिस्तान होता क्या है ?

अथाह प्यास के बीच एक बूंद जल की खोज ?

अनन्त भटकाव के बीच दो गज आश्रय की चाह ?

असहनीय ताप के बीच हवा के एक शीतल झोंके का इंतज़ार ?

गर्म, अतृप्त आंधियों के बीच एक पंखुड़ी सुख का सपना ?

…रामदीन ने ऐसा सोचा भी नहीं था कि कभी यही रेगिस्तान उसके मन के भीतर उग आएगा।

वही क्या, उसकी सात पीढ़ियों ने भी अपने-अपने बचपन में नहीं सोचा था। लेकिन होश सँभालने तक सभी उसमें जलने लगे थे। यह तो उन बीस कच्चे घरों वाली बस्ती की तक़दीर ही थी, जिसे रोज़ गाँव के लोग अछूतों की बस्ती कहते थे।

दूर-दूर तक फैले खेतों और जंगलों के बीच एक सूनी-सी जगह पर चिपकी थी उसकी वह बस्ती, जिसकी कच्ची, गारे की दीवारें, महज ज़मीन की सतह पर पड़ी सलवटों-सी लगती थीं। धूल की पर्त्त से थोड़ा ऊपर सिर उठाकर साँस लेने की असफल कोशिश करती हुई टेढ़ी-मेढ़ी छतें थीं। और एक दहशत थी, जो धूल-भरी गलियों में साथ-साथ चलने लगती थी। उस

दहशत के बीच, बस्ती हर मौसम में काँपती-सी जान पड़ती थी।

वहाँ से दो पगडंडियाँ डरती-सहमती हुईं, दूर पर नज़र आते शेष गाँव तक जाती थीं। वह अमराई के किनारे बसा एक गाँव था, जिसकी सफ़ेद, खूबसूरत दीवारें कापी के कोरे काग़ज़ों सी चमकती थीं। उसकी बस्ती से, वह गाँव हमेशा दर्प के आवरण में लिपटा-सा लगता था—परी कथाओं की जादुई नगरी जैसा झिलमिल गाँव, जिसे सुबह-शाम किरणें अपने-अपने रंगों से सँवारती थीं।

"हमारी बस्ती से शेष गाँव इतनी दूर क्यों है?"— वह पिता से पूछता।

"इसलिए कि शाम को हमारी बस्ती की परछाइयाँ, लम्बी होकर भी उस गाँव पर नहीं पड़ सकें।"—पिता सोचते हुए बताता।

वह कुछ समझ नहीं पाता था।

आमों का मौसम आता और अमराई आमों के भार से जैसे झुकी पड़ती। एक ऐसी ही दोपहर को वह आमों के लिए मचल गया था। तब उसे यह भी समझ में नहीं आया था कि पिता उसकी इस ज़िद पर इतना डर क्यों गया था? पिता ने उसे लाख समझाया था कि बेटा, वे पेड़ उनके हैं। लेकिन वह नहीं माना था और अंततः उसकी ज़िद के आगे हार कर पिता एक पेड़ पर चढ़ गया था।

बस, सीधे-सीधे तो याददाश्त यहीं तक साथ देती है। इसके बाद सब डगमगा जाता है। कैसे उस दोपहर में फिर अँधेरा हो गया था, सूर्य कहाँ अस्त हो गया था—कुछ याद नहीं पड़ता।

यह भी समझ में नहीं आता कि पिता के चढ़ते समय तो आसपास कोई नहीं था, लेकिन फिर न जाने कहाँ से लाठियाँ घुमाती, ललकारती, गालियाँ बकती हुई भयावह आकृतियाँ कैसे प्रकट हो गई थीं!

वह थर-थर कांप रहा था। अमराई उसके आसपास झूले-सी घूम रही थी।

वे सब मिलकर पिता को पीटने लगे थे।

पिता की चीखें उनके शोर गुल में घुल-मिल गई थीं।

अब-जब यह हादसा याद आता है, तो पिता का चेहरा याद नहीं आता। सिर्फ़ अँधेरे में फटे कपड़े और खून के धब्बे उछलते चले जाते हैं।

सिर्फ़ आवाज़ें रह जाती हैं। फिर खून, फटे कपड़े और आवाज़ें सब गुम हो जाते हैं, सिर्फ़ अपनी बस्ती की ओर लौटती पगडंडी रह जाती है···जिस पर खून की एक साफ़ पतली धार कौंधती है।···काफ़ी देर बाद, ख़बर मिलने पर बस्ती के कुछ परिचित पहुँचे थे और पिता को टांग-टूंगकर वापिस घर ले आए थे।

या फिर एक आवारा, काला कुत्ता याददाश्त में उछलकर आ जाता है। उस रात उसे ओटले पर बहते पिता के खून की गंध आ गई थी। वह बार-बार वहाँ पहुँचने की कोशिश कर रहा था। वह उसे एक ओर से भगाता तो अँधेरे में दूसरी ओर से उसकी आँखें चमकने लगतीं।

···रामदीन को उस दिन पहली बार एहसास हुआ था, कि उसके भीतर एक रेगिस्तान पैदा हो गया है। वही अथाह प्यास, अनन्त भटकाव और असहनीय ताप वाला रेगिस्तान, जहाँ गर्म अतृप्त आँधियां रेत के टीलों को लगातार एक ओर से दूसरी ओर जमाती रहती हैं।

वक़्त के साथ यह रेगिस्तान बढ़ता ही चला गया था। उसके अग्निपंख चारों दिशाओं में फैलते ही जा रहे थे। और रामदीन सोचने लगा था कि और कोई रास्ता नहीं है। यही उसकी

नियति है। यहीं जीना है, यहीं साँस लेना है, यहीं चलना है।

और तब उसे एहसास हुआ था कि वह लम्बा हो गया है—ऊँट के जैसा। वह चलता भी वैसे ही है। उसके पंजे भी जलती रेत के आदी हो गए हैं। और वह उस जलती रेत पर एक धीमी रफ़्तार से चलता जा रहा है।

पंचतंत्र की कहानी आगे कहती है कि एक दिन जंगल के राजा शेर, अपने तीन अनुचरों के साथ उस ओर से गुज़र रहे थे। उन तीनों में से एक चीता था, दूसरा सियार था और तीसरा गिद्ध था। शेर की नज़र ऊँट पर पड़ी। उन्होंने उसे भी अपने साथ ले लिया।···

···रामदीन ऊँट ने भी एक दिन इलाके के मशहूर नेता शेर भाई को उस ओर से गुज़रते देखा। उनके साथ भी तीन आदमी थे। जिसमें एक चीते-सा, एक सियार सा, और एक गिद्ध-सा दिखता था।

शेर भाई की नज़र उस पर पड़ी। वे ठहर गए। उन्होंने गिद्ध को बुलाकर कुछ समझाया और उसे बुलाने के लिए उसके पास भेजा।

गिद्ध उड़ान भर कर कुछ ही समय में उसके सामने आ पहुँचा। भय की एक ठंडी सिहरन रामदीन की रगों में दौड़ गई। लेकिन कुछ ही देर में उसने पाया कि वह आक्रामक नहीं था। उसने आहिस्ता से पंखों को अपनी जगह जमाया, गर्दन को दो-एक बार स्नेह से घुमाया और आवाज़ में शहद घोलकर बोला—"इस अथाह रेगिस्तान में क्यों जल रहे हो रामदीन? हमारे नेता शेर भाई की नज़र अब तुम पर पड़ गयी है। वे तुम्हें अपने साथ ले जाना चाहते हैं। अब तुम्हारी क़िस्मत खुल गयी है। चलो, और उनके साथ रहकर अपनी ज़िंदगी को सफल बनाओ!"

ज़िंदगी का आश्वासन पाकर रामदीन की नसों में फिर रक्त प्रवाहित हुआ था। उसके मुँह से अस्पष्ट बोल फूटे···'लेकिन मैं तो शेर भाई से कभी मिला भी नहीं!"

गिद्ध ठहाका मारकर हँसा···"ज़िंदगी में मौके बार-बार नहीं आते रामदीन! आते भी हैं तो चेहरा ढँक कर आते हैं। उन्हें पहचानो और लपककर थाम लो!"—इतना कह कर गिद्ध ने गर्दन सीधी कर ली। आंखें भावपूर्ण मुद्रा में आकाश की ओर उठा लीं और बिलकुल संत बन गया।

रामदीन कुछ देर अनिश्चय की स्थिति में रहा। लेकिन अंत में मंत्र-मुग्ध सा उठकर गिद्ध के पीछे-पीछे चलने लगा। वे शीघ्र ही शेर भाई के पास पहुंच गए।

कैसा सुखद क्षण था जब वह शेर भाई के सामने खड़ा हुआ था। शेर भाई उसे पूर्ण पुरुष लगे थे—उदार, स्नेहमय, शक्तिशाली। उनकी एक ओर वह चीते-सा फुर्तीला आदमी बैठा था और दूसरी ओर वह सियार-सा चालाक आदमी।

शेर भाई ने उनसे उनका परिचय कराया।

"देखो रामदीन, ऐसा हुआ कि एक दिन हमने इस चीते जैसे आदमी से कहा कि तुम बहुत तेज़-तर्रार हो। आज से तुम हमारे अंगरक्षक हुए!"

"और इस सियार जैसे आदमी को कहा कि तुम तो बड़े बुद्धिमान हो। तुम आज से हमारे सलाहकार हुए।

और इस गिद्ध जैसे आदमी से कहा कि तुम तो हर जगह जैसे उड़कर पहुंच जाते हो। आज से तुम हमारे संदेश वाहक हुए।"

फिर वे रामदीन की ओर देखकर स्नेह से मुस्कराने लगे।

"मुझे क्या आदेश है। शेर भाई ?"—रामदीन ने नम्रता से पूछा।

"तुम्हें तो हम देखते ही चाहने लगे हैं। इसलिए तुम आज से हमारे दोस्त हुए !"—शेर भाई ने निर्णय दिया।

रामदीन तो गद्गद् हो गया।

फिर शेर भाई ने उसे गले लगाते हुए कहा—"देखो रामदीन भाई; तुम्हें तो पता ही है कि हम चुनाव लड़ रहे हैं। हम चाहते हैं कि दोस्त के नाते तुम अपने जैसे तमाम ऊँटों के वोट हमारे पक्ष में डलवाओ !"

रामदीन ने प्रतिज्ञा की थी।

वापिस लौटते हुए उसने यों ही पीछे मुड़कर देखा, तो पाया कि चीता, सियार और गिद्ध-से दिखने वाले वे तीनों आदमी उसे देखकर शरारत से मुस्करा रहे थे। उसने सिर झटक दिया। उसे इनसे क्या ? उसकी शेष ज़िंदगी तो अब शेर भाई के लिए है !

पंचतंत्र की कहानी के अनुसार, इस तरह ऊँट शेर के साथ रहने लगा। वह रात दिन उनकी सेवा करता और हर तरह के सुख-दुःख में उनका साथ देता।

···चुनाव बहुत करीब आ गया था। माहौल में बिजली-सी कौंध रही थी। रामदीन पर तो जैसे जुनून चढ़ गया था।

और कितनी सारी तो दीवारें थी। एक पर पोस्टर चिपकाता, तब तक दूसरी दीवार सामने आ जाती। सारे इलाके में बेशुमार दीवारें थीं। बैनर बाँधते-बाँधते रात गुज़र जाती। गाँवों के कच्चे रास्तों पर सायकिल उछलती, साँस धौंकनी-सी चलती। खड़-खड़ करती उसकी सायकिल झोंपडियों के बीच जा रुकती। फटी चटाइयों और टूटे दरवाज़ों के पीछे से सहमी आँखें उसे घूरतीं। मुरझाए चेहरों पर चिपकी भूख। व्याकुल साँसें। रामदीन एक क्षण को हड़बड़ा जाता। लेकिन तुरन्त ही सँभलकर शुरू हो जाता—'भाइयो और बहनों,···यह है शेर भाई का चिह्न···!"

उसे चीते, सियार और गिद्ध की हरकतें ठीक नहीं लगतीं, लेकिन बह उन्हें अनदेखा कर देता। कभी रास्ते में खाना खाने बैठता, तो वह गिद्ध-सा आदमी झपट्टा मारकर रोटी ले जाता। तकलीफ़ तब अधिक होती जब वे उसकी रोटी खाते भी नहीं, आसपास कहीं फैंक देते। और तिरस्कार-भरी नज़रों से उसे देखते रहते जैसे कह रहे हों कि मूर्ख, हम खाएँगे तेरी रोटी ?···

वह तिलमिला जाता।

अपने आपको नियंत्रित करने की कोशिश में व्यस्त हो जाता। गुस्सा दबाता। मुट्ठियाँ आप से आप भिचती। वह भूलना चाहता।

भूलने के लिए स्वयं को कामों में डुबो देता।···एक आम सभा करना है। लोगों को घर-घर से बुलाना है। दरियाँ कहाँ मिलेंगी ? माईक कब आएगा ? बिजली का कनेक्शन कहाँ से लेंगे ? सभा में शान्ति बनी रहे। जय-जयकार होती रहे।

या फिर ताँगे पर माईक लगाकर निकल जाता। शेर भाई के पोस्टर वाला ताँगा। गला सूखता जाता, लेकिन वह बोलता जाता— भाइयो और बहनों···

उसे शेर भाई के साथ प्रचार पर जाना अच्छा लगता। सुदूर इलाकों में सभाएँ होतीं।

उनकी तारीफ़ होती। भीड़ सम्मोहित होती। वे मंच से गरजते। ऊँटों की बस्ती में वे उसे विशेष रूप से ले जाते। उसके कंधे पर हाथ रखकर चलते। मंच पर अपने पास बैठाते।

बीच सभा में उन्हें प्यास लगती। लोग दौड़कर पानी लाते। वे इन्कार कर देते। माईक हाथ में लेकर कहते कि पानी पियूँगा। तो सिर्फ़ रामदीन के हाथ से।

वह निहाल हो जाता। अदब से पानी पेश करता। भीड़ नारे लगाती···शेर भाई··· ज़िन्दाबाद !

यही खाने के समय होता। वे तमाम स्वादिष्ट खानों को अलग करके कहते कि रामदीन, अपना खाना निकालो। हम तुम्हारे साथ खाएँगे। एकबार फिर उनके जयघोष से बस्ती फट पड़ने को होती।

वे उसका हाथ छू कर कहते—"अरे रामदीन, तुम्हें तो बुख़ार है !"

हाथ सचमुच जलता होता उसका। समूची देह जलती। थकान से चूर होता वह। लेकिन हिम्मत से उत्तर देता कि फ़िक्र मत करो शेर भाई; अभी इस देह में साँस है··· जिताकर रहेंगे आपको !

कोई बुख़ार रोक नहीं सकता था उसे !

··और अंत में शेर भाई जीत गए !

उसे महसूस हुआ था, जैसे वह स्वयं जीत गया हो। यह एकदम नया अनुभव था। जैसे अपनी अँधेरी दुनियाँ से, पंजों के बल खड़े होकर किसी दूसरी दुनियाँ में झाँक लिया हो !

उस दिन जीप में वह शेर भाई के साथ खड़ा था। वे अपने गले से फूलमालाएँ उतार कर उसे थमा रहे थे। वह जैसे फूलों के विमान में सैर कर रहा था।

वह ज़िन्दाबाद के नारों के साथ हवा में मुट्ठियाँ उछाल रहा था। बंद मुट्ठियों में विजय का बहुमूल्य क्षण था। उसे डर लग रहा था कि कहीं वह मुट्ठियों से फिसल न जाए !

चुनाव जीतने के साथ ही शेर भाई प्रभावशाली नेता बन गए थे—सत्ता के केंद्र के एकदम करीब।

उन्हीं के प्रभाव के अनुपात में रामदीन का प्रभाव भी बढ़ गया था। अब लोग अपने काम करवाने के लिए उसकी ओर याचना भरी नज़रों से देखते, जैसे सूखे के दिनों में ग़लती से भटक आए किसी बादल के टुकड़े को टकटकी लगाकर देख रहे हों।

यह बादल बन जाना एक सुखद अनुभूति थी। अब वह आकाश में उड़ सकता था।

सफलता की सीढ़ी पर इतने ऊपर चढ़ने के बाद एक दिन वह अपने गाँव गया।

वह एक भावनात्मक यात्रा थी, जिसमें पेड़-पत्ते उससे बातें कर रहे थे। फूल आभा बिखेर रहे थे। धूप में सुगंध थी और स्वयं उसकी पलकों पर भीगापन था।

उसे अपना बचपन याद आया था। बचपन कभी ख़त्म नहीं होता। वह अदृश्य होकर हवा की तरल पर्तों में समा जाता है। फिर ऐसे ही एक दिन आ कर थाम लेता है— समय की सीमाएँ लाँघ कर।

बच्चों ने घेर लिया था उसे। इस बार उनके चेहरों पर चमक थी। उन पर दहशत की वह पर्त नहीं थी, जिसे देखने का वह आदी था। पेड़ सिर ऊँचा करके खड़े थे। घर खुली हवा में साँस ले रहे थे।

दर्प की एक लहर उसे छूती हुई-सी निकल गई थी—रामदीन···यह सब तुम्हारी पोजिशन से संभव हुआ है !

उस दिन वह गाँव के झगड़े निपटा रहा था। उसकी ज़ुबान से न्याय झर रहा था। उसके फैसलों को बिना तर्क के स्वीकारा जा रहा था।

एक गरिमा के साथ वह गाँव में घूम रहा था। लोग उसे समस्याएँ बता रहे थे।

ज़रा कुएँ की हालत तो देखो रामदीन भाई, अब इसकी मरम्मत करवा दो—उन्होंने उसका ध्यान आकर्षित किया था। उसने कुएँ में झाँका था। उसे झुरझुरी हो आई थी, जैसे अपने अतीत में झाँक लिया हो···यहीं का पानी पीते हुए एक बार वह पकड़ा गया था और बेंतों से पिटा था!

हम इसे ठीक करवा देंगे—उसने आश्वस्त किया था।

ज़रा पाठशाला की हालत तो देखो रामदीन भाई, अब इस पर भी कुछ ध्यान दो—उन्होंने अगली समस्या पेश की? वह ठिठक गया था। हाँ, यहीं, इसी कमरे में बैठ कर वह पढ़ा था। उसे शेष बच्चों से अलग, एक कोने में बैठाया जाता था। शास्त्री जी दयालु थे। बच्चों को शिक्षा देते थे कि अन्न को जूठा छोड़ना पाप है। जूठा खाना फेंको मत। उसे रामदीन के सामने रख दो···।

उसने सिर झटक कर अतीत से बाहर आ जाना चाहा था। "हम यहाँ के कमरे पक्के करवा देंगे।"—उसने अपने गरिमामय वर्तमान में लौटते हुए कहा था। आज उसके साथ चल रही भीड़ में उसके उस समय के दूर बैठने वाले कुछ सहपाठी भी थे।

"रामदीन भाई, यहाँ एक छोटा अस्पताल खुलवा दो। रात-बेरात कोई बीमार हो, ज़ख्मी हो, तो सुबह का इंतज़ार करने के अलावा कोई चारा ही नहीं रहता।"— उन्होंने अगला प्रस्ताव रखा था।

अचानक उसकी याददाश्त ने उसे कई साल पहले की एक अँधेरी रात में धक्का दे दिया था, जिसमें उसका पिता ओटले पर रात भर कराहता रहा था।

"अच्छा – अच्छा, हम ज़रूर कुछ करेंगे!"—उसने सँभलने की कोशिश करते हुए कहा था।

फिर लोग उसके लिए आम ले आए थे। "कुछ नहीं, रामदीन भाई, अपनी ही अमराई के आम हैं।" उन्होंने कहा था।

वक़्त वहीं रुक गया था। चीज़ें धुआँ हो गई थीं। कुछ नहीं रह गया था आसपास। सिर्फ़ धुंध का पर्दा था। आम छूते हुए उसकी उँगलियाँ काँपने लगी थीं।···

पंचतंत्र की कहानी आगे बढ़ती है कि इसी तरह समय बीतता गया। और एक दिन शेर बूढ़ा हो गया। बुढ़ापे के कारण अब वह शिकार भी नहीं कर पाता था। अतः वह बहुत कमज़ोर हो गया।

चीते, सियार और गिद्ध ने तब उसे सलाह दी कि क्यों न इस ऊँट को खाकर आप अपनी भूख मिटा लेते···!

···शेर भाई के भी बुरे दिन आ गए।

जिस उम्मीदवार को शेर भाई ने चुनाव में हराया था, उसका खून हो गया और खून का इल्ज़ाम सीधे शेर भाई पर आ गया।

रोज़ सुबह अख़बार तड़पते हुए पूरे शहर पर छा जाते। उनके मुखपृष्ठ बड़े विश्वास से चीख-चीख कर कहते कि खून शेर भाई ने ही किया है। रामदीन की इच्छा होती कि वह अख़बारों

को जला दे। उसे विश्वास ही नहीं हो पा रहा था। क्या ऐसा भी संभव है ? क्या शेर भाई सपने में भी ऐसा कर सकते हैं ?

शहर उसके भोलेपन का मज़ाक उड़ाता। "खूनी कौन है" वाली चर्चा शहर में हर जगह होती और हर चर्चा के अंत में उँगलियाँ उठ कर शेर भाई पर ठहर जातीं ! वह किस-किस का मुँह बन्द करता ?

शहर की दीवारों पर पोस्टर उभर आए थे। जिनमें शेर भाई के गले में फाँसी का फंदा दिखाया गया था। रामदीन किस-किस को रोकता ? और फिर लोग उसी को सीख देने लगे थे कि रामदीन, तुम्हारी आँखों पर तो शेर भाई की अन्ध भक्ति का पर्दा पड़ा है। पर्दे को हटाकर देखो, शेर भाई के पंजों में कितना खून लगा है !

जुलूस निकलते। शेर भाई का पुतला जलाया जाता। वह अकेला लोगों से उलझता। चीता, सियार, गिद्ध सब ऐसे मौक़े पर न जाने कहाँ खिसक जाते !

वह मन ही मन प्रतिज्ञा करता कि अपने जीते-जी शेर भाई का बाल बाँका नहीं होने देगा। गुस्से में वह छटपटाता। चीखता भी कि शेर भाई जैसे नेक दिल इंसान ऐसा कर ही कैसे सकते हैं ? लेकिन पाता कि लोग उसे बेवकूफ़ समझ कर उसकी खिल्ली उड़ा रहे हैं।

एक तूफ़ान था, जो उसके रोके नहीं रुक रहा था। अँधेरा छा गया था और बिजलियाँ कड़कने लगी थीं।

ऐसे में ही हुई थी वह गुप्त मंत्रणा। रामदीन को उस मंत्रणा के विषय में कभी कुछ पता नहीं चला।

उस रात अँधेरे में चीता, सियार और गिद्ध शेर भाई से मिलने गए थे। शेर भाई की आँखों में नींद नहीं थी। चेहरे पर तेज़ नहीं था। न आँखों में चमक थी। वे बूढ़े और थके लग रहे थे।

वे तीनों उनके पास जा बैठे थे। "हमसे आपकी दशा देखी नहीं जाती।"—उन्होंने शेर भाई से कहा।

"हम एक उपाय ले कर आए हैं।"— उन्होंने बात आगे बढ़ाई।

"क्या अब भी कोई उपाय है ?"—शेर भाई ने निराशा से पूछा था।

"शेर भाई उपाय अब यही है कि खून जो आपने किया है, इसका इल्ज़ाम रामदीन पर लगा कर उसे फाँसी तक पहुँचा दिया जाए !"—तीनों से सलाह दी।

शेर भाई हड़बड़ा गए —"यह कैसे हो सकता है ? क्या तुम भूल गए कि हम ऊँटों के वोटों से ही जीते हैं। और वे वोट हमें रामदीन ने ही दिलाए थे।"

"मानते हैं शेर भाई। लेकिन वह काम तो अब निकल ही चुका है।"— तीनों दुष्टता से हँसे थे।

बाहर भयावह और अँधेरी रात थी। झाड़ियों में हवा सरसरा रही थी। डरी-सहमी चाँदनी दरख़्तों से चिपकी थी। दूर पर कुत्ते भौंक रहे थे।

देर तक मंत्रणा चलती रही। तीनों शेर भाई को मनाते रहे। धीरे-धीरे वे तीनों अपनी चालाकी के बल पर शेर भाई पर हावी होने लगे थे।

पंचतंत्र की कथा भी यही कहती है कि शुरू में शेर ने वह प्रस्ताव नहीं माना।

तब चीते, सियार और गिद्ध ने उनसे कहा कि अच्छा, अगर ऊँट खुद कहे कि मुझे खा लो ,

तब तो आप उसे खा लेंगे ?

शेर को यह ठीक लगा।

"हाँ, तब उसे खाने में मुझे कोई आपत्ति नहीं होगी।"—शेर ने निर्णय दिया।···

···अगली सुबह योजनानुसार वे तीनों रामदीन के सामने से निकले। सबसे पहले चीता आया। वह मुँह लटकाए, पीठ के पीछे हाथ बाँधे, धीरे-धीरे चलता हुआ रामदीन के पास से निकल गया।

उसके तुरंत बाद, ठीक इसी मुद्रा में सियार निकला।

गिद्ध भी जैसे-तैसे पीठ पर पंखों का बोझ ढ़ोता, डगमगाता हुआ निकल गया।

रामदीन ने पूछा —"कहाँ जा रहे हो भाइयो ?"

उन्होंने एक साथ, एक आवाज़ में उत्तर दिया - "हम लोग शेर भाई के पास जा कर खून का इल्ज़ाम अपने सिर पर ले लेंगें और फाँसी पर चढ़ जाएँगे। आज हमें नमक का बदला चुकाना है।"

इतना कह कर वे आगे बढ़ गए।

रामदीन का गला भर आया—"मैं भी साथ चलूँगा ! आज यह फर्ज़ मैं भी पूरा करूँगा। यह सिर और कब काम आएगा ?"

उन्होंने रामदीन को भी साथ ले लिया।

···वे सब शेर भाई के दरबार में पहुँचे।

रामदीन की आँखें उन्हें देख कर नम हो गईं—कितने कमज़ोर हो गए हैं शेर भाई !

शेर भाई ने धीरे-धीरे सिर उठाया। रामदीन को तब लगा कि सन्नाटे को सिर्फ़ आवाज़ ही नहीं, नज़र भी तोड़ सकती है !

नज़र मिलते ही सबसे पहले गिद्ध दरबार के बीच कूद गया। पंख फड़फड़ा कर बोला ---"शेर भाई, खून मैंने किया है। आप मुझे फाँसी दिला कर इस आरोप से मुक्त हो जाईये !"

एक हल्की-सी सनसनी सभा में इधर से उधर तक फैल गई।

लेकिन शेर भाई के कुछ कहने से पहले ही सियार जैसा दिखने वाला आदमी कूद कर आ गया। वह गिद्ध को एक ओर धक्का देते हुए चिल्लाया - "सुनिए, गिद्ध अगर खून करता तो मृतक की देह पर चोंच के निशान होते। जाहिर है कि यह खून उसने किया ही नहीं। खून तो मैंने किया है। फांसी का हक़दार मैं हूँ।"

सनसनी की दूसरी लहर सभा पर से गुज़र गई।

इतने में ही चीते-सा दिखने वाला आदमी आ गया। सियार को धक्का दे कर बोला—"कौन इस बात का यकीन करेगा। कि वह बलिष्ठ व्यक्ति सियार के हाथों मारा गया। मैं हूँ कातिल। मेरे पंजे उसके खून से रंगे हैं। फाँसी पर आप मुझे चढ़ाइये।"

सनसनी की तीसरी लहर सभा पर से गुज़र गई।

···पंचतंत्र की कथा में भी यही लिखा है कि एक योजना बना कर चीता, सियार व गिद्ध, शेर के सामने ऊँट को लेकर पहुँचे। फिर एक-एक कर के उन तीनों ने शेर से निवेदन किया कि वे उन्हें खा कर अपनी भूख मिटाएँ। ऊँट इस चाल में फँस गया। उसने भी उनकी देखादेखी शेर से कहा कि वह उसे खा कर अपनी भूख मिटाए···।

···इस तरह रामदीन दरबार के बीच में आ गया। उसे देख कर शेष तीनों एक तरफ़ हो गए।

रामदीन अदब से बोला—"शेर भाई, मुझे इतना ही कहना है कि खून मैंने किया है। फाँसी का सही हक़दार मैं ही हूँ।"

सनसनी की चौथी लहर सभा पर से गुज़र गई।

और तभी शेरभाई के भीषण गर्जन से सभा थर्रा गई—"कमीने, तो तू था हत्यारा। तूने इन्सानियत पर कलंक लगा दिया। तुझे ज़रूर प्राणदंड मिलेगा।"

और उन्होंने उछल कर रामदीन को दबोच लिया वे दहाड़े—"पकड़ लो इस खूनी ऊँट को! भागने नहीं पाए!"

रामदीन को एक बार फिर लगा कि भरी दोपहर में सूर्यास्त हो गया है। अँधेरा ही अँधेरा। खंबों के पीछे से काली, भयावह आकृतियाँ निकल आई थीं। वे सब उसकी तरफ़ झपट रहे थे। चीख रहे थे!

…पंचतंत्र के दिनों में भी शायद यही हुआ होगा। ऊँट के निमंत्रण देते ही शेर ने उसके टुकड़े कर दिए होंगे।

शहर में आग की तरह समाचार फैल गया। दीवारों पर पोस्टर चिपक गए, जिन पर रामदीन का फ़ोटो छपा था। उसके गले के आगे फाँसी का फंदा था। ऊपर लिखा था – हत्यारे को फाँसी दो!

सुबह अख़बार रामदीन की ख़बरों के साथ गलियों—चौराहों पर फड़फड़ाने लगे थे। उसकी क्रूरता के ऐसे-ऐसे किस्से छपे थे कि लोगों ने दाँतों तले उँगली दबा ली।

सिर्फ़ एक छोटी-सी बच्ची ने स्कूल जाते हुए, तुतला कर अपनी माँ से पूछा था—"माँ, क्या कभी ऊँट भी खून कर सकता है?"

उत्तर में माँ ने डाँट दिया था—"चुपकर, बड़ों की बातों में नहीं बोलते।"

…जेल के सीखचों के पीछे रामदीन बस चुप हो गया था। कुछ भी नहीं बोलता था। हथकड़ियों से हाथों में घाव पड़ गए थे। खून रिसता था। पत्थरों की दीवारें, सीलन-भरी अँधेरी कोठरी में बंद हवा की घुटन, बहुत ऊपर लगे छोटे-से रोशनदान में लगे लोहे के सरिए, सरियों के बाहर नज़र आती बूढ़े पेड़ की सूखी टहनी— सब जैसे उससे कहते कि रामदीन, अब तुम्हारा आखरी वक़्त आ गया है।

लेकिन रामदीन कुछ नहीं बोलता था। मार से सूजे, पपड़ी जमे उसके होंठ सिर्फ़ एक बार खुले थे, जब किसी ने ठोकर मार कर कहा था कि उठ, आगे पूछताछ के लिए तुझे अब तेरे गाँव ले चलना है। और तब वह बची-खुची ताक़त लगाकर चिल्लाया था—"नहीं, मैं वहाँ नहीं जाऊँगा!"

लेकिन उसे ले जाया गया था।

झटके खाती, उछलती पुलिस की गाड़ी के भीतर वह निढाल पड़ा था। दोनों पैर फैलाए, पस्त, कंधे पर झुकी गर्दन, इधर-उधर मार पर जमा खून। साँस जैसे रुक-रुक कर चल रही थी।

उसने गाड़ी में लगी जाली से देखा—"अरे, यहाँ तो खेत-खलिहान कुछ भी नहीं हैं।… यहाँ तो वही दूर-दूर तक फैला रेगिस्तान है। वही अथाह प्यास, अनंत भटकाव और असहनीय ताप वाला रेगिस्तान जहाँ गर्म, अतृप्त आँधियाँ रेत के टीलों को लगातार एक ओर से उठा कर दूसरी ओर जमाती हैं।…

पुलिस वाले जब रास्ता पूछ रहे थे तो उसे समझ में नहीं आ रहा था कि क्या जवाब दे—रेगिस्तान में भी रास्ते होते हैं क्या ?

···गाड़ी गाँव पहुँच गई थी। एक बार फिर अपना वही चिरपरिचित गाँव···ख़ामोश और साँस रोके हुए। वही भय और आतंक में रिरियाती झोंपड़ियाँ। वही शाम का उदास धुँधलका। काली ज़मीन पर चिपकी डरी-सहमी आकृतियों के गलों में फँसी चीखें !

रामदीन को बाल पकड़ कर घसीटते हुए उसके घर के सामने के ओटले पर डाल दिया गया था। उसके शरीर में हरकत हुई थी। वह कोशिश कर के पलटा था और एक बार फिर ऊँट की तरह बैठ गया था।

···अँधेरे में लोग दहशत से उसके शरीर के ज़ख्मों को आँखें फाड़-फाड़ कर देखने की कोशिश कर रहे थे। उन्हें समझ में नहीं आ रहा था कि ये ज़ख्म मार से बने हैं, या किसी आदमखोर शेर के पंजों से···।

···पंचतंत्र की कहानी ख़त्म हो गई थी।
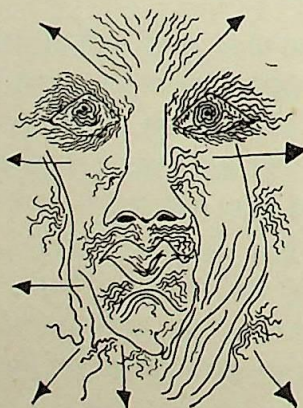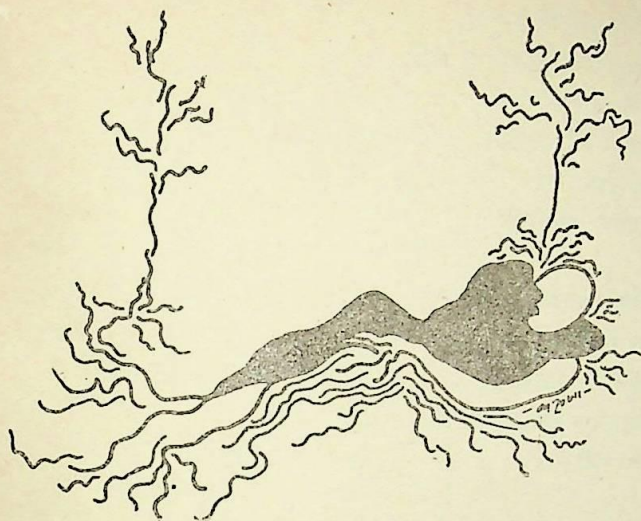
□ देवमगल

युवा भारत

शिक्षा शास्त्री के
बच्चों को
स्कूल पहुँचाती कण्णम्मा
सुबह
अपने घर को अनदेखा कर
निकल जाती है

उसकी छह वर्षीया बड़की
नाक बहाती मँझली
अँगूठा चूसती छुटकी
लार टपकाती
गोद की नन्हीं को
लिए
चौराहे पर रिरियाती है

माँ, भूख लगी है माई,
पाँच पैसे का सवाल है भाई,
बिन माँ के बच्चे हैं···
मँझली और छुटकी
पेट उघाड़कर
सुबकने लगती हैं···

और कण्णम्मा
दूध बिस्कुट लिए
स्कूल के फाटक पर
इण्टरवल की प्रतीक्षा में
ऊँघ रही है।

बयान

झूठ नहीं बोलता मैं
गाँधी की तरह
सत्य के प्रयोग के लिए नहीं···

पर
आज के बोले गये झूठ को
कल तक
याद रखने की याददाश्त···

उस याददाश्त
को पाने तक
मैं झूठ नहीं बोलता

तमिष् से अनूदित : सुमति अय्यर

□ देवकी

तुम्हारे होने भर से

मुग्धा थी मैं
निर्मल आकाश की तरह···
एहसासों के बादल
अभी पूरी तरह
छाए भी नहीं थे
मन के निर्मल फ़लक पर···

पर तुम
छितरा कर इतने सारे रंग
मेरे पास आये
सूर्योदय की तरह···
तुम्हारे स्नेह की किरणों का स्पर्श
मेरा खालीपन भर गया···
देखो
कैसी सुबह की आभा···

कैसे कैसे एहसास
जुड़ने लगे हैं,
सिर्फ़ तुम्हारे होने भर से…

तुम्हारी आँखों में
उतरते आकाश के प्रतिबिंब में
मैं

दरख़्तों की ओट से
झिलमिलाती धूप से लेकर
चाँदनी तक
मुझे तलाशोगे
अलस्सुबह की लालिमा में
मेरी आँखों को पाओगे
बरसते मेह की रिमझिम में
मेरी ही आवाज़ ढूँढोगे…
अपने एहसासों में…
मेरी गति…

प्रिय
अलग होकर भी मैं
तुम्हारे क्षणों में घुलकर
तुममय हो गयी हूँ

बदलाव

मैं मैं बनी रहूँ
तुम तुम बने रहो
यदि मैं को तुम में
तब्दील होना है
तो न मेरा 'मैं' रहेगा
न तुम्हारा तुम…
इसलिए
'तुम' तुम बने रहो

मेरी जड़ों को खोखला मत करो
उन्हें पहचानो
बदलाव आने हों
तो उन्हें आने दो अपने आप
छोड़ दो···
पूर्णता शायद इसी में है।

तमिष से अनूदित : सुमति अय्यर

□ चेरन

एक सिंहली सखि के नाम

मैं जानता हूँ
तुम्हारे लिए ही नहीं, तुम्हारे मित्रों के लिए भी
यह अविश्वसनीय आश्चर्य
की बात रही होगी
कि मैं, एक सामान्य सा आदमी
उसी ज़मीन से आया था
जहाँ धान के बदले
राइफलों की गोलियाँ बोई जाती हैं
सुदूर उस प्रदेश में
तिमंजिली कोठियाँ हैं या
फिर आतंकवादी—
इस आश्चर्य से मुक्त होने
में वक़्त लगेगा तुम्हें···

कभी मटमैली,
कभी आकाश पर छा जाते बादलों के

साये में, अपने
बदले हुए संवलाते से
रंग वाली
तो कभी चाँदनी में झिलमिलाती
पालावी के तट पर बने
घाटों पर
मधुर आवाज़ में
तुम्हारे सिंहली गीतों को सुनकर
मुग्ध होता हूँ :

बहुत पहले की बात है
बालक था तब मैं
माको स्टेशन पर
मट्टकलप्पु रेल की प्रतीक्षा में
पिता की उँगली थामे
पटरियों पर चला जा रहा था···
रात के सन्नाटे में
एक लोरी, तैरती हुई आयी थी
मुझ तक,
बच्चे का कुनमुनाना
और वह लोरी···
उस रात लोरी उतर गयी थी
भीतर
उदास करती हुई मुझे

आज भी उदास हूँ···

आषाढ़ की तेज़ हवा
तेज़ हवा में
धरती पर झरते फूलों
लम्बे सुन्दर पंख वाले
अपनी दिशा को भूलकर भटकते मोरों को
मुग्ध तन्मयता में
सराहने वाली मूक भाषा ने
क्या कभी हमें दूर करने की
साज़िश की है ?

तुम्हारे चाहने के बावजूद
एक पंख भी नहीं दे सका,

तुम चलना चाहती थीं
रात के प्रथम प्रहर में
धुली चाँदनी में, हरी घास पर
पर मैं साथ नहीं चल सका;

तुम्हारी आँखें उस निराशा को
छिपा नहीं सकीं
तुम्हारे उस स्नेह को
नहीं भूल सका मैं भी···

हमने प्रकृति की हत्या नहीं की,
फूलों को खिलने दिया
घास को उगने का अवसर देकर
हम लौट गए थे
तुम—दक्षिण दिशा की ओर
मैं—उत्तर दिशा की ओर

अलस्सुबह
जब पर्वत श्रेणियों के
ऊँचे दरख़्तों से होकर
उतरती होगी ठंडी हवा
दातून करते हुए
की जाने वाली चहलक़दमी के वक़्त
तुम याद करोगे
कि शहर को मुक्त
करने के कार्य में
हम तुम साथ जुड़े थे
तुम अपने लोगों से कहना
कि
यहाँ भी फूलते हैं, फूल
यहाँ भी घास की रेशमी
कालीन बिछी है,
यहाँ भी चहचहाती है
वह नन्हीं चिड़िया

सब कुछ भूला जा सकता है···

भूला जा सकता है सब कुछ
निरुपाय मौत से
बच निकलने का
हलका विश्वास लिए
खुली सड़क पर
खूब तेज़ भागती हुई···
फिर उलटकर
जलती हुई कार से
झाँकती हुई अधजली जाँघों को,
आकाश और धरती के बीच
जाने किस बिंदु पर टिकी एक आँख को,
दूसरी आँखों के स्थान पर
खाली लाल गड्ढे को,
डिगमंडस रोड पर
लाल रंग में सनी
फटी हुई खोपड़ियों को;

आग से बच गये
आँचल के उस छोर को
कटे पड़े दाँये हाथ को
जलते हुए मकान से
पालने को बमुश्किल ढोती
गर्भिणी सिंहली महिला को···

हाँ यह सब कुछ भुलाया जा सकता है।

पर,
उस चाय बागान के पत्तों पर···
जब साँझ उतरकर
गायब होती है
जहाँ तुम्हारे बच्चे छिपाये गये हैं,
वहीं
पत्तियों की छाँह के पास
अरसे के बाद मिले
मुट्ठी भर चावल को
हंडिया में डालकर

छिपकर उसके पकने की
प्रतीक्षा में बैठी वह औरत···
हंडिया छीनकर
फोड़ दी गयी थी
कैसे भूल जाऊँ मैं
उस फूटी हंडिया को
बिखरे चावल के अधपके दानों को···।

तमिष से अनूदित : सुमति अय्यर

□ आत्मानाम
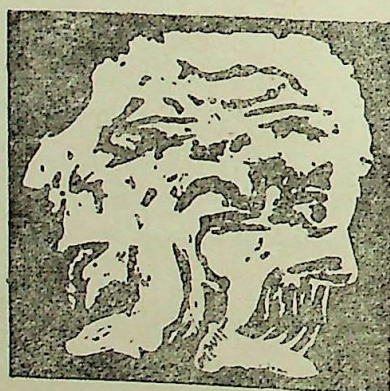
मेरा कमरा

यह मेरा कमरा...
आप परिचित हैं
आप ही क्यों
परिचित हूँ मैं भी...
ऐसा क्यों होता है
कि ये कमरे
हमसे परिचित होने लगते हैं
या हम
परिचित होने लगते हैं कमरों से
हम सब कोठरी वासी हैं
कोठरी के भीतर साँस लेते हैं
लेटते हैं,
लोटते हैं, खेलते हैं
कोठरी में हमारे साथ हैं
पानी का घड़ा

चूल्हे की आँच
अख़बारों के ढेर…
दीवारों के कोनों पर
रेंगती छिपकली
खतरे का संकेत देती अनामिका
उड़ने वाला आदमी
बंदरनुमा आदमी
विशाल वक्षों वाली राजकुमारी
काँक्रीट और चूने की दीवार के पीछे
गुफावासी हैं हम, सभ्य।
क़लम की हड्डी के लिए
घूमने वाले
आज के नागरिक।
अपने भ्रम को बनाये
रखने वाली
पुरानी कहानी
ख़त्म होगी
हम बुद्धिजीवी हैं
पृष्ठों में बीज बोते हैं क्रांति के
क़लम का हल जोतते औसत
बुद्धिजीवी…
क्रांति की प्रतीक्षा में
जमुहाई लेने वाले
औसत बुद्धिजीवी
छाती फुलाकर
पीठ की खाज
मिटाने वाले बुद्धिजीवी सुअर…
पहले उतार फेंकें
बुद्धिजीवी होने का दंभ
फिर निर्वस्त्र हो जाएँ
लहरों के किनारे
नम होने के लिए…

अब भी…

गर्दन में हीरे लिए
उड़ते कबूतर…
कामांध होकर
एक दूसरे का पीछा करते तोते
अनाज की तलाश में
भटकते कौए,
शाखों में धींगामस्ती
करती गौरेया,
काई जमे पोखर में
धीमे से हिलते कमल नाल,
पोखर के किनारे
उगे दरख़्तों की छाँह में
फलों को कुतरते हुए
सहसा सिर उठाकर
प्रश्न करती थीं गिलहरियाँ…
मंत्रोच्चार के साथ
कलश में जल भरते
शिवालय के पुजारी
घाटों पर कपड़े धोती
बतियाती, नहाती युवतियाँ…
खेतों के पार उगा सूरज
सहसा ऊपर चला आया
और भैंस चराते
बालक के सिर पर
जा गिरा …।

तमिष़ से अनूदित : सुमति अय्यर

□ विक्रमादित्यन

नमी

भरी बस में यह हुआ था
पिता की उम्र के बुजुर्ग थे वे
ढलता शरीर
सींक से हाथ पाँव
पता नहीं कैसे ढो पाये थे
चटाइयों का वह गट्ठर
गाँव के छोर पर
टिकट के लिए
की गयी थी शुरू वह झिकझिक
एक टिकट का शुल्क
गट्ठर के लिए—
वाहक का तर्क था
बुजुर्ग थे सहमत आधे
शुल्क पर···
अभावों के मारे बुजुर्ग

उनके पक्ष में—
बाहक के साथ थी
शेष भीड़
उतार दिया था
उन्हें वहीं छोर पर
बुज़ुर्ग रोये
गिड़गिड़ाये शाप देते रहे...
मैं जानता हूँ
कि किसी दयालु ने
उन्हें गंतव्य तक पहुँचा दिया होगा
फिर भी
उस दिन का अपना मौन
सालता है इस क्षण भी...
दोस्त से ली गयी उधारी के
दस रुपये शेष थे
बेरोज़गारी में, घर और
बाहर के तनाव में...
शायद सूख गया था
मेरे भीतर का वह स्रोत...
समझ नहीं पाया अब तक
कैसे सूख गयी नमी
मेरे भीतर की...
कैसे सूख गयी हरियाली
मेरे भीतर की...
मेरा दुख सिर्फ़ इतना है
अजनबी हो गया हूँ अपने लिए मैं
सोचता हूँ,
उनकी नहीं
मेरी स्थिति ही मेरी समस्या है।

भाग्य

सब कुछ
जैसे लेखा है भाग्य का
तानाशाहों के लिए
गुलाम और राज्य

सन्यासियों के लिए
मूर्ख अंधविश्वासी जनता और गेरुए कपड़े ··

पर
सीधी सादी प्रजा के लिए
भ्रष्ट नेता और गरीबी।

तमिष से अनूदित : सुमति अय्यर

□ कलाप्रिया

एकलव्यत्व

विदुर की आँखें तक
नहीं देख पायी थीं कि
कुरुक्षेत्र की असली शुरुआत
एकलव्य की हत्या से हो गयी थी

अर्जुन की विजय के लिए
अँगूठे की दक्षिणा ली थी
द्रोणाचार्य ने
विश्वास था उन्हें कि
दुर्योधन की विजय
एकलव्य के पराक्रम में निहित है।
द्रोणाचार्य का वह विश्वास
आज भी कहीं बदला है क्या ?

शुरू बचपन में
पाठशाला जाते हुए

बेहद प्यारे मासूम से उत्साह के साथ
सुंदर अक्षरों में
टाइमटेबल को उतारोगे
फिर उसे चिपकाकर दीवार में
क़िताबों पर जिल्द चढ़ाओगे
तन्मयता के साथ
फिर सेना शुरू करोगे
धीमे-धीमे अपने नन्हें सपनों को;
पर तुम नहीं जानते
कि
तुम्हारी डिग्रियों को,
रिश्तेदारों के आँगन में
जाति भेद के पानी में
नाव बनाकर तैराने के लिए
बैठे हैं तैयार
कुछ लोग···

भूख

अच्छा है
कि यह कविता आपकी
समझ के परे रहे···

मैं इसे
ढोता रहूँगा
शकुंतला के गर्भ की तरह
कहते हैं
कि जुबान खुलने से पहले
शिशु
देख सकता है ईश्वर को,
देख लेता है
गुप्त ख़ज़ाने को···

पर
भिखारिन के बच्चे

ज़बान खुलने से पहले ही
भूख को भाषित करने के
पूर्व,
ऐंठकर ख़त्म हो जाते हैं।
मैं जानता हूँ
इससे पहले कि
इस कविता की ज़ुबान खुल जाए
वह इसे फेंक देंगे···

अच्छा है कि
यह कविता
आपकी समझ से परे है।

तमिष़ से अनूदित : सुमति अय्यर
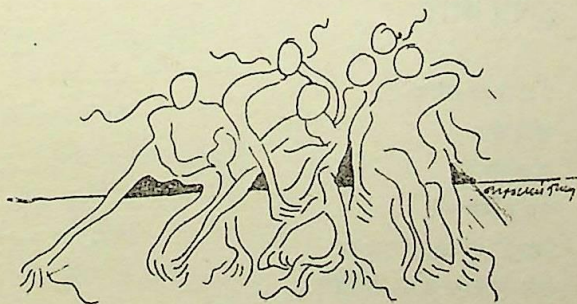
□ पाप्रिया

हरित क्रांति

एक बेहद सुंदर
आकर्षक
ख़ज़ाना है
यह हरियाली
मिट्टी के अतल तल से
इसे निकाल लाने के लिए
ज़रूरी है
कि दूसरे रंग
एक होकर
कुछ सोचें।
खेतों में होता है
जब भी
हरियाली का गर्भपात
गली की दीवारों पर
लाल तिकोन के पोस्टर

अपने पक्ष के लिए
करते हैं प्रदर्शन
जब जब
इस हरियाली की कटाई
ग़लत हुई है
मौत आसानी से
कटाई कर डालती है
इन्सानों की ।

माटी और किसान के पसीने
के संयोग का
शिशु है
यह हरियाली
काल की उँगली थामकर
मानव जाति के लिए
जी रही है यहाँ…
हरियाली
संपत्ति है सार्वजनिक
इसके भोलेपन का
लाभ उठाती है
स्वार्थ लिप्सा
न
हरियाली पारा नहीं
कि बह जाये…
हरियाली तो
श्रम का वह रक्त बिन्दु है
जमा हुआ…
श्रम का बिन्दु
लाल ही नहीं होता
हरा भी होता है ।
हाँ, हरा रंग
दर्पण है
वस्त्र बदलती ऋतुओं
का दर्पण…
हरियाली अपने
बाल
नहीं छितराती अक्सर यदि
धर्म, अपना सिर

लुटा देता जाने कब का

अँधेरे में दीये
जलाने वाले
हाथों से,
सुनहरे भविष्य के लिए
विश्वास के साथ
तनी हुई मुट्ठियों के
दीये जलाने वाले
अच्छे लगते हैं···
यही कारण है
कि
बिना किसी ग्लानि के
कह सकता हूँ मैं
कि हरा रंग प्रिय है मुझे।

एक हारा हुआ गीत

महाकाव्य की धारा में
गुम हुई
कविता की एक देह

गुम कविता की देह
हुई थी
पर
प्रेमियों के संसार में
उसका मन
सदियों के लिए
खुद गया शिलालेख सा···
उन कविताओं में
जिनके उद्धरण
प्रेम काव्य में हैं···

अनुवाद

खोज रहा था
एक पुस्तक,
कि ग़रीबी का
रूपांतर कर सकूं…

आश्चर्यचकित रह गया
देखकर कि
पूरा देश पुस्तकालय
बन गया है
पुस्तकें बिखरी हैं
झौंपड़ियों की शक्ल में।

तमिष से अनूदित : सुमति अय्यर
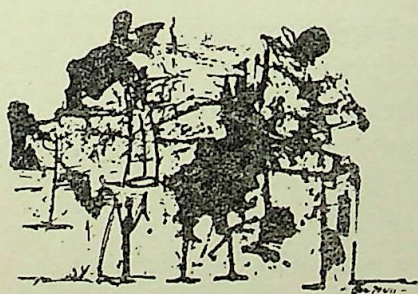
□ इस्माईल

मेरी पत्नी

एक हाथ से पकड़े रहती है आसमान को
दूसरे हाथ से पुचकारती है पृथ्वी को
एक हाथ से पक्षी बन चुगती है आँसुओं के दाने
दूसरे हाथ से हाथ फेर दिलासा देती है कंकड़ पत्थर को
एक हाथ से थाली लगाती है
दूसरे हाथ से बच्चों को खिलाती है
रोशनी भरे एक हाथ से अँधियारे को बिदा देती है
तारों भरे हाथ से सूरज की अगवानी करती है
एक हाथ से भाग्य को कोसती है
दूसरे हाथ से मुस्कानें बिखेरती है
यहाँ दिशाओं में अपने हाथों के चक्र बनाये
जीवन की गाड़ी खींचते
चलाये जा रही है बड़े शान से।

तेलुगु से अनूदित : दंडमूडि महीधर

▢ देवीप्रिय

एक कुटिया की कहानी

इसी कुटिया में
मेरी दुनिया की सुबह हुई
इसी औलती से फिसली
मटमैली वर्षा की बूँद में
अपनी ही तस्वीर दिखाई दी
मुझे पहली बार हूबहू !

नामोनिशान मिट चुकने के बाद भी
मुझे साफ़ दीखती है
उसी नीम के पेड़ की छाया में
पहली बार अपने अक्षरों की हरीतिमा ।

इसी दालान में बिखरी
अपनी कापियों के पन्नों पर
हमारी मुर्गी की बीट देखकर
मैंने रंगों का रहस्य जाना पहली बार !

घुटने भर कीचड़ में
जब घर से सड़क तक चला
पहली बार मुझे घबरा दिया इस दुनिया की गहराई ने !

मिट्टी की दीवारों पर मानव ने
पहली बार जब कुछ लिखा अपनी तर्जनी से
तभी मैं समझ गया, मुझे भी लिखना चाहिए ।

अँधकार भरे कुएँ में झांकने को
उस दिये ने ही मुझे मजबूर कर दिया
जिसे हमने रख छोड़ा था कुटिया की रखवाली में
जो मंद मंद मरियल-सा जलता रहा !

कारखाने के भौंपू की आवाज़ सुन
मेरी माँ हड़बड़ाकर उठ बैठी जब
इसी कुटिया में पहली बार मुझे
अनदिखे आँसुओं के सागर
उमड़ते हुए दिखे अपार !

और मुझे पहली बार मन में आया
कि इस कुटिया पर बिछे घास-फूस के तिनके
क्यों न बन जाएँ बरछियाँ देखते देखते ?

मेरी माँ की कसम
तब से यह कुटिया मेरी आँखों में ऐसे तैरती रही
जैसे कारेंपूडी* का वीरों का मंदिर हो,
जहाँ आये दिन अस्त्र-शस्त्र पूजे जाते हैं ।

तेलुगु से अनूदित : दंडमूडि महीधर

*एक युद्ध-स्थल, जहाँ आन्ध्र के राजाओं के बीच युद्ध छिड़ा था ।

□ केशवचंद्र दास

विषुव रेखा की संक्रान्ति

गर्मी की दुपहरी आते आते
क्षण भर सुस्ताती है
नहा कर आयी माँ के दो चरणों पर
छाँह में ठंडाती
इस पीपल की जड़ों पर
कलसी से बूंद बूंद रिसता है जल
सिंचती जाती हैं
जड़ें भीतर तक।

तुलसी के शरीर पर
पूजा के बीज उगते हैं
धूपगंध ढलती है
कर्त्तव्य की संध्या में

प्रणाम में अर्पित होता है
भूत, भविष्य, वर्त्तमान···

आँसू तोड़ते हैं उमस की व्यथा को—
उत्पत्ति चिंता में ज्योतिष्मान् होता है
कोई विभुरूप परम पुरुष
प्यासे पथिक की प्यास बनती है ज़हर
शिथिल कूक के संग
आती है दुपहर।

लाज में सिकुड़ती ललित
कुँठा में घबराई
बावड़ी जल अर्पित करती है
छायादार सूर्य के कर में
फिर सिमटती है लहरों के अवगुंठन में।

लौटती हैं माँ पीपल की छाया से
जमुहाई लेती है खाली कलसी
चलता है लगातार
मंगल माला का जप साथ साथ
यों ढलती है दुपहरी
चराचर की परिणाम-धारा में
उगती है विषुव रेखा
उम्र कटती है यों
कमंडलु के गले में
जपमाला झूल जाती है फिर
फिर भी गिरता है जल
लगातार बहता है जल
जब तक जड़ें भीग नहीं जातीं
जब तक चुक नहीं जाता जल···

तथापि अहल्या

अमावस्या के निशाशेष में
रतिक्लांत सहस्राक्ष की तरह

मैं खोज रहा हूँ अपने
कवच और कुंडल।
कहाँ हैं मेघ? कहाँ हैं वारिधाराएँ?
कहाँ है आकाश में नीलिमा?
सर्वत्र है पाषाणी अहल्या
स्थिर, स्थविर, बर्बर।
उर्वर पर्वत पर रमती धूनी में
उगती है गंध
संबोधन उगलती है गुहा
राहु करता रहता है तप
अपनी देह का स्वाद पाने को
सुधा नहीं बाँटती पर मोहिनी
मंदर पर्वत ही थमने लगता है
डर से हलाहल के
सो जाते हैं सदाशिव शवों के बीच
पेड़ पर छत्ते के छत्ते
उग आते हैं आषाढ़ के मेंढकों के
उठता है झिल्लियों का महीन सुर
चलती है अलसाई नीली रात की सरगोशी···
हटती नहीं है जीवन से
फिर भी विपदा
बीमार होते जाते हैं आँसू तुम्हारे
और उद्‌गिरण में
घुलते जाते हैं सहस्र धाराओं के रंग
अगम्य होता जाता है
अलका का पथ
फिर भी अलका के पार्श्व से
अहल्या का स्वर आता है
बुद्‌बुदमय···
तुम तक मुझ तक
तुम्हारे और मेरे
बीच की ऊष्मा शिशिर हो जाती है
एक बार फिर जगने को
जगने को एक बार फिर।

तुम उतरती हो

आकाश में छायामाला
भूमि पर
बादल के चलने की
स्नेहांकित लिपि
भुखमरों की महायात्रा
भरती हुई बीच का अंतराल
रस्ते के एक ओर प्रकाश रेखा
क्षीण होती हुई
सीमा रेखा देह को परिवर्तित करती हुई
लगातार एक परिधि में
चक्र का आवर्तन···

वृक्ष के संकुचित शिखर पर
हिलती है धरती की महावर
अव्यक्त की कज्जल धारा में
मकड़ी के जाले बुनता है अदृश्य
शिशिरसिक्त घास के कपाल पर
तुम उतरती हो
किसी शव के सम्मान पर
बुद्बुद के उपमान पर,···अभिमान पर···
डोलता है काल
वैराग्य के हलाहल पर···कोलाहल पर···
विषय के अग्निगर्भ हिल्लोल पर
आंदोलन के विकल क्षण पर
अंधे भिखारी के पीछे चलते
लँगड़े कुत्ते की
टपकती लार पर
तुम उतरती हो
उनींदे बच्चे के
जमुहाई लेते गाल पर
तुम ही हो बूंद
और बाँटती हो
बूंद ही ··
तुम उतरती हो
रस पर, अभिनय पर, अनुनय पर, स्वप्न-
विनिमय पर···

उतरती हो तुम—
चतुर चकोर के तृषार्त निर्णय पर
छीजता है पर मेरा परिचय
अभिलाषाओं की गायत्री के बीच
उतरती हो तुम
तुम्हें अपनाने के आकस्मिक मोह पर
निस्संग विहार के प्रसंग प्रवाह पर
विरही का विभाव बनता है जहाँ भवन
वन, सघन और सघन
फिर सनातन...

संस्कृत से अनूदित : राधावल्लभ त्रिपाठी
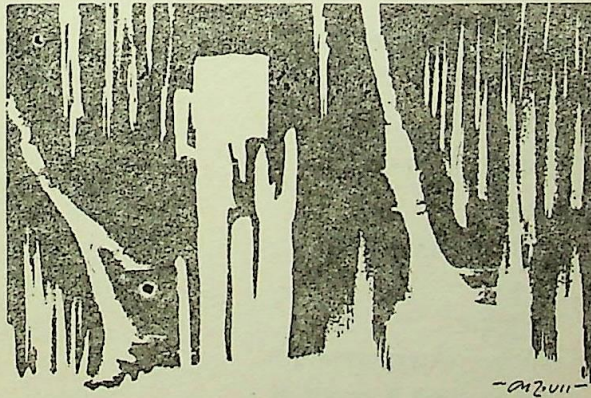
□ प्रणव कुमार वंद्योपाध्याय

यही है वह नरककुंड

देखो
नरककुंड की रोशनी में
खड़े हैं
निर्वेद हाहाकार के साथ
मेरे पूर्वज
तमाम यार
और सत्य की तरह यातनाग्रस्त
मेरी शताब्दियों से ख़ामोश माँ
यही है वह रोशनी
जिसका उत्स है
चंद घड़ी पहले मारे गए
निष्पाप शिशु
जिन्हें खोजते रहे हम
पृथिवी के हर मुक़ाम पर
बाज़ार, दरों, नदी के उफ़नते मुहानों

और वक़्त के सन्नाटे में।

कैसा निष्ठुर इंद्रजाल है समय का
कि सन्नाटा चीरकर निकली चीखें
जाने कहाँ गुम हो जातीं
रोशनी तक पहुँचने से पहले !
फिर भी देखो
रोशनी अभी तक क़ायम है !
एकदम चुप ही सही
मेरी माँ जो रचती रही इसे
घड़ी-दर-घड़ी
रक्त, कष्ट और साँसें जलाकर !

यही है वह नरककुंड
जहाँ के घुमावदार रास्तों में
सत्य की हरारत के बीच
मेरे पूर्वज
चौकन्ना देखते रहे
सलेटी आसमान की तरफ़
रोशनी ढूँढते हुए
और आख़िर में
उनकी आँखें अंधी हो गई थीं !

पृथिवी, यह बूढ़ा समय
अँधेरा, रोशनी
सब ज्यों के त्यों हैं
हक़ीकत तो यही है कि
वक़्त बूढ़ा है सिर्फ़
बदला नहीं।

मेरी बागी माँ ने
वक़्त को छुआ था बदलने के लिए
सदियों पहले
तब से
नरककुंड को झेल रही है वह !

उत्स

परोसे अन्न की थाली में
मेरे तमाम अवरुद्ध कष्टों की
गाथाएँ थीं, यार !
अँधेरे में मुर्दे की तरह पड़ा
मैं भूल गया
स्मृति का मेहराब था यहीं कहीं
और उसमें
रखी थी मैंने
मोम की एक चुप रोशनी !
इतनी यातना के बीच भी
जाने कैसे
मेरे पास थोड़ी-सी खुमारी बच गई थी···
बाँस प्याले से उसे उड़ेल कर
देर तक इंतज़ार में
सिर्फ़
अँधेरा ही पीता रहा मैं
अँधेरा और अपना ही रक्त पीकर
मैं देखता रहा
घृणा का ज़हरीला वाष्प
अन्न की थाली से उठता हुआ

जाने कहाँ
शुरू हुई थी मेरी ज़िंदगी !
मेरे पास अभी तक
जो यादें बाक़ी हैं
उनमें एक घुमावदार रास्ते के बीच
मैं
एक फ़क़त अकेला मुसाफ़िर हूँ।
लेकिन फ़र्क इतना है कि
मैं जान गया
हर किसी की कहानी
लगभग मेरी ही तरह है !

मैंने कभी मेहराब में
रखी थी जो रोशनी
वह आख़िर रोशनी नहीं थी।

लौ और रोशनी के बीच का फ़र्क
भस्मीभूत घर की राख
और घृणा के वाष्प ने
अब समझा दिया !

और ?
बरसों की भूख ने भी तो
बता दिया
अग्नि का उत्स क्या होता है
और कहाँ से फूटती
करुणा की उष्ण धारा !
यही धारा
यही अग्नि
रोशनी का वुजूद हैं
जिसे तुम्हारी आँखें
कल तक ज़रूर कबूल करेंगी।

मेघना

नदी के साथ खेलते हुए
शब्द बोते चले हम
मुहाने तक
नावों के साथ
मल्लाहों के कंठ भी
पहचान गए वे शब्द
जिनमें तमाम यातनाओं के बीच
एक पुकार
अंकित कर गया कोई
किनारे लौटने का रास्ता बताने
फिर भी नहीं लौटे जो मल्लाह
शब्दों में
समाहित हुए होंगे वे
ये शब्द
शून्य हैं
जिन्हें उकेरते हुए

पृथिवी जाने किस सुरंग में
खो गई !
खोए तो हम भी हैं…
खोकर ही
आत्मा और
सत्य की रोशनी के बीच
हम ढूंढते रहे
अपने जनम के रहस्य
और दरिया, मैदान,
कछारों में जज़्ब
वे तमाम चिह्न
जिनसे होकर
हमारे पूर्वज गुज़रे हैं
शताब्दियों तक

यही नदी
अब माँ की तरह
शरण देती है
हमारी बंजारा इच्छाओं को
मछलियों, भँवर और
तलहटी के रेत में
यही नदी
अब हमारी
आत्मीय कामनाएँ है।

नदी के साथ खेलते हुए
नदी को ही पुकारें हम ? कैसे ?
यही है वह रहस्य
शब्दों में समाहित मल्लाह
बताएँगे जो हमें
हमारे जनम का अर्थ खोलते हुए !
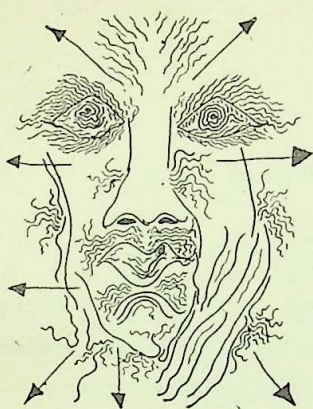
कथा नंदन की

मूल तमिष् : □ इन्दिरा पार्थसारथी
रूपान्तरण : □ सुमति अय्यर

पात्र :

नंदन	ठाकुर-१
देवदासी अभिरामी	ठाकुर-२
पुरुष-१	ठाकुर-३
पुरुष-२	ठाकुर-४
पुरुष-३	बूढ़ा व्यक्ति
पुरुष-४	स्त्री-१
ब्राह्मण-१	स्त्री-२
ब्राह्मण-२	स्त्री-३
ब्राह्मण-३	स्त्री-४
ब्राह्मण-४	पुजारी

इन्दिरा पार्थसारथी

जन्म : १० जुलाई १९३० मद्रास में।

सम्प्रति : दिल्ली विश्वविद्यालय के आधुनिक भाषा-विज्ञान विभाग में तमिष् का अध्यापन। पाँच वर्ष पोलैन्ड में विजिटिंग प्रोफ़ेसर।

लौटने के बाद वहाँ के अनुभवों पर आधारित उपन्यास 'येसुविन तोषारकल'।

अनेकों उपन्यास, कहानियाँ एवं नाटक तमिष् में प्रकाशित।

हिन्दी के साथ-साथ अन्य भारतीय भाषाओं तथा फ्रैंच, स्पेनिश तथा अरबी में कहानियों, उपन्यासों के अनुवाद प्रकाशित।

१९६८ में कल्कि कहानी पुरस्कार एवं १९७७ में साहित्य अकादेमी द्वारा पुरस्कृत।

सुमति अय्यर

जन्म : १८ जुलाई, १९५४ मद्रास में।

शिक्षा : हिन्दी में पी-एच. डी.। हिन्दी और तमिष् में समान रूप से लेखन। तमिष् व अंग्रेजी से उपन्यास, कहानियों, जीवनियों व कविताओं के अनुवाद।

प्रकाशित कृतियां : मैं तुम और जंगल (कविता संग्रह) घटनाचक्र, शेष संवाद (कहानी संग्रह) अपने-अपने कटघरे (नाटक)

फ़िलहाल : श्रम मंत्रालय के अधीनस्थ कर्मचारी भविष्य निधि संगठन, कानपुर में हिन्दी अधिकारी।
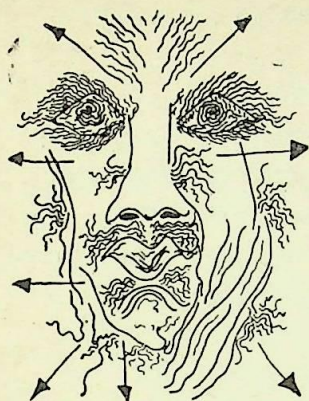
अंक प्रथम

मंच पर हलकी रोशनी। कुत्ते के रिरियाने का स्वर 'तनिक ताड़ी अउर दे रे भैया।' 'सावन आया रे, गोरिया इठलाए धानी चुनरिया में— **मिली जुली आवाजें। बच्चे के रोने की आवाज पहले तेज होती है फिर धीरे-धीरे बन्द हो जाती है। सहसा तीन कुत्ते एक साथ भौंकने लगते है। नंदन का मंच पर प्रवेश। काला रंग उम्र पच्चीस वर्ष के आस-पास। माथे पर भभूत। माथा पीटता हुआ आता है।**

नंदन : यही है चमराना बस्ती,
जहाँ हमेशा ताड़ी की मस्ती।

टहलता हुआ मंच के दायीं ओर रुक जाता है।

नंदन : यह सुन्दरता—ओह यह सुन्दरता मुझे ही क्यों दिखती है।

मौन···टहलता है।

नंदन : हूँ तो चमार! पर माया देखो पालनहार की, आँखें भी दे डालीं।

मौन···टहलता है।

नंदन : सुन्दरता कहीं आँखों से दिखती है, पालनहार ने मन की आँखें भी खोल दीं।

मौन···टहलता है।

नंदन : चमार को मानुस बनाए यही मन, और मन को चेता दे वो पालनहार ।

टहलता है ।

नंदन : नंदन का खुल जाए मन, यह काफ़ी है क्या ?
दूसरों का भी खुले मन, ज़रूरी है यह ।
सुन्दरता को तकें तो धन्य हैं ये आँखें, गंदगी को तकें तो बृथा हैं ये आँखें ।

टहलता है ।

नंदन : एक देखे सुन्दरता, एक देखे गंदगी, कहाँ का न्याय है भइया ! चमारों को बदलना होगा । बताना होगा कि मन खुल जाए तो सुन्दरता दिखे ।

टहलता है ।

नंदन : तिरुप्पनकूर (शिव मंदिर) की वह नर्तकी,
आह ! न देखी हो जिसने, अभागा है वह !
ओह, वह नर्तन उसका
सुन्दरता का वह दिव्य दरसन;
अहा······

जैसे कुछ याद करने लगता है । नंदन के आस-पास अंधकार । पीछे परदे पर प्रकाश । एक नर्तकी, जिसके पीछे परदे पर, नटराज का छायाभास । उसके नृत्य की समाप्ति तक नंदन फ़्रीज की मुद्रा में । वेद मंत्र उच्चारण, मंदिर के घंटे की ध्वनि ।

कनक सभागत काँचन विग्रह
काम विनिग्रह कान्त तनो
कृति समावृत देह विभा ।
कुवलय सन्निभ, रत्न विनिर्मित
दिव्य किरीट शुभाष्टतनो
जय जय हे, नटराज पते
शिव भाग्य संकृति युपार्जयमे ॥

लड़की सहसा अदृश्य हो जाती है नटराज का चित्र भी । हल्की रोशनी में नंदन फिर टहलता है ।

नंदन : सुना आपने ? इस भक्त ने जैसे सुन्दरता को समझ लिया है । फिर-फिर जन्म लेना चाहता है । क्यों भला ? भगवान पालनहार की पूजा करने को ! यह जनम क्यों भला ? सुन्दरता की पूजा करने को ! यह सुन्दरता है क्या ? यह लड़की । इसका नर्तन । उसके भगवान । सभी तो, बाम्हनों के भगवान सचमुच सुन्दर हैं ! पर चमार बाम्हन बने कैसे ? बाम्हन के भगवान की पूजा से ? या फिर हमारी ही तरह जंगली···छिः छिः···

कुछ याद करने की मुद्रा में—नंदन के आसपास अँधेरा । वह स्थिर खड़ा है । मंच के बीचों-बीच रोशनी । चार पुरुष और चार महिलाएँ गोल घेरा बनाए खड़े हैं । पुरुष केवल ऊँची धोती पहने हैं । रंग साँवला । स्त्रियाँ ऊँची साड़ी, पर चोली नहीं । रोशनी के आते ही वे नाचने लगते हैं । नृत्य में कोई लय नहीं । ढोलक का स्वर अत्यावश्यक ।

आओ हम सब नाचे गाएँ
उछलें कूदें, और ताड़ी पिएँ…मौज मनाएँ
बोलो बोलो क्या…

पुरुष १ : ओ धनिया, आओ हरिया

स्त्रियाँ : हाँ-हाँ…

पुरुष २ : आओ रधिया, ओ मटरू

स्त्रियाँ : हाँ…हाँ…

पुरुष ३ : ओ घरौती आओ भगौती, आओ आओ…

स्त्रियाँ : हाँ…हाँ…

सभी : आओ, आओ उछलो कूदो,
मौज मनाओ,
धनिया, हरिया, रधिया, मटरू,
ओ घरौती, ओ भगौती,
आओ आओ,
हाथ में लो ताड़ी का प्याला
उछलो कूदो मौज मनाओ !

मंच के बीचों-बीच अँधेरा। नंदन के आस-पास फिर रोशनी।

नंदन : पूरे जंगली हैं ये। पूजा भी ताड़ी से ही करते हैं। इन्हें बदलना होगा ! पर क्या क्या करूँ ? कैसे करूँ ?

मंच पर अंधकार। रोशनी फैलती है। चार ब्राह्मण मंच पर खड़े हैं। गले में रुद्राक्ष, माथे पर भभूत। रंग गोरा।

ब्राह्मण १ : बात सुनो नंदन की;

ब्राह्मण २ : अपनी बस्ती तो बनाएगा अग्रहार ?

ब्राह्मण ३ : शिव भजन करेगा !

ब्राह्मण ४ : शिव महिमा स्तोत्र पढ़ेगा !

ब्राह्मण १ : चमारों की नहीं रीति यह !

ब्राह्मण २ : चमारों की कैसी पूजा पाठ ?

ब्राह्मण ३ : ब्राह्मणों का हुआ सर्वनाश !

ब्राह्मण ४ : गोभक्षी चमार !

ब्राह्मण १ : मनाएँ माघ त्यौहार ?

ब्राह्मण २ : माँस भक्षी चमार !

ब्राह्मण ३ : चाहें श्रावणी त्यौहार !

ब्राह्मण १ : लोमड़ी के लिए भला कैसी संक्रांति ?

ब्राह्मण २ : जड़ से उखाड़ना होगा।

ब्राह्मण ३ : यूँ ही छोड़ दिया तो…

ब्राह्मण ४ : चमार पहनेगा यज्ञोपवीत ?

ब्राह्मण १ : मैं जानता हूँ, किशना आकर बोल गया।

तीनों ब्राह्मण : क्या बोल गया ?

ब्राह्मण १ : नंदन कैसे करे प्रचार।
तीनों ब्राह्मण : बोलो, कैसे ?
ब्राह्मण १ : बता दूं ?
तीनों ब्राह्मण : हाँ, हाँ, बता दो।
ब्राह्मण १ : नहीं चाहिए चमार देवता।
तीनों ब्राह्मण : क्या ? क्या कहा ?
ब्राह्मण १ : हमें चाहिए ब्राह्मणों का देवता।
तीनों ब्राह्मण : क्या कहा ?
ब्राह्मण १ : नहीं चाहिए कुरूप देवता।
तीनों ब्राह्मण : क्या···? तो फिर ?
ब्राह्मण १ : हमें चाहिए सुन्दर देवता !
तीनों ब्राह्मण : हाँ, तो फिर···?
ब्राह्मण १ : नहीं चाहिए जंगली देवता।
तीनों ब्राह्मण : तो फिर ?
ब्राह्मण १ : हमें चाहिए मंगल देवता।
तीनों ब्राह्मण : और क्या कहा ?
ब्राह्मण १ : मनुष्य मनुष्य का दास है···
तीनों ब्राह्मण : कहिए रुक क्यों गए ?
ब्राह्मण १ : यह नियम बनाया भूमि-पति ठाकुर ने।
तीनों ब्राह्मण : अरे, यह तो महापापी है।
ब्राह्मण १ : नंदन की हिम्मत बढ़ी तो।
तीनों ब्राह्मण : हाँ हाँ, तो ?
ब्राह्मण १ : चमार करेगा पंचायत।
तीनों ब्राह्मण : बस, बस।
ब्राह्मण १ : चमार करें जब राज्य ?
तीनों ब्राह्मण : हाँ, हाँ कहिए।
ब्राह्मण १ : घास चरेगा कौन ?
तीनों ब्राह्मण : अरे हम, हाँ, हाँ, हम।
ब्राह्मण १ : जमींदार से पूछें हम न्याय।
ब्राह्मण २ : हम एक न हों, तो वह अन्याय।
ब्राह्मण ३ : जाति धर्म का जब हो नाश ?
ब्राह्मण ४ : कहाँ मिलेगा हमें कोई ठौर।
ब्राह्मण १ : एक बात कहूँ ?
तीनों ब्राह्मण : हाँ हाँ कहिए।
ब्राह्मण १ : नंदन का कैसे करें विनाश ?
तीनों ब्राह्मण : कहिए !

ब्राह्मण १ उन्हें पास बुलाकर कानों में कुछ कहता है। सबके चेहरे खिल जाते हैं। रोशनी के आने तक नंदन अँधेरे मंच पर टहलता हुआ। उत्तरीय एवं माथे पर

भभूत ! विचार मग्न मुद्रा में ।

नंदन : तिरुप्पनकूर तो आ गया । अब उस देवदासी को कैसे ढूंढूं ।

टहलता है, मंच के पीछे आने-जाने वालों का कोलाहल । वह इधर-उधर देखता है ।

नंदन : यह भेस भी उसी देवदासी के लिए है ।

उत्तरीय की ओर संकेत करता है ।

नहीं तो चमार कैसे प्रवेश पाए इस नगर में ?

कुत्तों के भौंकने का स्वर ।

कुत्ता जा सके पर चमार नहीं ।

कुत्ता साच्छात भैरव जी जो है !

और चमार ? कुत्ते से भी गया बीता ।

उत्साह के साथ ।

वो रही वह देवदासी ! माँ, ओ माँ···

वह मुड़ती है ।

नंदन : नंदन है मेरा नाम ।

देवदासी : कहो क्या है काम ?

नंदन : सुन्दरता का दास हूँ,

नाम है नंदन ।

वह उसे प्रश्नवाचक दृष्टि से देखती रहती है ।

नंदन : आप से एक बात पूछूं ?

वह उसके पास आती है । वह चौंककर पीछे हटता है ।

नंदन : शरीर तो जनमा है गंदगी में,

पर मन खोजता है सुन्दरता ।

वह उसे घूरती है । जैसे उत्तर नहीं मिल रहा ।

नंदन : शरीर के लिए जात-पाँत सब मानते हैं । पर मन कभी मानता है यह बंधन ?

देवदासी : आप कहना क्या चाहते हैं ? मैं समझी नहीं ।

नंदन : धन्य भाग्य जो सुन्दरता को समझ सकूं ।

देवदासी : सुन्दरता ? कैसी ? किसकी ?

नंदन : आपकी ! आपके नृत्य की ।

आपके भगवान की ।

देवदासी : आप कौन हैं ? मैंने किसी चमार को आज तक इतना सजग नहीं देखा ?

नंदन : बस जात का हूँ मारा

सौंदर्य की समझ है,

पर बोलने में हारा ।

देवदासी : आप इतना सुन्दर कैसे बोल लेते हैं । मैंने तो इस जन्म में ऐसा पुरुष नहीं देखा, जो ऐसी सुन्दर बात करे ।

नंदन : बस किरपा है आपकी सुन्दरता की ।

देवदासी : मेरे शरीर की ?

नंदन : नहीं, सुन्दरता तो शरीर में नहीं, देखने वाले के मन में है ।

देवदासी : आप बातें सुन्दर करते हैं ।

नंदन : आपके नृत्य ने बोलना सिखा दिया और आपके भगवान ने गाना ।

देवदासी : आप गाते भी हैं ?

नंदन : गाऊँ ?

वह सिर हिलाती है। वह गाता है।

कनक सभागत···

गीत की लय में वह खो जाती है। कुछ देर मौन। वह उसकी ओर आती है।

नंदन : अरे रे, पास मत आइए;

देवदासी : क्यों ?

नंदन : हम तो जात के चमार हैं।

वह हँसती है।

नंदन : आप हँस रही हैं !

देवदासी : अभी-अभी तो आपने कहा था कि शरीर भले ही गंदी जाति का हो, मन की कोई जाति नहीं होती। बस इतने में ही शरीर का ध्यान फिर आ गया ?

मुस्कराती है।

आप भूल क्यों नहीं जाते कि आप चमार हैं ?

नंदन : पर लोग तो सरीर ही देखते हैं न, और चमार नंदन के साथ इसे जोड़ लेते हैं।

देवदासी : मैंने जब नृत्य किया था, तो क्या देखा था आपने ? मेरा शरीर ?

नंदन : नहीं···।

देवदासी : तो फिर ?

नंदन : नटराज ! आप तो नटराज हो गयी थीं।

देवदासी : अब आप किसे देख रहे हैं ?

अभिरामी को या नटराज को;

नंदन : क्या कहा ? अभिरामी ?

बातें करते हुए दोनों समीप आ जाते हैं।

नंदन : अभिराम हो या नटराज ! आँखिन में तो बस सुन्दरता बस गयी है।

अभिरामी : चमार हो या ब्राह्मण ! सुन्दरता को अनुभव करने वाले जब हों, तभी सुन्दरता सार्थक होती है।

नंदन : उस रात को··· (हिचकिचाता है)

अभिरामी : कहिए ।

नंदन : एक इच्छा मन में उपज गयी।

अभिरामी : क्या ?

नंदन : तिरुप्पनकूर के मंदिर के भीतर जाकर दरसन करना है। कोई सहायता···। आप मंदिर की देवदासी हैं। आप सहायता कर सकती हैं।

अभिरामी : (चौंककर) कौन ? मैं ?

नंदन : हाँ, आप ! मैं अकेले नहीं आऊँगा। अपनी बस्ती वालों को भी साथ लेता

आऊँगा। तनिक वे भी देख लें कि ब्राह्मणों के देवता कितने सुन्दर होते हैं।

अभिरामी : मैं आपको मंदिर के भीतर कैसे लिवा जाऊँ?

नंदन : सो तो मैं नहीं जानता। आप सब कर सकती हैं।

अभिरामी : (सूखी मुस्कराहट के साथ) मैं समझती हूँ, आप क्या कहना चाहते हैं। हाँ, मैं तिरुप्पनकूर के मुख्य पुजारी की रखैल हूँ। क्या आप चाहते हैं, मैं उसका लाभ उठाऊँ?

नंदन : (कुछ खीझकर) नहीं, मैं यह नहीं चाहता।···हम बाहर से भी दरसन कर सकते हैं मगर वह बैल रास्ता रोक लेता है।

अभिरामी : आपका मतलब नंदी से है न!

नंदन : हाँ···हो सकता है, यह जात पाँत का ही प्रतीक हो।

अभिरामी : आप भूल क्यों नहीं जाते कि आप चमार हैं। क्यों? पर क्या आप जानते हैं कि मेरी जाति क्या है?

नंदन : आप देवदासी हैं।

अभिरामी : सच कहूँ, देवदासी नाम की कोई जाति ही नहीं है। हम सोने की शृंखला में बंधी दासियाँ हैं। क्या आप सोचते हैं, मुझे यह सब अच्छा लगता है?

कुछ देर मौन।

दूसरे किनारे पर खड़े होकर, आप मंदिर की संस्कृति के हरेपन का भ्रम पाल रहे हैं। पर इससे आपकी जाति के लोगों का सुधार हो, तो···

नंदन : सच तो यह है कि वे इसके बाद जानेंगे कि उन्होंने क्या खोजा है। जब तक सुन्दरता को नहीं देखेंगे तब तक वे नहीं जानेंगे। और···

अभिरामी : (रोक कर) ठीक है, ठीक है। आप कल रात को आइए! मैं उस बूढ़े से मंदिर की चाबी लेने का प्रयास करूँगी।

अँधकार।

मंच पर प्रकाश। मंच के बीचों-बीच चार स्त्री-पुरुष दो पंक्तियों में खड़े हैं। बीच में एक बड़ा-सा काला पत्थर। जिस पर नाक, कान, आँख के निशान हैं। गीत नृत्य प्रारम्भ होता है। ताल के लिए ढोल।

पुरुष : हंडियों में पके चावल सेला
जलती आँखों वाले ओ देवा :
तेरी प्यास बुझाने, ताड़ी दें चढ़ावा
अब सुखी करो हमको हे, देवा!

स्त्रियाँ : हाँ···हाँ···हाँ, हे ले लो-ले लो—

पुरुष : हाथों में हंडिया हो
पाँवों में माटी हो।
टेंट में सुपाड़ी हो, हो हो···

स्त्रियाँ : हाँ, हाँ···हे ले लो हे ले लो···

पुरुष : खेतों को जोतें हम,
बीज को बोयें हम,
पानी से सींचें हम,

मचान ऊँची तानें हम,
रखवाली करें हम,
पक जाए धान जब,
फसल काटेंगे हम,
धूम मचायेंगे हम···

नृत्य की गति तीव्र होती जाती है। नंदन का प्रवेश, पर किसी का ध्यान उस पर नहीं जाता।

नंदन : (**गुस्से में**) बंद करो यह सब !

नृत्य रोककर सभी आश्चर्य से उसे देखते हैं।

नंदन : अरे, जनम लिया काहे को ?

पुरुष : ताड़ी पीने को।

पुरुष २ : पूजा करने को।

पुरुष ३ : धूम मचाने को।

पुरुष ४ : खेत की रखवाली को।

नंदन कान बंद कर लेता है।

नंदन : बस, बस बहुत हो गया ! माटी में लोटने वालो···।

स्त्री १ : माटी से उपजे अनाज !

स्त्री २ : बैल चाटें पुआल।

स्त्री ३ : आदमी को चाहिए पेट।

स्त्री ४ : पेट को चाहिए रोटी।

नंदन : पेट को चाहिए रोटी ! ठीक है, पर मन को ;

पुरुष १ : चमार का मन तो ई पेट ही है। अउर का···

नंदन : यह तो जानवर के लिए है। तुम तो आदमी हो।

पुरुष २ : जानवर चमार सब एक।

नंदन : नहीं, जानवर चमार से है अच्छा।

पुरुष ३ : वो कैसे ?

नंदन : अरे मंदिर माँ तो जा सकत है। पर तुम···।

पुरुष ४ : जानवर के तो न जात न पाँत—

नंदन : बस चाहिए एक मन।

स्त्री १ : वो क्यों ?

नंदन : सोचने को। आदमी, जानवर से नीच है क्या ?

स्त्री २ : ये तो जनम का दोष है।

नंदन : नहीं धन की माया है।

नंदन : बदलें अपने को पहले।

स्त्री ३ : तो जनम कहाँ से बदलें ?

स्त्री ४ : बदलें कैसे अपने को ?

नंदन : जायेंगे मंदिर के भीतर !

सब : अरे यह तो पाप है पाप।

नंदन : सुंदरता को देखें हम,
सब : फिर ?
नंदन : हम भी हो जाएँगे सुंदर।
स्त्री १ : यह सुंदरता का होवे ?
नंदन : आदमी···।
स्त्री २ : हम भी हैं आदमी।
नंदन : नहीं जानवर हैं, हमें बनना है आदमी।
स्त्री ३ : फिर बनें कैसे आदमी ?
नंदन : भूल जाओ कि हम हैं चमार।
स्त्री ४ : जात कौनो सोच में तो नाहीं है।
नंदन : कुछ तो वह उँची जात वाले कहें, कुछ हम ही सोचें।
पुरुष १ : हम तो हैं दास। कहें कैसे यह बात।
नंदन : कौन किसका दास ?

वह गाता है। सब आश्चर्य से उसे देखते हैं।

ना मैं किसी का चेरा,
ना मैं किसी का चेरा,
मैं तो संकर का चेरा···
वही जगत को पाले, मन के बंधन खोले,
मैं तो संकर का चेरा···
वही है सुंदर, वही है ताल, वही है लय।
मैं तो उसी का चेरा, मैं तो संकर का चेरा।

नंदन : समझे ? दास हैं हम भगवान के, आदमी के नहीं।
पुरुष २ : गाना तो तोहार नीक है। कहाँ से पढ़े हो।
नंदन : उस सुंदर देवता को भजो तो तुम भी सुंदर गा सकते हो।
पुरुष ३ : मंदिर के भीतर कइसे जाएँ। चमार को कौन जाने देगा।
नंदन : एक बात बताऊँ। रोटी और पेट भूल कर आ सकते हो।
पुरुष ४ : हाँ हाँ, पेट पर लात तो नहीं मारेगा वो !
नंदन : तिरुप्पनकूर चलकर देखो। फिर समझोगे सुंदरता क्या है !
सब : कब चलें ?

नंदन उन्हें पास बुलाकर कान में कुछ कहता है। अंधकार।

प्रकाश फैलता है। चारों ब्राह्मण, दो ठाकुर उम्र लगभग पचास वर्ष, परस्पर बातें कर रहे है। ठाकुर के माथे पर भभूत, कानों में कुंडल, रेशमी दुशाला ओढ़े हैं।

ठाकुर १ : चमारों का हाल जानते हैं ?
ब्राह्मण १ : सब नंदन का काम है ?
ठाकुर २ : चमार का बच्चा पंचायत करने लगा।
ठाकुर १ : सब भजन करने लगे हैं। काम कोई नहीं करता।
ब्राह्मण २ : ठाकुर ठीक कहते हैं। चमारों के पंख लग गए हैं।

ठाकुर १ : (ठाकुर-२ से) क्या आपके खेत में भी ?

ठाकुर २ : हाँ !

ठाकुर १ : देखा आपने यह अन्याय बस, शीघ्र कीजिए कोई उपाय।

ब्राह्मण २ : हमने मंत्रणा की है। आपके पास सलाह लेने आए हैं।

ठाकुर १ :
ठाकुर २ : } क्या ?

ब्राह्मण ३ : नंदन का भजन ही उसका विनाश करेगा।

ठाकुर १ : यह भी कोई बात हुई। उस चमार को मार डालना होगा।

ठाकुर २ : हाँ, हाँ, मार डालना होगा।

ब्राह्मण ४ : लाठी से नहीं, बुद्धि बल से जीतना होगा।

ठाकुर १ : बुद्धि बल आप जानते हैं ?

ठाकुर २ : केवल मंत्र बल ही जानते हैं।

ब्राह्मण १ : मंत्र और तंत्र एक ही हैं।

ठाकुर १ : न समझ आए तो वह हुआ मंत्र

ठाकुर २ : समझ आए तो वह हुआ तंत्र।

ब्राह्मण २ : चमार, ब्राह्मण होना चाहता है, उसको यज्ञोपवीत पहना दिया जाए।

ठाकुर १ : क्या उससे ?

ब्राह्मण १ : वही उसके लिए है विनाश पाश।

ठाकुर ३ : कैसे ?

ब्राह्मण ४ : नंदन यह सोचने लगे कि भगवत् कृपा उस पर है।

ठाकुर १ : तो उससे क्या होगा ?

ब्राह्मण २ : वह ब्राह्मण बनना चाहता है हम उसे भक्त बनाना चाहते हैं।

ठाकुर २ : कुछ समझे नहीं।

ब्राह्मण ३ : भक्त बनने पर वह अपने को सिद्ध मानने लगेगा।

ठाकुर १ : सिद्ध ?

ब्राह्मण ३ : हाँ अतिमानवीय कर्म करने वाला।

ठाकुर २ : फिर ?

ब्राह्मण ४ : फिर ? हमारा कर्म अमल है ? योजना सफल है।

ठाकुर १ : नंदन के पास है भक्ति।

ठाकुर २ : ब्राह्मण के पास है बुद्धि।

ब्राह्मण १ : नंदन को मिलेगी मुक्ति।

अंधकार। प्रकाश के फैलते ही दो लड़कियाँ अपने-अपने बाँये हाथ की कनिष्ठा को ऊपर की ओर मिलाती हुई, मंदिर के गुंबद का आकार बनाए, खड़ी हैं। आगे एक पुरुष नटराज की प्रतिमा की अनुकृति में बाँया पैर ऊपर उठाए नृत्य की मुद्रा में खड़ा है। नंदन मंच के दाँई ओर गाता हुआ नृत्य कर रहा है चारों स्त्रियाँ तालियाँ बजाकर ताल देती हुई गाती हैं।

हर हर शंकर भक्त हृदम्बर
वास चिदम्बर नाद विभो

दुरित निरंतर, दुष्ट भयंकर
दर्शन शंकर दिव्य तनो।
दशशत कंदर, शेष हृदन्तर
शंकर रक्षित पार्थ गुरो
जय जय हे नटराज पते
शिव भाग्यसंकृतिमुपार्जयमे।···
नर जन शंकर पिंग जटा धर
कुठलसत्कर गौरतनो
वरद पतंजलि सत्कृति सन्नुत
मृगचरमामृत पुष्पपते
डमरुक वादन बोधित सर्वकला
अखिल वेद रहस्य तनो
जय जय हे नटराज पते···
हर हर शंकर···

गीत की समाप्ति पर एक बूढ़ा व्यक्ति दायीं ओर आकर खड़ा होता है। काला शरीर, सिर पर साफ़ा और हाथ में लाठी। उनकी ओर क्रोध से देखता है। गीत समाप्त होते ही उनके पास आता है।

बूढ़ा व्यक्ति : रुको, रुक जाओ।

नटराज की मुद्रा में खड़ा व्यक्ति चौंककर सीधा हो जाता है और दोनों लड़कियाँ हाथ खींच लेती हैं।

नंदन : क्रोध क्यों कर रहे हैं, बाबा? धीमे बोलिए।

बूढ़ा : बस्ती के लोगान को भड़काय रहे हो? चुपचाप कैसे रह लूं?

नंदन : वे साफ़ सुथरे हैं, कोई पाप है? अच्छा गा रहे हैं, यह भी कोई पाप है?

बूढ़ा : अरे, माटी में लोटने का भाग लाए हैं। गंगा असनान से क्या होगा?

स्त्री १ : समय अब बदल गवा है, बाबा तनिक आँखें तो खोलो।

स्त्री २ : नंदनवा की बात सुनोगे तो सुख मिलेगा सुख!

स्त्री ३ : सुंदरता को भजो और गंदगी को तजो।

स्त्री ४ : संकर बोलो, संकर बोलो
दास नहीं हम, अब मुँह खोलो

बूढ़ा : ई चमारिनें भी गाने लगीं? सत्यानाश समझ लो अब हमरी जात का।

वह गाता है।

संकर संकर मत भजो रे, जात अपनी मत तजो रे।
हम हैं चमार, हम हैं चमार···
ठाकुर पिटवायेगा, काटेगा मजूरी, ताड़ी क्या, रोटी की होगी मजबूरी।
हम हैं चमार, हम हैं चमार···
अपने देवा का संग न छोड़ो, संकर संकर कहना छोड़ो।
खेत में जाकर जोतो बोओ, पीकर ताड़ी, तन के सोओ।
संकर से मत नेह बढ़ाओ, अपने देवा को ताड़ी चढ़ाओ!

हम हैं चमार, हम हैं चमार···
मिरदंग फेंको ढोल बजाओ, जो कुछ जानो उसको गाओ।
नाचो झूमो ताड़ी चढ़ाओ, संकर से मत नेह बढ़ाओ। हम हैं चमार···
संकर संकर मत भजो रे···

बूढ़ा : मंदिर में ही भगवान हैं क्या ? अरे अपने ई पत्थर देवा भी तो भगवान हैं।

नंदन : बस यही बहुत है क्या ? सुंदरता नहीं चाहिए।

बूढ़ा : हवा में झूलने वाली धान की फसल सुंदर नहीं है क्या ? बोलो ?

नंदन : धान कहीं मुक्ति देगा ?

बूढ़ा : ई मुक्ति क्या बला है।

नंदन : स्वतंत्रता।

बूढ़ा : और ई स्वतंत्रता ?

नंदन : यही कि ठाकुर के दास नहीं। हम स्वयं ठाकुर हैं।

बूढ़ा : बाँमनों के देवता के बिचौलिए हैं। कहीं अपने देवा के है कोई ? बोलो ?

नंदन : बिचौलिए ?

बूढ़ा : तुम अपने देवता को छू सकत हो। पर बिचौलिया, बाँमनों को भी नहीं छूने देता।

नंदन : क्या कह रहे हैं ?

बूढ़ा : मंदिर में घुस गए तो तुम देवता कैसे हो जाओगे ?

नंदन : देवता के पास जाने पर, पुजारी कैसे बन सके बिचौलिया ?

बूढ़ा : कब बनोगे देवता ?

नंदन : बस यह शरीर जल जाए।

बूढ़ा : मरना है, मुक्ति
यही है क्या भक्ति ?

हँसता है।

अरे ताड़ी पियो रे,
ताड़ी।
देवता खुद दिखेंगे, ताड़ी पियो रे।

वह लड़खड़ाता हुआ नाचता है।

स्त्री १ : ओ बूढ़े, मुछवा तो सफ़ेद हुई गवा, अभी तलक इच्छा नाहीं मरी क्यों ?

बूढ़ा : खेतों में काम करने वाला सरीर है। अरे ई के लिए कौनो रोक टोक नाहीं।

लड़खड़ाता हुआ नाचता है।

स्त्री २ : अरे बाँमन के देवता को भजके देखो तो, यही मन पर रोक लग जाइब।

बूढ़ा : अरे, मन ही मार लइबै तो फिर जनम काहे को लें।

स्त्री २ को गले लगाता है, वह हिकारत से हट जाती है।

स्त्री ३ : जानवर जैसा जनम, मन को रोके है भला ?

बूढ़ा : अरे जानवर सुखी तो है न ? नंदन की नाँईं रोता तो नाहीं है। देवता के दरसन से क्या होगा ? धरती का दरसन कर लो बहुत है।

पीने की मुद्रा में चार पुरुष लड़खड़ाते कदमों से नाचने लगते हैं।

पुरुष १ : गाँव का रखवाला।

गाँव का देवता हूँ मैं।

सब : अहा···

पुरुष २ : पगड़ी बाँधने वाला
लँगड़ा लखना हूँ मैं।

सब : अहा···

पुरुष ३ : कुदाल रखने वाला
चमार छेदी हूँ मैं।

सब : अहा···

पुरुष २ : मुरगी पर से
चउर परसें
ताड़ी परसें। हो। हो।
बस्ती ही सरग है
झील ही कैलाश है,
माटी ही देवी है,
और सब बिरथा है!···
खेती बाड़ी करें हम,
झूठ कभी न बोले हम,
भय न रहे, जियेंगे हम,
और सभी बिरथा है गोरिया।
हाथों में हंडिया हो,
पावों में माटी हो,
ज़बान पर इक तान हो,
पास में इठलाती गोरिया···

लोग स्वेच्छा से तालियाँ पीटते हैं बूढ़ा उनके साथ नाचता है, नंदन मानो चौंक जाता है। तभी चारों ब्राह्मणों का प्रवेश। उन्हें देखते ही गीत-नृत्य रुक जाता है। सब उन्हें प्रणाम करते हैं। नंदन और नंदन के साथी भी कुछ देर बाद प्रणाम करते हैं।

बूढ़ा : चमारों की बस्ती माँ बाँमन।

ब्राह्मण १ : जहाँ पर नंदन हो, वह चमारों की बस्ती? नहीं, नहीं, यहीं है मंदिर।

सब चौंकते हैं। नंदन अवाक् सा खड़ा है।

ब्राह्मण २ मंदिर के देवता ने स्वप्न में दर्शन दिए थे।

बूढ़ा : का कहा उन्होंने?

ब्राह्मण ३ : नंदन उनका सच्चा भक्त है,
उसे भजो तो सब कुछ मुक्त है।

बूढ़ा : सच्ची?

सभी नंदन को देखते हैं।

ब्राह्मण ४ : नंदन का जन्म सफल है, हमारी आँखें धन्य हैं।

नंदन : सपने में आए थे?

ब्राह्मण १ : तुम्हें विश्वास नहीं होता।

बूढ़ा : देवता ने ठीक ही कहा होगा।

ब्राह्मण २ : ऋषि मुनि को जो अप्राप्य है वह नंदन को प्राप्य है यह सत्य है कि वह भक्त है यह स्पष्ट है कि वह मुक्त है।

बूढ़ा : चमारों की बस्ती में इसकी ऐसी बातें ?
चमारों के लिए कहीं हैं ये बातें ?

ब्राह्मण ३ : नंदन की मधुर वाणी ईश्वर की दिव्य वाणी नंदन जो करे वह अद्भुत है। आप ही इस मोती के जन्म दाता सीप हैं।

बूढ़ा : चलो नंदन को भजें।

सब नंदन को प्रणाम करते हैं। वह चिंता मग्न है।

अंधकार।

प्रकाश के फैलते ही पुजारी मंच पर प्रवेश करता है। आँखों के ऊपर हथेली की ओट देकर इधर-उधर कुछ खोज रहा है। ब्राह्मणों का मंच के दाँयीं ओर से प्रवेश।

ब्राह्मण १ : आप किसे ढूँढ़ रहे हैं ?

पुजारी : मैं तिरुप्पनकूर शिव मंदिर का पुजारी हूँ।

ब्राह्मण २ : प्रणाम, आपको किससे मिलना है।

पुजारी : कोई भी हो, जो बस मेरी पीड़ा को बाँट ले।

ब्राह्मण ३ : पीड़ा ?

पुजारी : इस गाँव में नंदन नाम का कोई चमार है ?

ब्राह्मण ४ : हाँ हाँ है, कहिए !

पुजारी : वह देव दर्शन चाहता है।

ब्राह्मण १ : कहाँ ?

पुजारी : तिरुप्पनकूर में। अभिरामी से कदाचित् याचना की है उसने।

ब्राह्मण २ : उस देवदासी से ?

पुजारी : हाँ, और अब वह हठ कर रही है, कि आधी रात को जब पूरा गाँव निद्रा में मग्न हो, मंदिर में प्रवेश दिया जाए।

ब्राह्मण ३ : हूँ ! आगे कहिए।

पुजारी : मैंने उसे लाख समझाया। पर वह समझना नहीं चाहती। हठ किए बैठी है।

ब्राह्मण १ : क्यों ?

पुजारी . क्यों-क्या ?

ब्राह्मण २ : आप समझा नहीं पाये क्या ?

पुजारी : तुम तो जानते हो मैं उससे लगाव रखता हूँ। पिता की सी भावना…

ब्राह्मण ३ : हाँ, मैं जानता हूँ।

पुजारी : क्या जानते हो ?

ब्राह्मण १ : पिता की सी भावना।

पुजारी : (गुस्से में) यह व्यर्थ की बातें हैं।

ब्राह्मण २ : व्यर्थ की हैं या नहीं यह तो लड़की को देखकर ही बताया जा सकता है।

पुजारी : ओछापन मत दिखाओ। मुझे एक मार्ग बताओ। यदि चमार मंदिर के भीतर घुस आया तो कितनी बातें फैल जाएँगी।

ब्राह्मण २ : आप यहाँ क्यों आये हैं?

पुजारी : चमार को समझाने आया हूँ।

ब्राह्मण ३ : नंदन आपकी बात नहीं सुनेगा।

पुजारी : क्यों?

ब्राह्मण १ : नंदन को मैं जानता हूँ।

पुजारी : चमार को इतना साहस? कोई पूछने वाला नहीं है क्या?

ब्राह्मण १ : पूछने से क्या लाभ? उसे बुद्धि बल से जीतना होगा।

पुजारी : क्या कह रहे हैं आप?

ब्राह्मण २ : आप एक नंदन का दमन कर दीजिए, सौ निकल पड़ेंगे।

पुजारी : तो फिर?

ब्राह्मण ३ : नंदन को स्वेच्छा से रहने दीजिए। उसे भक्त बनाकर उसका विनाश करेंगे।

पुजारी : मैं कुछ समझा नहीं।

ब्राह्मण ४ : बुद्ध की कथा जानते हैं?

पुजारी : हाँ, सनातन धर्म का विरोध किया था।

ब्राह्मण ४ : उसका धर्म कहाँ गया?

पुजारी : उसके साथ ही समाप्त हो गया।

ब्राह्मण २ : कैसे?

पुजारी : आप ही बताइए!

ब्राह्मण ३ : शत्रु का शत्रु कौन है, आप जानते हैं?

पुजारी : कहिए।

ब्राह्मण ४ : शत्रु को स्वीकार करना।

पुजारी : वैसे ही···।

ब्राह्मण २ : नंदन की साधना सफल हो, हमारी यह योजना अब प्रारम्भ होगी।

पुजारी : उससे क्या होगा?

ब्राह्मण ३ : यही उसके दुख का कारण होगा।

पुजारी : तात्पर्य?

ब्राह्मण १ : बुद्ध को बना दिया अवतार। मृत्यु के बाद उसका दर्शन हुआ निस्सार।

पुजारी : कैसे?

अंधकार!

प्रकाश के आते ही नंदन और चार पुरुष धीमे से मंच पर प्रवेश करते हैं, उनके आगे है अभिरामी। मंच के पीछे, पिछले परदे पर लिंग की प्रतिच्छाया।

नंदन ध्यान मग्न है। गाता है।

शिवो कर्ता शिवो भोक्ता
शिवो सर्वः मिदम् जगत्
शिवो यजति यज्ञश्च
सोऽहमस्सि सदाशिवो ।
भीषणाकार भैरव भयंकर
भूत प्रेत प्रमथा छिपति विपत्ति हरता ।
मोह मूषक मार्जार,
संसार भय हरन तारन तरन अभय करता ।।
अतुलाबल विपुल विस्तार विग्रह गौर अमल अति धवल धरनी धरामं ।
सिरमि संकुलित वल जूटपिंगल जटा, पटला सत कोटि विद्युच्छटामं ।।

सभी हाथ जोड़े खड़े हैं सहसा मंदिर का घंटा बजता है। भीड़ में एक आदमी थर-थर काँपने लगता है, हाथ पाँव पटकता है। सभी उसे अचम्भे के साथ देखते हैं।

काँपता व्यक्ति : नंदन, तुम हमारे भक्त हो। तुम्हारे लिए असाध्य अब कुछ भी नहीं। तुम सिद्ध बनकर मुझे प्राप्त करोगे।

सभी आश्चर्यचकित हो जाते हैं। अभिरामी सोच में है। नंदन की आँखों में हर्ष के आँसू।

नंदन : क्या मैं सचसुच इतना बड़ा भक्त हूँ ?

अभिरामी : मेरी समझ में नहीं आता।

नंदन : क्यों ? क्या आपको संदेह है ?

अभिरामी : बूढ़े पुजारी ने पहले तो चाबी देना अस्वीकार कर दिया था। बाद में स्वयं दे दी।

नंदन : तो क्या ?

अभिरामी : उसने कहा था कि ईश्वर उसके स्वप्न में आए थे और तुम्हें अपना श्रेष्ठ भक्त बता गए हैं। क्या यह वही है। (**काँपते व्यक्ति की ओर इशारा करती है**) पर मुझे पता तो चले…।

नंदन : मेरे गाँव के ब्राह्मणों ने भी कहा था कि ईश्वर उनके सपने में आए थे और कहा था कि उन्होंने मुझ अपना भक्त बना लिया है और अब आप कह रही हैं कि यही बात पुजारी जी ने भी कही है।

काँपता व्यक्ति : यह मेरा अपमान है। नंदन, तुम्हें मुझ पर विश्वास नहीं होता ? क्या तुम समझते हो कि स्वप्न में दर्शन देने के अतिरिक्त मेरे पास कोई काम नहीं ?

नंदन : नहीं, नहीं, ऐसा तो नहीं।

काँपता व्यक्ति : एक बात और कहना चाहता हूँ।

नंदन : कहिए…।

काँपता व्यक्ति : अभिरामी को अपनी स्त्री के रूप में स्वीकार करो।

नंदन और अभिरामी एक दूसरे को देखते हैं।

काँपता व्यक्ति : मैंने पुजारी को स्वप्न में दर्शन देकर बता दिया है कि अब अभिरामी तुम्हारे साथ ही रहेगी।

नंदन : मैं उसे अपनी बस्ती में कैसे लेकर जाऊँगा ?

काँपता व्यक्ति : तुम मेरे भक्त हो और अभिरामी मेरी भक्तिन। मैं आज्ञा देता हूँ इसे अपनी बस्ती में ले जाओ। यह मेरा प्रसाद है। इसे स्वीकर करो।

नंदन अभिरामी के पास जाता है और उसका हाथ पकड़ लेता है वह प्रसन्न दिखती है। धीरे-धीरे अंधकार।

—मध्यान्तर—

अंक दो

मंच पर दोनों ठाकुरों के साथ ब्राह्मणों का प्रवेश।

ठाकुर १ : नंदन को बना दिया महान, अब ?

ठाकुर २ : चमार का देखो विधान, आगे ?

ब्राह्मण १ : थोड़ा धैर्य रखिए। सब मालूम हो जाएगा।

ठाकुर १ : जानते हैं, चमार क्या करते हैं ?

ठाकुर २ : तीन बार शिव का पूजन। बचे समय में खेती-बाड़ी का काम।

ब्राह्मण २ : देवदासी के आने के बाद नंदन के लिए एक नयी समस्या पैदा हो गयी। जानते हैं आप।

ठाकुर १-२ : क्या ?

ब्राह्मण ३ : हाँ, कई लोग ईर्ष्या करने लगे हैं उससे।

ठाकुर १ : हाँ, यह तो बताइए, आपने यज्ञोपवीत तो पहना दिया है। यह छोकरी साथ में क्यों बाँध दी ?

ठाकुर २ : यही बात तो मैं भी पूछना चाहता हूँ।

ब्राह्मण ४ : यदि ऐसा नहीं करते तो नंदन की समस्या का क्या होता ?

ठाकुर १-२ : सचमुच ?

ब्राह्मण १ : अब नंदन के विरोध में एक नया व्यक्ति आ गया है।

ठाकुर १-२ : क्यों भला ?

ब्राह्मण २ : परम्परा का विरोध किया है तो उसका फल भी तो मिला है, अभिरामी के रूप में। ईर्ष्या स्वाभाविक है। नीची जाति वाले परस्पर लड़ें तो ऊँची जात वालों को लाभ ही लाभ है।

ठाकुर १ : वह नया व्यक्ति क्या अकेला है ?

ठाकुर २ : और नंदन के पास लोगों का सहयोग !

ब्राह्मण ३ : तिरुप्पनकूर में जो भी हुआ, वह नंदन की कपोल कल्पना है, ऐसी अफ़वाह फैली है। कुछ लोग चमारों की परम्परा का प्रश्न उठाकर उस नए आदमी का साथ दे रहे हैं। नंदन भगवत् कृपा के भ्रम जाल में है,। उसका विश्वास है, कि वह आकाश भाषित सच था। कुछ दिन और प्रतीक्षा कीजिए, बस नंदन की कथा

समाप्त ।

ठाकुर १ : ब्राह्मण महाराज ! आप भी नंदन का साथ दे रहे हैं, ऐसा दूसरे लोग नहीं सोचते क्या ?

ठाकुर २ : और कोई उसका विरोध नहीं करता क्या ?

ब्राह्मण १ : यदि व्यवस्था का विरोध कोई करता है तो व्यवस्था उसे स्वीकार भर कर ले, विरोधी आपस में ही बँट जायेंगे। एक नया समूह, उसे व्यवस्था का खरीदा हुआ दास समझकर उसके नेतृत्व का विरोध करेगा। इस समय यही हो रहा है। प्रतीक्षा कीजिए, नंदन की कथा समाप्त हो जाएगी।

हँसते हैं, तभी चमारों की बस्ती के चार व्यक्तियों का प्रवेश।

चारों : (**एक साथ**) प्रणाम !

ठाकुर १ : क्या बात है ? यह प्रणाम क्यों हो रहा है ?

ठाकुर २ : किसलिए आए हो ? बताओ तो !

१ : नंदन को समझा दीजिए सरकार।

२ : सब बंटाढार हुई गवा।

३ : ई कौनो अपनी रीत है क्या ?

४ : अरे, कुल का सत्तानास हुई जाई।

१ : सिव सिव चिल्लात है।

२ : अउर जीभ निकाल के हँसता है।

३ : मंदिर मंदिर कर हमरे पिरान संकट में डाल दिए हैं।

४ : सब को लिवाय जात है।

१ : बम भोले का नाम रटत है।

२ : सरीर में राख मलत है।

३ : लगता है, बौराय गवा है।

४ : सबसे झगड़ा मोलत है।

१ : अउर ऊ के साथ, वो कुलच्छिनी।

२ : कहता है, ई तो देवी है।

३ : ऊ कहती है, नंदन हमार बाँमन हैं।

४ : ऊ छमिया सारी बस्ती माँ नाचत फिरत है।

ठाकुर १ : सुना ब्राह्मण महाराज।

ठाकुर २ : स्पष्ट कीजिए।

१ : बाँमन से काहे पूछत हो।

२ : नंदनवा के ई तो रखवारे हैं।

३ : कछु समझ का नाहीं आवत।

४ : बाँमन को कौन सा काम होई।

ब्राह्मण केवल मुस्कराते हैं।

ठाकुर १ : ब्राह्मण से कैसा क्रोध ?

ठाकुर २ : नंदन का करो विरोध।

ब्राह्मण १ : आपकी सारी बातें व्यर्थ।

ब्राह्मण २ : इसमें नंदन का होगा नहीं अनर्थ।
ठाकुर १-२ : क्यों ?
पुरुष १-२-३ : देख लेंगे।
ब्राह्मण ३ : (व्यंग्य से) क्या कर लोगे।
१ : पाँव काट डारिब, हाँ।
२ : भजन, कीर्तन रोकिब, हाँ।
३ : आँखिन फोड़ डारिब !
४ : बस, आप आज्ञा दइ दो !
ब्राह्मण १ : देवता की अनुमति चाहिए।
१ : बाँमन देवता की आज्ञा हम न चाही।
२ : बस, हमरे देवा की हुई जाए आज्ञा।
३ : हमरे कलुआ देवा की आज्ञा चाही।
४ : उस वीरा देवा की आज्ञा मिल जाई।
ब्राह्मण १ : ब्राह्मण देवता से तुम्हारे देवता श्रेष्ठ है क्या ?
४ : हाँ ऽऽऽ।
ब्राह्मण २ : भरतनाट्यम से तुम्हारा लोक नृत्य श्रेष्ठ है क्या ?
४ : हाँ ऽऽऽ।
ब्राह्मण ३ : तो फिर हो जाए प्रतियोगिता।
४ : प्रतियोगिता।
ब्राह्मण ४ : हाँ हाँ, होड़। हमारे भरतनाट्यम और तुम्हारे लोक नृत्य के बीच। दोनों ठाकुर पंच बनेंगे। देखो तुम्हारे आदमी किसे अधिक पसंद करते हैं, विजय किसकी होती है।
पुरुष १ : ठीक है हम मानत हैं।
२ : पता चल जायेगा।
३ : अभिरामी हार जाय, बहुत है।
४ : नंदनवा से हमार बदला पूरा हुई जाई।
ब्राह्मण १ : क्यों ठाकुर भाइयों ठीक है न ?
ठाकुर १-२ : हाँ, हाँ।

अंधकार।

प्रकाश आने पर।

नंदन : महाराज !
चारों ब्राह्मणों का दाईं ओर से प्रवेश।
ब्राह्मण १ : नंदन ? कहो क्या बात है ?
नंदन : यह मैं क्या सुन रहा हूँ !
ब्राह्मण २ : किसकी बात कर रहे हो ?
नंदन : यही होड़।

ब्राह्मण ३ : ओह, इसी होड़ की बात करने हम तुम्हारे पास आ रहे थे।

नंदन : पर यह होड़ किसलिए ?

ब्राह्मण ४ : अभिरामी जीतती है तो तुम्हारे विरोधी भी तुम्हें स्वीकार कर लेंगे।

नंदन : पर अभिरामी नहीं चाहती।

ब्राह्मण १ : क्यों ? तुम्हारे आदमी, तुम्हारी महानता समझ लेंगे। समझ लेंगे कि आदमी केवल जन्म से महान नहीं होता।

अभिरामी का प्रवेश।

ब्राह्मण २ : अभिरामी तुम इस प्रतियोगिता के विरुद्ध हो।

अभिरामी : हाँ, हूँ।

ब्राह्मण ३ : पर क्यों ?

अभिरामी : लोक नृत्य और भरतनाट्यम की कोई तुलना हो ही नहीं सकती। क्योंकि स्वयं मुझे लोक नृत्य अच्छा लगता है, और उनके कुछ आदमियों को मेरा भरतनाट्यम। दो तरह की नृत्य शैलियों के बीच कैसी तुलना ?

ब्राह्मण १ : क्यों नहीं ? प्रतियोगिता केवल यह सिद्ध करने के लिए है कि ईश्वर किसकी तरफ़ है ?

अभिरामी : ईश्वर को इससे कुछ नहीं लेना।

ब्राह्मण २ : तुम क्या यह सोचती हो कि हम नंदन को ग़लत मार्ग पर ले जा रहे हैं ?

अभिरामी : कह नहीं सकती।

ब्राह्मण ३ : (**गुस्से में**) नंदन, तुम्हारी स्त्री हमारा अपमान कर रही है। वह हमारे ईश्वर का अपमान कर रही है। मेरी समझ में नहीं आता इसका अन्त क्या होगा।

नंदन : क्षमा कीजिए। अभिरामी की ओर से मैं क्षमा माँगता हूँ। पर क्या सचमुच इस होड़ से कुछ लाभ होगा।

ब्राह्मण ४ : क्यों नहीं, तुम्हारे विरोधी कितने हैं ? कुछ ही तो। बाकी तुम्हारे साथ हैं। तुम जीतोगे तो सब तुम्हारी ओर हो जाएँगे। यह मानव मन है। इसमें तुम्हारा लाभ ही लाभ है।

नंदन : होड़ आवश्यक है क्या ? मेरे प्रचार से काम नहीं चलेगा ?

ब्राह्मण १ : विजय, ऐसा शब्द है, जिसे लोग आदर देते हैं। वरना तुम्हारा लक्ष्य पूर्ण नहीं हो सकता। यह समाज की दो रीतियों की प्रतियोगिता है। तुम चाहते हो कि तुम्हारे आदमी नयी रीतियों को अपनायें। यह तभी संभव है जब भरतनाट्यम, लोक नृत्य के मुकाबले में विजयी हो।

नंदन : अभिरामी ! क्या तुम नाच सकोगी ?

ब्राह्मण २ : अगर उसके मन में तुम्हारे लिए आदर है तो अवश्य नाचेगी।

अभिरामी : इनके प्रति मेरा आदर भी एक समस्या है क्या ?

ब्राह्मण ३ : तुम स्वयं हर बात को समस्या क्यों बनाना चाहती हो ?

अभिरामी : मंदिर की संस्कृति सुन्दर है, यह नंदन का विचार है। पर यह उतनी सुन्दर नहीं, यह मेरा विचार है।

ब्राह्मण ४ : तुम नृत्य करोगी या नहीं ?

नंदन : मैं जानता हूँ, वह करेगी।

अभिरामी उसकी ओर देखकर कुछ कहना चाहती है। पर नंदन के विश्वास को देखकर चुप हो जाती है।

अन्धकार।

प्रकाश के फैलते ही अभिरामी मंच पर नृत्य की मुद्रा में खड़ी है। गीत और वाद्य परदे के पीछे। भीड़ का शोर। धीरे-धीरे शोर कम होता है। नंदन बीच में आकर खड़ा होता है।

नंदन : यह समाज की दो संस्कृतियों के बीच की प्रतियोगिता है। ज्ञान और अज्ञान के बीच। मेरा झगड़ा मेरी अपनी रीति से है। उनसे है, जो अज्ञान को पूजते हैं। अगर आप लोग समझने लगें, तो अज्ञान का राक्षस जलकर भस्म हो जाएगा। अभिरामी, उन ऋषियों का अभिनय करेगी, जिन्होंने ज्ञान की अग्नि प्रज्वलित की थी, साथ ही उन राक्षसों का भी अभिनय करेगी, जो उस अग्नि में भस्म हो गए हैं। अब नृत्य देखिए।

ऋषि : यज्ञ की वेदी पर प्रज्वलित अग्नि, हे अग्नि !
असत् शक्तियों का संहार करे अग्नि, हे अग्नि।

असुर : मित्र, तपा रही है, हमें यह अग्नि,
हे अग्नि !
हाय माँ, जलाये हमारा जंगल अग्नि,
हे अग्नि !

ऋषिगण : स्वर्ण से वर्ण वाली अग्नि !
हे अग्नि !
मिथ्यासुर का करे नाश अग्नि,
हे अग्नि !

असुर : इन्द्र देवता को सताया हमने,
ओ माँ !
हमें करती है राख वेदाग्नि,
ओ माँ !

ऋषिगण : आकाश चूम रही है, अग्नि,
हे अग्नि !
ज्ञान कन्या जन्म रही है अग्नि,
हे, अग्नि !

असुर : आज तक साथ रहे, साथ जिये,
ओ माँ !
अब जला रही है वेदाग्नि हमें,
ओ माँ।

ऋषिगण : बन प्रदेश के निर्भय साँड भी अग्नि,
हे अग्नि !

शत्रुओं का करे संहार अग्नि,
हे अग्नि !

असुर : मानुष है निर्बल, सोचा था,
ओ माँ !
वेद का अर्थ जान लिया उसने,
ओ माँ !

ऋषिगण : अग्नि की शक्ति है श्रेष्ठ, अग्नि,
हे अग्नि !
घृत, मधुपान करने आयी अग्नि,
हे अग्नि !

असुर : प्राण त्यागे भाव त्यागे हमने;
ओ माँ !
अब सब कुछ राख हुआ,
ओ माँ !

ऋषिगण : अमर दूत, अमर नाथ, प्रज्वलित अग्नि,
हे अग्नि !
दिया हमें जीवन दान अग्नि,
हे अग्नि !

असुर : हर्षित हो पान करें हम मदिरा,
ओ माँ,
अग्नि में हों भस्म हम फिर,
ओ माँ !

ऋषिगण : देवदूत प्रकट हुए, शत्रु सब दूर हुए
अग्नि, हे अग्नि !
सब कुछ मंगलमय हो, मृत्यु का न भय हो,
अग्नि, हे अग्नि ?

असुर : हर्षित हो गीत गाएँ,
अग्नि हमें यूँ जलाये,
इन्द्र का बढ़े वैभव ओ माँ;

ऋषिगण : देखो वह सूर्य का प्रकाश
अंधकार का हुआ सर्वनाश
युद्ध में हमारी हो विजय
जय हो अग्नि, जय हो अग्नि,
जय हो देव, यज्ञ की जय हो,
जय हो मानव, विश्व की जय हो,
जय हो वेद, अग्नि की जय हो,
अग्नि, हे अग्नि ?

नृत्य समाप्त होने के बाद लोगों के बोलने की अस्पष्ट आवाजें। ठाकुर का

स्वर, शान्त, 'शान्त ओ जाओ।'

अंधकार।

प्रकाश फैलता है, सात पुरुष घेरा बनाए खड़े हैं। उनके बीच काले रंग का पत्थर जिस पर माला चढ़ाई गयी है। पार्श्व स्वर में ढोल। नक्कारा जैसा कोई वाद्य ! पहले नक्कारा फिर ढोल।

गीत : खेतों को सीचें हम, आओ,
ताड़ी का बरसा रे पानी, आओ !
बोलो, हम कौन हैं, बोलो बोलो कोई बताओ !
हम हैं चमार, हम हैं चमार···
खेतों को जोतें हम, धान को रोपें हम।
गाँव की करें रखवारी, बोलो हैं कौन हम ?
हम हैं चमार, हम हैं चमार···
हल काँधे पर रखकर चले हम, पुरवइया जब चलती है।
सबको खिलायें अन्न हम, सबके मन खिलते हैं।
कौन हैं हम,
बोलो हम कौन हैं···
हम किसान हैं, हम किसान हैं···
खेतों को सींचें हम,
मेंड़ बाँधे हम,
फसल काटें हम
बोलो, हम कौन हैं। बोलो बोलो···
हम किसान हैं, हम चमार हैं···

गीत की गति तेज़ हो जाती है।

गाओ गाओ···
झुग्गी हो या झौंपड़ी !
हाँ हाँ···
पीछे दौड़े कुत्ते

सब कुत्तों की तरह भौंकते हैं।

फैला रहे हैं माँस,
हाँ हाँ···
उस पर मँडराये चील।

सब चील की तरह चक्कर लगाते हुए झपट्टा मारते हैं।

भरे रहें सब नाले
बोलो, बोलो···
जिधर देखो लकड़ी, चैला,

सब लड़खड़ाते हैं।

लड़के पकड़ें केकड़े…
हाँ हाँ…
सीप देखें हँस पड़े।

सब केकड़े पकड़ने का अभिनय करते हैं।

बच्चे पत्थर खेलें
धूल उड़ायें हम बस्ती में रहने वाले…
बोलो हम कौन ? हम चमार हैं…

नृत्य, गीत चरम सीमा तक पहुंचता है। लोग इस पर बातें कर रहे हैं आपस में।

अंधकार।

प्रकाश के फैलते ही चारों ब्राह्मण मंच पर प्रवेश करते हैं।

ब्राह्मण १ : लोक नृत्य सुन्दर था।
ब्राह्मण २ : भरतनाट्यम भी कुछ कम नहीं।
ब्राह्मण ३ : दोनों में कौन सा नृत्य सुन्दर है यह कहना कठिन है।
ब्राह्मण ४ : पंचों का मत है कि भरतनाट्यम सुन्दर रहा।

लोगों के द्वारा विरोध की आवाजें असंतोष का शोर।

ब्राह्मण १ : सब शान्त रहें। स्पष्ट हो गया है कि भगवान ने नंदन को अपना भक्त चुना है। मुझे स्वप्न में ईश्वर के दर्शन हुए हैं यह सत्य है। भगवान ने नंदन से एक व्यक्ति के माध्यम से बात की, यह भी सत्य है।

शिव भक्त नंदन की, जय हो ! **नारे के साथ अंधकार।**

प्रकाश ! नंदन मंच के बीचों-बीच खड़ा है। चार पुरुष उसे दण्डवत् प्रणाम करते हैं।

पुरुष १ : आप भभूत दिहिन और पेट की पीर ठीक हुई गवा।
पुरुष २ : हाथ छुआय दिया अउर हाथ का पीर गायब !
पुरुष ३ : आपने संभु का नाम लिया और हम फिर से जी गए।
पुरुष ४ : आपने हमें देख लिया और आँखें जुड़ा गयीं।
नंदन : नंदन कहीं करे उपचार ?
कौन समझे उसके विचार।
पुरुष १ : बाँमन महाराज ठीक ही कहत हैं।
पुरुष २ : चमारों की बस्ती का हीरा है नंदन।
पुरुष ३ : नई निराली इसकी रीति।
पुरुष ४ : जाने आगे कैसी सिद्धि।
नंदन : नंदन कहाँ से सिद्ध है।
यह तो केवल भक्त है।
पुरुष १ : आपके मुख माँ तेज है।
पुरुष २ : आपके आँखिन माँ दया है।

पुरुष ३ : आपकी बानी में ओज है।
पुरुष ४ : आपके करम माँ दुआ है।
नंदन : फिर भी मेरा विरोध है।
पुरुष १ : अरे, देवता ओका देखिहैं।
पुरुष २ : उनका मन माँ तो द्वेष है।
पुरुष ३ : उनका तो बुरा ही दिखे है।
पुरुष ४ : जो भी कहें सब झूठे हैं।

अभिरामी का मंच पर प्रवेश, उसे देखकर सभी पुरुष चले जाते हैं। नंदन को उसके आगमन का पता तक नहीं लगता। वह जैसे दूर कुछ देखता सा मंत्र मुग्ध खड़ा है।

अभिरामी : लगता है कुछ सोच में हो···

नंदन चौंकता है। उसे देखकर मुस्कराता है।

नंदन : मुझे सब कुछ सपना लगता है।
अभिरामी : सचमुच ! स्वप्न ही इतना सुन्दर हो सकता है।
नंदन : तुम्हें अब भी विश्वास नहीं होता न !
अभिरामी : मैं नहीं जानती मैं क्या कहूँ ?
नंदन : अब देखो तो ! ये आदमी बता रहे हैं कि मैंने इनकी पीड़ाओं को दूर किया है।
अभिरामी : इससे क्या सिद्ध होता है ?
नंदन : पता नहीं मैं इसके योग्य हूँ या नहीं। पर हो सकता है, ईश्वर ने मुझे शक्ति दी हो।

अभिरामी चुप रहती है।

नंदन : बोलो। बोलतीं क्यों नहीं।
अभिरामी : क्या नंदन की शक्ति अनाज उगा सकेगी ? यही प्रश्न था न उस बूढ़े का ?
नंदन : मुझे वह बूढ़ा अच्छा लगा। वह मेरा विरोध ईर्ष्या से नहीं करता। सोचता है, मैं उसकी परम्परा का विरोधी हूँ। और इसलिए वह मुझे नष्ट करना चाहता है। मुझसे कई लोग कई कारणों से घृणा करते हैं। मैं जानता हूँ वह···
अभिरामी : चलो, हम यह गाँव छोड़ दें।
नंदन : नहीं, मैं नहीं छोड़ सकता। मेरा विश्वास है, लोग एक न एक दिन समझ लेंगे। हो सकता है। एकाध अलौकिक काम करने पड़ें।

चारों ब्राह्मणों का प्रवेश।

नंदन : परनाम करता हूँ, महोदय।
ब्राह्मण १ : नंदन, तुम्हारा मुख मलिन क्यों है ?
नंदन : मेरा विरोध प्रबल जो है।
ब्राह्मण २ : नवीनता का विरोध सहज ही तो है।
नंदन : उन्हें कैसे जीतना होगा।
ब्राह्मण ३ : सोये हुओं को जगाना सरल है पर अभिनय करने वालों को जगाना कठिन है।
नंदन : भगवान ने मुझे दी भक्ति। पर उन्हें, क्यों नहीं दी बुद्धि ?
ब्राह्मण १ : भगवान स्वयं करेंगे युक्ति।

नंदन : पर यह काम कठिन लगता है।

अभिरामी : समाज में समान होने की बात तो उनकी समझ में आती है। पर वे अपने ढ़ंग से खुश हैं। क्या यह ज़रूरी है कि उन्हें जगाया जाए।

ब्राह्मण २ : (**कुछ क्रोधित होकर**) ऊँची जाति और गंदे चमारों में समानता कहाँ से आयेगी। हाँ, नंदन अवश्य ही एक अपवाद है। वह ईश्वर का भक्त है।

नंदन : अगर मैं ईश्वर का भक्त हूँ तो वे मेरा विरोध क्यों करते हैं ?

ब्राह्मण ३ : ईश्वर पर विश्वास रखो और शांत रहो। ज्ञान को प्राप्त करने में कुछ विलंब अवश्य हो सकता है।

अभिरामी : लेकिन कब तक ?

ब्राह्मण ४ : लगता है कि तुम नंदन से भी अधिक व्यग्र हो। हमारी एक योजना है।

नंदन : क्या योजना है ?

ब्राह्मण १ : तुम चिदम्बरम चले जाओ।

नंदन : चिदम्बरम ?

ब्राह्मण २ : हाँ···

अभिरामी : मैं स्वयं सुझा रही थी कि हमें यह गाँव छोड़ देना चाहिए।

ब्राह्मण ३ : तुम चिदम्बरम जाकर देवता के दर्शन करो।

नंदन : यह मैं कैसे कर सकता हूँ ?

ब्राह्मण ४ : हमें तुम्हारी समस्या का पता है। तुम कई सप्ताह से अपने स्वामी के खेत में नहीं गए।

नंदन : हाँ, मैं चालीस एकड़ की फसल काटने के बाद ही जा सकता हूँ।

ब्राह्मण १ : सच तो यही है कि हम इसी कारण तुम्हें चिदम्बरम भेजना चाहते हैं। यह एक अवसर है कि तुम अपनी सिद्धि का प्रदर्शन करो।

नंदन : कैसी सिद्धि ?

ब्राह्मण २ : सभी यानी कि तुम्हारे सभी साथी, झोंपड़ी के अंदर रात भर भजन करेंगे। अगली सुबह तुम्हारे स्वामी की फसल कटी हुई मिलेगी।

ब्राह्मण ३ : तुम्हारे भजन का यह प्रताप होगा। कल रात तुम पूजा करना और ईश्वर का नाम लेना। अगली सुबह गाँव में तुम्हारा नाम हो जाएगा।

नंदन : फसल की कटाई मेरा काम है। मैं इसमें ईश्वर की सहायता कैसे लूँ ?

ब्राह्मण४ : एक दूसरे के काम तो आदमी भी आता है। फिर तुम तो ईश्वर के भक्त हो।

अभिरामी : अगर चिदम्बरम नहीं जाना है तो तुम यहीं भजन क्यों नहीं कर लेते।

नंदन : यह बात नहीं। पर···

ब्राह्मण १ : पर वह कुछ नहीं ? पूजा आरम्भ करो। यही हमारी भी इच्छा है।

वे चले जाते हैं। नंदन अभिरामी की ओर देखता है। वह मुस्कराती है और उसका हाथ पकड़ लेती है। सहसा दोनों आलिंगनबद्ध हो जाते हैं, मानो दोनों को एक दूसरे से सुरक्षा का आश्वासन मिल रहा हो।

अंधकार !

प्रकाश फैलता है ब्राह्मण और दोनों ठाकुर मंच पर।

ठाकुर १ : ब्राह्मण महाराज ! आपके मित्र और नंदन के स्वामी नहीं आए।

ठाकुर २ : कहा था न, कि आयेंगे।

ब्राह्मण १ : अवश्य आयेगा।

ठाकुर १ : आप उसके पास गए थे ?

ब्राह्मण २ : गया था, बाकी सब यहीं आ जायेंगे।

ठाकुर २ : बाकी सब कौन ?

ब्राह्मण ३ : नंदन के विरोधी।

ठाकुर २ : वे जानते हैं यह बात।

ठाकुर १ : उन्हें स्वीकार है यह बात।

ब्राह्मण ४ : नंदन से बदला लेना है, यह बात तो जानते ही हैं।

तभी एक नए ब्राह्मण का प्रवेश, उम्र लगभग तीस वर्ष।

ब्राह्मण १ : यहाँ तक आने में इतना विलम्ब ?

नया ब्राह्मण : नहीं छोड़ती है मेरी पत्नी।

ठाकुर १ : क्यों भला ?

ब्राह्मण २ : इसकी पत्नी को भय है।

ठाकुर २ : कैसा भय ?

ब्राह्मण ३ : इसने भोगी हैं, कई औरतें।

नया ब्राह्मण : भाई, परिहास कर रहे हैं।

ब्राह्मण ४ : हम परिहास के लिए एकत्रित नहीं हैं।

ठाकुर १ : नंदन के स्वामी आप ही हैं।

नया ब्राह्मण : हाँ।

ब्राह्मण १ : तुम्हारे खेत में फसल की कटाई हो यही तुम्हारी कामना है न।

नया ब्राह्मण : हाँ।

ब्राह्मण ३ : नंदन का हो विनाश, यह हमारी कामना है।

नया ब्राह्मण : ठीक है !

ब्राह्मण ४ : तुम्हारा सहयोग हो तो संभव है।

नया ब्राह्मण : कहिए ?

ब्राह्मण १ : नंदन कर रहा होगा कीर्तन भजन।

ब्राह्मण २ : नये आदमियों से करवा डालो कटाई !

नया ब्राह्मण : पर नंदन का कैसे होगा विनाश ?

ठाकुर १ : बस ! कीजिए जैसा कहा है !

ठाकुर २ : बाकी सब छोड़ दीजिए।

नया ब्राह्मण : भाई पर मेरी श्रद्धा सदैव रही है।

ठाकुर १ : आपके भाई तो चाणक्य के अवतार हैं।

ठाकुर २ : भय कैसा, जब भाई तैयार हैं।

नया ब्राह्मण : ठीक है, कुछ भी कीजिए। तो मैं चलूँ ?

तभी नंदन के विरोधी चमारों का प्रवेश। वे प्रणाम करते हैं।

ठाकुर १ : नंदन से बदला लेना है, यही है न विरोध ?
ठाकुर २ : क्या हम नहीं जानते आपको कितना है क्रोध ?
ब्राह्मण १ : इन्हें पहले ज्ञात तो हो मेरा कैसा था अभिनय ?
चारों पुरुष : आप का कहत हो ?
ब्राह्मण २ : मैंने किया था अब तक नाटक।
ठाकुर १ : नंदन को सिखाना था एक पाठ।
ठाकुर २ : अपने देवता की तुम करो पूजा।
ब्राह्मण ३ : नंदन का विनाश ही था हमारा लक्ष्य।
ठाकुर १ : नंदन का होगा निश्चित विनाश।
ठाकुर २ : तुम सब करना मिलकर उल्लास।
चारों पुरुष : का कहत हो। हमका कुछु समुझौ नाहीं आवत है।
ब्राह्मण ४ : (**नये ब्राह्मण की ओर संकेत कर**) इन्हें जानते हो ?
चारों पुरुष : नंदन के स्वामी।
ब्राह्मण १ : इनकी भी यही कामना है।
चारों पुरुष : का है ?
ठाकुर १ : नंदन की कथा अब समाप्त हो।
ठाकुर २ : उस छोकरी की कथा भी अब समाप्त हो।
चारों पुरुष : तो···?
ठाकुर १ : ब्राह्मण महाराज के खेत की कटाई तुम सब करना।
ठाकुर २ : कल रात को करना है।
ठाकुर १ : तुम सब कितने आदमी हो ?
ठाकुर २ : सौ के लगभग तो होंगे ही।
चारों पुरुष : होंगे, तनिक कमती ही।
ठाकुर १ : आसानी से हो जाएगा।
ठाकुर २ : चमार ठान लें फिर कैसे नहीं होगा।
चारों पुरुष : करि लइवें ! तौन उसके बाद माँ ?
ब्राह्मण २ : नंदन कर रहा होगा भजन।
ठाकुर १ : सोचेगा भजन की महिमा है।
ठाकुर २ : बाकी सब ब्राह्मण महाराज देख लेंगे।
ब्राह्मण ३ : नंदन के साथी वहाँ होंगे।
ठाकुर १ : किसी से कहना नहीं यह बात।
ठाकुर २ : चुपचाप हो जाने दो यह काम।
चारों पुरुष : ब्राह्मण की बातें खरी तो हैं न।
ब्राह्मण ३ : तुम्हारे लाखन की सौगंध।
ठाकुर १ : तुम्हारी काली की सौगंध।
ठाकुर २ : ब्राह्मण देंगे अपना साथ।
नया ब्राह्मण : तो फिर मैं चलूँ ?
ठाकुर १ : ब्राह्मण को कैसी है शीघ्रता।

ठाकुर २ : ब्राह्मण को नहीं है व्यग्रता।
ब्राह्मण ४ : भक्त दास हो, और भोगी जमींदार, तो क्या होगा भविष्य ?
ठाकुर १ : क्या होगा ?
ब्राह्मण १ : इसके पिता छोड़ गए थे चालीस बीघा, इसके पास बचे हैं चार बीघे।
नया ब्राह्मण : मैं चलता हूँ।

प्रस्थान।

चारों पुरुष : कल ही रात गाँ काम करि दैवें।
ठाकुर १ : नंदन का काम भी हो जाएगा।

अंधकार।

प्रकाश होने पर मंच के अग्रिम भाग में नंदन, छह पुरुष और छह स्त्रियाँ, अभिरामी भजन में तल्लीन। पीछे परदे पर कटाई करते आदमियों की प्रतिच्छाया।

सब : ॐ नमः शिवाय नमः
ॐ नमः शिवाय नमः
ॐ नमः शिवाय नमः
ॐ नमः शिवाय नमः
ॐ नमः शिवाय नमः
नंदन : ॐ जटा धराय नमः
सब : ॐ जटा धराय नमः
अभिरामी : ॐ कैलाश वासिने नमः
सब : ॐ कैलाश वासिने नमः
नंदन : ॐ कवचिने नमः
सब : ॐ कवचिने नमः
अभिरामी : ॐ पिनाकिने नमः
सब : ॐ पिनाकिने नमः
नंदन : ॐ शशि शेखराय नमः
सब : ॐ शशि शेखराय नमः
अभिरामी : ॐ काम देवाय नमः
सब : ॐ काम देवाय नमः
नंदन : ॐ दिगम्बराय नमः
सब : ॐ दिगम्बराय नमः
अभिरामी : ॐ परमेश्वराय नमः
सब : ॐ परमेश्वराय नमः
नंदन : शिव शिव होइ प्रसन्न करु दया करुनामय उदार कीरति,
बलि जाऊं हरहु निज माया।
ज़लज नयन, गुन अयन, मयन रिपु, महिमा जाने न कोई,

बिनु तव कृपा राम पद पंकज, सपनेहु भगति न होई।
ऋषि, सिद्ध, मुनि, मनुज, दनुज, सुर अपर जीव जग माँहि।
तव पद विमुख न पार पाव कोऊ, कलप कोटि चल जाहीं।
अहि भूषन दूषन रिपु सेवक, देन देव त्रिपुरारी
मोहे निहार, दिवाकर संकर, सरन सोक भयहारी।
गिरिजा मन मानस मराल वासीसि मसान निवासी।

कुछ क्षण मौन, अभिरामी इनके साथ बैठती है। सभी आँखें बन्द कर ध्यान मग्न हो जाते हैं।

ॐ नमः शिवाय नमः
ॐ नमः शिवाय नमः
ॐ नमः शिवाय नमः
ॐ नमः शिवाय नमः

मंदिर का घंटा बजता है। एक क्षण मौन। फिर एक स्वर।

स्वर : नंदन ! मैंने तुम्हारी प्रार्थना सुन ली। तेरी इच्छा पूरी हुई। तेरी विजय हुई।
तुम मेरे अनन्य भक्त हो,
लो वरदान, अब तुम मुक्त हो।
तुम्हारे खेत की फसल कट गयी।
चिंता मुक्त हो जाओ। तुम्हारा वाक्य विधान है,
जिसका न कोई विरोध है।
चिदम्बरम जाओ, वहाँ मैं मिलूँगा प्रतीक्षारत
शीघ्र जाओ, अवसर तुम्हारा है।

नंदन के चेहरे पर उल्लास। लोग ॐ ॐ जाप करते हैं।

अंधकार !

एक क्षण बाद चारों ब्राह्मण, नया ब्राह्मण और ठाकुर भागकर आते हैं।

सब : नंदन ! नंदन !

नंदन मंच के पीछे से आता है। उन्हें देखकर चौंकता है।

ब्राह्मण १ : तुम संसार को गति देने वाले ईश्वर हो। तुम्हें प्रणाम करता हूँ।
ठाकुर १ : तुम्हें जो धूर्त कहते हैं उनका मुँह काला हो गया है।
ठाकुर २ : हम तो अंधे थे, तुमने हमारी आँखें खोल दी हैं।

नंदन चुप खड़ा रहता है।

ठाकुर १ : तुम्हारे स्वामी के खेत में फसल कट गयी।
ब्राह्मण २ : यह रात भर में अद्‌भुत चमत्कार हो गया।
ठाकुर १ : विरोधी सभी भाग गए।
ठाकुर २ : कौन समझे ईश्वर की माया ?
ब्राह्मण ३ : नंदन के अतिरिक्त भगवान कहाँ है ! वही हमारा ईश्वर है।

नंदन चुपचाप खड़ा है। ब्राह्मण एक, नये ब्राह्मण का हाथ छूकर संकेत

करते हैं।

नया ब्राह्मण : मुझे क्षमा कीजिए, जो मैंने आपको दास बनाया।

ब्राह्मण ४ : अब तुम चिदम्बरम जा सकते हो। ताकि ईश्वर में लीन होकर मुक्त हो जाओ।

नंदन : क्या सचमुच मुझे उसकी कृपा मिल गयी है !

ठाकुर २ : कौन समझे प्रभु की माया !

ब्राह्मण १ : स्वयं ईश्वर ने चिदम्बरम के बीस हज़ार ब्राह्मणों को स्वप्न में दर्शन दिए हैं।

ठाकुर १ : सबको आज्ञा दी गयी है, कि तुम्हें वहाँ ले जाया जाए।

ठाकुर २ : कौन समझे पालनहार की माया !

नंदन : क्या ईश्वर ने बीस हज़ार ब्राह्मणों को स्वप्न में दर्शन दिए हैं ?

ब्राह्मण २ : हम चालीस हज़ार मंदिरों में सौगंध खाने को तैयार हैं।

नया ब्राह्मण : तो फिर मैं चलूँ।

ब्राह्मण उसे घूरते हैं। वह हकबकाकर रुक जाता है।

नंदन : क्या कल ही जाना होगा ?

ब्राह्मण १ : पूरा स्वप्न सुना दूँ।

ठाकुर १ : हाँ, हाँ कहिए।

ब्राह्मण २ : ईश्वर की आज्ञा है।

ठाकुर २ : कहिए।

ब्राह्मण ३ : मंदिर के सामने महाग्नि प्रज्वलित हो रही होगी।

नंदन : क्यों ?

ब्राह्मण ४ : तुम अग्नि प्रवेश करोगे।

नंदन : क्या कहा ? अग्नि प्रवेश ?

ब्राह्मण १ : तुमने चमार के रूप में जन्म लिया, यह पिछले जन्म का पाप है। अग्नि स्नान से यह पाप दूर हो जायेगा ।

नंदन : मैं समझा नहीं।

ब्राह्मण २ : तुम अग्नि से यज्ञोपवीत धारण कर निकलोगे।

ठाकुर १ : चमार ब्राह्मण में बदल जायेगा। स्वप्न में भी यही कहा गया था।

नंदन : क्या ईश्वर मुझे बाँमन बनने पर ही स्वीकार करेंगे।

ठाकुर २ : कौन समझे उसकी माया ?

नंदन : अभिरामी और मेरे और साथी ?

ठाकुर १ : हाँ, तुम सबको प्रवेश करना होगा।

ब्राह्मण १ : अभिरामी को छोड़कर। स्त्रियों की कोई जाति नहीं हाती। पुरुष ब्राह्मण बन जायेंगे।

ठाकुर २ : कौन समझे उसकी लीला।

नंदन : मैं तो मन से बाँमन हूँ। क्या मुझे शरीर से भी बनना होगा ?

ब्राह्मण २ : यह ईश्वर की इच्छा है।

ठाकुर १ : हम उसकी आज्ञा तोड़ तो नहीं सकते।

ठाकुर २ : कौन जाने उसकी माया।

नंदन : **(थोड़ी हिचकिचाहट के बाद)** कल हम चिदम्बरम में पहुँच रहे हैं।

अंधकार !

कुछ क्षण बाद चारों ब्राह्मण दोनों ठाकुर, चिदम्बरम के कुछ ब्राह्मण मंच पर उपस्थित। पीछे परदे पर लाल रोशनी। नंदन अपने साथियों के साथ मंच पर आता है।

सभी : नंदन की जय हो। ईश्वर भक्त नंदन की जय हो।

मंदिर का घंटा बजता है। नंदन गाता है।

नंदन : संकरं संप्रदं सज्जनानन्ददं
शैल कन्या-वरं परम रम्यं
काम-मद मोचनं तामरस लोचनं
वामदेवं भजे भावगम्यं ।।
ॐ नमः शिवाय नमः
ॐ नमः शिवाय नमः
ॐ नमः शिवाय नमः
ॐ नमः शिवाय नमः

नंदन हाथ जोड़कर धीरे-धीरे अग्नि की ओर बढ़ रहा है।

स्वर : नंदन !
मैं तुम्हारी प्रतीक्षा कर रहा हूँ।
अब तुम अपने साथियों के साथ आ गए हो।
आओ, अग्नि स्नान करो।
यह अग्नि तुम्हारी लौकिक इच्छाओं को
समाप्त कर देगी। नंदन तुम ब्राह्मण के रूप में
रूपांतरित हो जाओगे। और मुझ तक शीघ्र पहुँच सकोगे।
आओ···

'नंदन की जय हो' चारों ओर जयघोष, मंदिर का घंटा बजता है। नंदन आगे है साथी पीछे। वे कुछ चिंतित दिखते हैं।
स्वर—ॐ ॐ, ॐ···

नंदन, लाल परदे के पीछे जाता है। अभिरामी भागती हुई आती है। चीखती है नहीं, नहीं ई ई···।' उसी समय नंदन का अमानवीय करुण चीत्कार। उसके साथी जान बचाने के लिए भाग जाते हैं। अभिरामी आग की ओर भागती है। पर ब्राह्मण और ठाकुर उसे पीछे खींच लेते हैं। एक अट्टहास···

तमिष उपन्यास-साहित्य : एक सर्वेक्षण

□ डॉ. एम. शेषन्

इयान वाट ने अपनी पुस्तक 'द राइज़ आफ़ दि नॉवेल' में बहुत ही प्रामाणिक रूप से अंग्रेज़ी उपन्यास को तत्कालीन परिस्थितियों की उपज प्रमाणित किया है। जो बात इयान वाट ने अंग्रेज़ी उपन्यास के सम्बन्ध में कही है, वही बात भारतीय उपन्यास के सम्बन्ध में भी कही जा सकती है। उन्नीसवीं शताब्दी के मध्य के पहले किसी भी भारतीय भाषा में उपन्यास की रचना नहीं हुई, जबकि यूरोप में इससे ढाई सौ वर्ष पूर्व उपन्यास का जन्म हो चुका था। निश्चय ही इसका कारण भारत की तत्कालीन परिस्थितियाँ थीं।

ये परिस्थितियाँ अनेकमुखी थीं। भारत में अंग्रेज़ों का प्रभुत्व स्थापित होने के पूर्व यहाँ का राजनीतिक, सामाजिक तथा आर्थिक ढाँचा सामन्ती था। सामन्ती व्यवस्था उपन्यास के उदय के लिए अनुकूल समाजशास्त्रीय पृष्ठभूमि का निर्माण करने में असमर्थ थी। उपन्यास का जन-जीवन के प्रति अविच्छिन्न सम्बन्ध है। राजाश्रय में पोषित और पलता साहित्य जन-समाज से विशेष लगाव या प्रतिबद्धता से युक्त नहीं हो सकता। उपन्यास का आश्रयदाता तो विशाल पाठक समुदाय है। अंग्रेज़ी शासन व्यवस्था ने इस देश की मध्ययुगीन सामन्ती व्यवस्था को ध्वस्त कर दिया, उसके सुदृढ़ और विशाल ढाँचे को चूर-चूर कर दिया। अंग्रेज़ों की आर्थिक नीति के परिणाम स्वरूप भारतवर्ष में मध्य वर्ग का विकास तेज़ी से होने लगा जो कालान्तर में उपन्यास के उदय के लिए जिम्मेदार हुआ।

कलकत्ता, मद्रास, बम्बई जैसे बड़े शहरों में और गौणतः अन्य छोटे नगरों में नवोदित मध्य वर्ग के बीच अँग्रेज़ी का ज्ञान फैल रहा था। नव शिक्षित वर्ग के बीच शेक्सपीयर, डीफो, जॉनसन, लैम्ब, स्काट और लिटन की कृतियाँ लोकप्रिय हो रही थीं। 'अरेबियन नाइट्स' और रैनाल्डस के घटना-प्रधान उपन्यास इस काल के भारतीय अँग्रेज़ी पाठकों के बीच लोकप्रिय होते गए। इस प्रकार धीरे-धीरे पढ़े-लिखे लोग अँग्रेज़ी नॉवल से परिचित हुए जो भारतीय साहित्य के लिए सर्वथा नया रूप था। 'नॉवल' में लोगों की रुचि बढ़ने लगी। स्वभावतः, बाद में चलकर, अपनी भाषा में इस प्रकार की रचना में प्रस्तुत करने की आकांक्षा भी पढ़े-लिखे लोगों में जगने लगी।

समस्त भारतीय साहित्य में उन्नीसवीं शताब्दी के पूर्व गद्य-रचना विरल और गौण थी। जब मुद्रण का आविष्कार और प्रचलन भारत में होने लगा था तभी गद्य ग्रंथों का छपना शुरू हुआ। भारत में पहला छापा-खाना सन् १५६३ में कोचीन के निकट एक सेमिनेरी में स्थापित हुआ। लम्बे काल के बाद सन् १७१० में पहला तमिष् प्रिंटिंग प्रेस तरंगम्बाड़ी में लगा। भारत में ईसाई धर्म प्रचार तथा सुव्यवस्थित प्रशासन के निमित्त धर्म प्रचारकों और प्रशासकों ने एक साथ भारतीय भाषाओं में गद्य को माध्यम के रूप में विकसित करने का निश्चय किया। तमिष् और मलयालम में यह कार्य सबसे पहले आरम्भ कर दिया था। इटालियन् जेसुइट पादरी बिशी ने लगभग ४० वर्ष तमिष् प्रदेश में रहकर तमिष् व्याकरण की रचना की थी। सन् १७९३ ई. में 'पिलग्रिम्स प्रोग्रस' का तमिष् अनुवाद प्रकाशित हुआ। पर तमिष् में उन्नीसवीं शताब्दी के अन्त तक पहले मौलिक गद्य कथाओं की रचना के प्रयास नहीं दिखाई पड़ते। आश्चर्य तो यह है कि तमिष् में उपन्यास का उदय उत्तर भारत की भाषाओं की तुलना में तनिक बाद में हुआ।

तमिष् में मुद्रित प्रथम ग्रंथ पादरी विशि द्वारा रचित 'परमार्थ गुरुविन् कदैहळ्' है। पादरी विशि जैसे धर्म प्रचारक को भी काल्पनिक कथात्मक घटनाओं का सहारा लेने की आवश्यकता महसूस हुई। विवरणात्मक शैली में कथा कहने में वे सफल हुए और उनकी कथाएँ आधुनिक कथा-तत्वों के अधिक निकट आईं। अति काल्पनिक ढंग की कहानी में भी यथार्थ का समावेश करने में उन्हें सफलता मिली।

मुद्रण यंत्र के प्रचलन के बाद भी मौखिक रूप से कथा कहने की पुरानी परम्परा एकदम बन्द न हुई, वह तो चलती रही। कारण यह, कि मुद्रित पुस्तकें सिर्फ़ पढ़े-लिखे अल्पसंख्यक वर्ग को ही तृप्त करने में सफल हुईं, जबकि मौखिक रूप से कथा सुनाने एवं सुनने की परम्परा, लम्बे अरसे तक निरक्षर लोगों को, शिक्षित करने में सहायक बनी। पादरी बिशि की उपर्युक्त पुस्तक उनकी मृत्यु के बाद सन् १८२६ ई. में प्रकाशित हुई जो तमिष् कथा-साहित्य की प्रथम रचना मानी जाती है। मगर उसके बहुत पहले सन १७७५ ई. में शिवगंगा जमीन्दार के दरबारी कवि मुत्तुक्कुट्टि अय्यर ने शिवरात्रि के अवसर पर रतजगा करने की दृष्टि से अपनी लम्बी कहानियों द्वारा सुननेवालों को खुश किया था। श्रोताओं को निद्रा से दूर रखने की आवश्यकता से रात भर जब कहानी सुनाने की आवश्यकता पड़ती है, तब उसमें रोचकता, मनोरंजक घटनाओं और अतिरंजित कल्पना तत्व को मिला देने की आवश्यकता होती है। 'वचन संप्रदाय कदै' के नाम से प्रसिद्ध इन कहानियों में घटनायें काल्पनिक, वर्णन अतिरंजित होता था। यह कथा लगभग एक शताब्दी तक तमिष् प्रदेश में प्रचलित थी और बाद में सन १८९५ ई. में प्रकाशित हुई। यद्यपि यह 'परमार्थ गुरुविन कदै' और 'प्रताप मुदलियार चरित्रम्' के कुछ बाद ही क़िताब के रूप में प्रकाश में आयी, फिर भी इसे तमिष् की प्रथम काल्पनिक कथा मानना

उचित होगा।

सन १७९३ ई. में ईसाई मिशनरियों ने 'जॉन बनियन' के पिल्ग्रिम्स् प्रोग्रस' का तमिष् अनुवाद प्रस्तुत किया। इस रूपक प्रधान कथा ने उन्नीसवी शताब्दी में तमिष् कथाकारों को पर्याप्त रूप से प्रभावित किया। डी. वी. शेष अय्यंगार का 'अत्तियूर अवदानी' (१८७५) हिन्दू समाज की तत्कालीन स्थिति का चित्रण प्रस्तुत करता है। वास्तव में मायूरम् वेदनायकम् पिळ्ळै के 'प्रताप मुदलियार चरित्रम्' (१८७६) से ही तमिष् उपन्यास का आरम्भ माना जाता है। इसमें समकालीन जीवन को कल्पना के सहारे चित्रित करने का प्रयास किया गया है। इसमें आदर्शवादी एवं नैतिकतावादी दृष्टिकोण प्रमुख रूप से दृष्टिगोचर होता है। वेदनायकम् पिळ्ळै ने बाद में 'सुगुण सुन्दरी' (१८८७) नामक दूसरा सामाजिक उपन्यास लिखा। आरम्भिक काल की यह सामाजिक प्रवृत्ति उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में अधिक वेग से प्रवाहित होने लगी।

वेदनायकम् पिळ्ळै के अनुकरण में और भी कई उपन्यासकार इस क्षेत्र में प्रवृत्त हुए, जिन्होंने अपने युग के समाज एवं जीवन को प्रस्तुत किया था। वेदनायकम् पिळ्ळै ईसाई थे और न्याय विभाग में मुंसिफ़ के पद पर काम करते थे। उन्होंने अपने उपन्यासों में बेहतर जीवन के निमित्त वांछनीय नैतिक मूल्यों की आवश्यकता पर विशेष ज़ोर दिया। श्रीलंका निवासी तमिषों ने तमिष् साहित्य के विकास में महत्वपूर्ण योगदान दिया है और अब भी देते आ रहे हैं। सन १८८५ में श्रीलंका की 'मुस्लिम नेसन' नामक तमिष् पत्रिका के संपादक मुस्लिम युवक सिद्दी लब्बै मरैक्कायर ने 'असनबे चरित्रम्' नामक उपन्यास में इस्लाम धर्म की नीतियों और खूबियों पर ज़ोर दिया था।

वेदनायकम् पिळ्ळै ने जीवन के जिन ऊँचे आदर्शों और मूल्यों को अपने उपन्यासों में चित्रित किया था, वह तमिष् प्रदेश की प्राचीन परम्परा के अनुकूल था। उन्होने अपनी रचनाओं में, जीवन के हर क्षेत्र में तमिष् भाषा के प्रयोग की आवश्यकता पर ज़ोर दिया था, जिससे तमिष् पाठक प्रभावित हुए। बाल-विवाह के विरुद्ध आवाज़ उठायी और नारी-मुक्ति और उनके उत्थान की बात की है। शिल्प-संरचना की दृष्टि से वेदनायकम् पिळ्ळै के उपन्यास काफ़ी शिथिल हैं, उपन्यास किस्सों से भरपूर हैं, मगर शैली सरल और भाषा शक्ति-संपन्न है।

पिळ्ळै ने तमिष् सामाजिक उपन्यास की नींव डाली थी और आगे के उपन्यासकारों ने उस पर अपना भवन खड़ा करने का कार्य किया। सु. वै. गुरुस्वामी शर्मा ने अपने 'प्रेमकलावत्यम्' (१८९३) उपन्यास में सामाजिक जीवन का चित्रण किया। मगर इसकी कथा भी 'सुगुण-सुन्दरी' के समान अप्रत्याशित और अविश्वसनीय घटनाओं पर आधारित है। इसमें लोक संस्कृति और लोकगीत के तत्व प्राप्त होते हैं। इस रचना में बोलचाल की भाषा का प्रयोग हुआ है।

तमिष् उपन्यास साहित्य में बी. आर. राजम् अय्यर के 'कमलाम्बाल चरित्रम्' (१८९६) का अपना विशिष्ट स्थान है। यह उपन्यास 'विवेक चिन्तामणि' नामक तमिष् पत्रिका में धारावाहिक रूप से प्रकाशित हुआ था। मदुरै ज़िले के उन्नीसवीं शताब्दी के ब्राह्मण परिवार का इसमें विशद चित्रण हुआ है। यद्यपि इसमें कथावस्तु शिथिल है, फिर भी चरित्र-चित्रण सशक्त हुआ है। रोमांस के तत्वों को त्यागकर यथार्थवादी ढंग अपनाने के कारण इस उपन्यास का, उस युग में, अपना विशेष महत्व रहा। इस प्रकार आगे के सामाजिक उपन्यासों के लिए यह उपन्यास पथ प्रदर्शक रहा है। इसके तीसवें अध्याय में भारतीय दर्शन की चर्चा

हुई है। रोमांस की शैली को त्यागकर जीवन की वास्तविक पकड़ और पहचान के मार्ग पर चलने से इसे हम तमिष् का प्रथम यथार्थवादी उपन्यास मान सकते हैं। वेदनायकम् पिळ्ळै के समान राजम् अय्यर भी सामाजिक रीति-रिवाज़ों की चर्चा अपनी रचना में करते हैं। फिर भी दोनों ही रचनाकार समाज की वस्तुस्थिति से बहुत कुछ संतुष्ट ही प्रतीत होते हैं।

आगे सामाजिक सुधार की प्रवृत्ति और दृष्टिकोण लेकर कुछ उपन्यासकार इस क्षेत्र में प्रवृत्त हुए। उनमें उल्लेखनीय हैं माधवय्या (१८७४-१९२६) जिन्होंने तमिष् और अँग्रेजी दोनों भाषाओं में समान रूप से कई उपन्यासों की रचना की। उनका पहला सामाजिक उपन्यास 'पदमावती चरित्रम्' (१८९८) संयुक्त परिवार की प्रथा के दोषों और विधवाओं की दयनीय दशा का चित्रण प्रस्तुत कर नारी शिक्षा की आवश्यकता पर ज़ोर देता है। इनके अन्य उपन्यास 'मुत्तुमीनाक्षी' (१९०३) में निरर्थक सामाजिक रूढ़ियों का खण्डन हुआ है। और विवाह के नाम पर किये जाने वाले शोषण की मनोवृत्ति पर आक्षेप उठाया गया है। इस प्रकार यह सामाजिक यथार्थ को प्रस्तुत करता है। माधवय्या की कथावस्तु (थीम) तमिष्-समाज की नारियों की समस्याओं के इर्द-गिर्द चलती है। माधवय्या के उपन्यासों में भी विवाह-सम्बन्धी दहेज-प्रथा, विधवाओं के प्रति समाज के दुर्व्यवहार, संयुक्त परिवार-व्यवस्था तथा समाज में स्त्रियों का स्थान आदि का चित्रण किया गया है। उपन्यासकार की दृष्टि आधुनिक, वैज्ञानिक एवं प्रगतिशील है।

तमिष् भाषा के अन्य प्रारंभिक उपन्यासकारों में एस. एम. नटेश शास्त्री (१८५९-१९०६) का नाम उल्लेखनीय है, जिन्होंने तमिषनाडु के ब्राह्मण परिवारों के जीवन पर आधारित 'दीनदयालु' (१९००), 'कोमलम् कुमरियानदु' (१९०२), 'दिक्कट्र इरु कुळन्दैहळ्' (१९०२), 'मतिकेट्स मनैवि' (१९०३), 'मामियार कोलुविरुक्कै' (१९०३), 'तलैयणे मन्तिरोपदेशम्' (१९०३) आदि उपन्यास लिखे। इस काल में एक दूसरे उपन्यासकार ति. म. पोन्नुस्वामी पिळ्ळै हैं, जिन्होंने 'कमलाक्षी' (१९०३), 'विजयसुन्दरम्' (१९१०), 'ज्ञानसंबन्धम्' (१९१३), 'ज्ञानाम्बिकै' (१९१५), 'ज्ञानप्रकाशम्' (१९२०), 'शिवज्ञानम्(१९२०) आदि उपन्यासों की रचना की। ति.म. पोन्नुस्वामी के उपन्यास रेनाल्ड्स के उपन्यासों की पद्धति पर रचित जटिल कथानक वाले उपन्यास हैं।

प्रारम्भिक युग के उपन्यासों की विशेषताएँ

जी. एस. फ्रेज़र नामक पाश्चात्य लेखक के अनुसार 'यथार्थ गद्य वर्णन के द्वारा जीवन की विविधताओं की छानबीन और अन्वेषण उपन्यास का धर्म है और वह आदर्श ढूँढ़ने की आशा रखता है' (टेक्नीक्स ऑफ़ नॉवल)।

इस लक्ष्य की कसौटी पर तमिष् उपन्यासों का परीक्षण करें तो यह स्पष्ट है कि प्रारंभिक काल के सभी उपन्यास इस लक्षण के अनुसार खरे नहीं उतरते। 'प्रताप मुदलियार चरित्रम्', 'जीवन की विविधताओं का अन्वेषण-छानबीन' की जगह उपदेशात्मक और नीति-परक रचना है। अपनी रचना की भूमिका में (जिसे उन्होंने अँग्रेज़ी में लिखा था) वेदनायकम् पिळ्ळै लिखते हैं—'इस उपन्यास की रचना में मैंने उन उपन्यासकारों का अनुकरण नहीं किया जिन्होंने जीवन का केवल यथार्थ चित्रण किया है, न कि आदर्श का। वे मानव स्वभाव के ग़लत उदाहरण प्रस्तुत करते हैं, जिसे युवा-वर्ग और अनुभवहीन व्यक्ति अनुकरण की बात मानकर चलते हैं।' इस प्रकार वेदनायकम् पिळ्ळै अपने पात्रों को पूर्ण रूप से शुद्ध चरित्र के रूप में

चित्रित करते हैं। जीवन के यथार्थ की अपेक्षा आदर्श चित्रण पर उनका झुकाव रहा है। उन्होंने यथार्थ चित्रण की उपेक्षा सी कर दी। यही नहीं उन्होंने यथार्थ आश्रित गद्य शैली के माध्यम से उपन्यास के ढाँचे की खोज करने का प्रयास नहीं किया। विपरीत उन्होंने नैतिक शिक्षा और आदर्शपरक जीवन चित्रण के लिए उपन्यासों का सहारा लिया।

प्रारम्भिक युग के यथार्थवादी उपन्यासकार के रूप में राजम अय्यर ही ठहरते हैं, जिन्होंने उपन्यास की संरचना पर विशेष ध्यान दिया। माधवय्या की कृतियों में यथार्थ वर्णन तो मिलता है, मगर उनकी दृष्टि सामाजिक कुरीतियों पर कुठाराघात करने पर रही। पंडित नटेश शास्त्री के 'दीनदयालु' उपन्यास में जीवन का यथार्थ चित्रण अंकित है। ति. म. पोन्नुस्वामी पिळ्ळै में यथार्थ का प्रभाव लक्षित है, मगर राजम अय्यर के समान दार्शनिक चिन्तन की प्रवृत्ति के प्रति उनका भी झुकाव दीखता है। परवर्ती उपन्यासकारों ने जीवन के कमज़ोर पक्षों और बुरे पहलुओं के चित्रण पर बल दिया। अपने 'कोकिलाम्बाळ् कडितंगळ्' में मरैमलै अडिगळ् ने एक ब्राह्मणी विधवा की दुर्दशा का चित्र खींचा है और माधवय्या की भाँति सामाजिक बुराइयों की ओर संकेत किया। मीनाक्षिसुन्दरम्माळ् के उपन्यास 'जयशीलन' (१६१२) में यथार्थ जीवन का सुन्दर चित्रण हुआ है।

तमिष् उपन्यास-यात्रा के अगले चरण में हम सुधारवादी प्रवृत्ति को पाते हैं। बाल-विवाह के विरुद्ध आवाज़ उठायी गयी और अशिक्षा, अन्धविश्वास, निरर्थक रूढ़ियाँ और सामाजिक ह्रास आदि उपन्यास की कथावस्तु के माध्यम चर्चित होने लगे। तमिष् के पुनर्जागरण काल के प्रसिद्ध राष्ट्रकवि सुब्रह्मण्य भारती, व. रा. जैसे कवि और कथाकारों ने उपर्युक्त विषयों का सफल चित्रण अपनी कविताओं एवं कथा कृतियों में प्रस्तुत किया, यद्यपि इनमें प्रचार की गंध भी ज़रूर पायी जाती है। भारती की कथा 'चन्द्रिकैयिन कथै' (अपूर्ण कथाकृति) और व. रा. की 'सुन्दरी' के पात्रों के भावपूर्ण चित्रण आदि मार्मिक बने हैं। इनमें कलात्मक सौन्दर्य भी है।

इस युग के उपन्यासकारों ने समाज के पिछड़ेपन के कारणों का विश्लेषण कर सामाजिक दायित्वपूर्ण दृष्टिकोण को अपनाते हुए अन्धविश्वासों, रूढ़ियों और निरर्थक परम्पराओं को दूर करने का यथासाध्य प्रयास किया है। धीरे-धीरे राजनीतिक चेतना सामाजिक चेतना पर हावी होने लगी। सामाजिक कुरीतियों को दूर करने के लिए राजनीतिक दासता से छुटकारा पाने की अत्यन्त आवश्यकता के प्रति लेखकों का ध्यान गया।

तमिष् उपन्यास की विकास-यात्रा में अगला चरण जासूसी प्रेम-कथाओं का रहा। एस. जी. रामानुजलु नायुडु, वडुवूर के. दुरैस्वामी अय्यंगार, आरणि कुप्पुस्वामी मुदलियार, जे. आर. रंगराजु, वै. मु. कोदैनायकि अम्माळ् आदि उपन्यासकारों के नाम इस वर्ग के उपन्यासकारों में आते हैं। उन्होंने जो कथा-संसार निर्मित किया, उसका मुख्य उद्देश्य पाठकों का मनोरंजन और दिल-बहलाव रहा है। इनके कथा-संसार में दैवी चमत्कार, अलौकिक घटनाओं का चित्रण है। इन कथाओं के माध्यम से पाठकों की कौतूहल वृत्ति को जागृत और संतुष्ट करने का प्रयास किया गया है। रोमांस का सहारा लेकर पाठकों को मानसिक आनन्द प्रदान करने के उपाय किये गये हैं। रहस्यात्मक मर्म कथा राज-परिवार की प्रेम-क्रीड़ाएँ, चोर-डाकुओं की चाल-बाज़ी, जासूसों और ऐय्यारों की चातुरी आदि दिलचस्प एवं सनसनीखेज़ घटनाओं से भरी कथाएँ पाठकों का दिल बहलाव करती थीं।

आरणि कुप्पुस्वामी मुदलियार ने रेनाल्डस के बृहदाकार उपन्यासों का छायानुवाद कर

पाठकों का मनोरंजन किया। वडुवूर के. दुरैस्वामी अय्यंगार के 'मेनका', 'दिगम्बर सामियारिन बाल्य लीलैकळ्' आदि जासूसी उपन्यास पाठकों के मध्य अत्यन्त लोकप्रिय रहे हैं। जे. आर. रंगराजु इस वर्ग के अन्य प्रसिद्ध उपन्यासकार हैं, जिनके 'राजाम्बाळ्' के कई संस्करण निकले। उनका 'चन्द्रकान्ता' भी अत्यन्त लोकप्रिय उपन्यास साबित हुआ। शरलक होम्स के समान उन्होंने भी 'तुप्पुरियुम् गोविन्दन' (जासूस गोविन्दन) नामक पात्र की सृष्टि की। ति. म. पोन्नुस्वामी पिळ्ळै का 'विजयसुन्दरम्' भी इसी कोटि की रचना है।

बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ में राष्ट्रीयता की लहर देश भर में फैलने लगी। परिणामतः सामाजिक तथा राजनीतिक चेतना से युक्त कई उपन्यासकार सामने आये। स्वयं राष्ट्रकवि भारती की अधूरी रचना 'चन्द्रिकैयिन कथै' में विधवा विवाह और अन्तर्जातीय विवाह का चित्रण हुआ है। एक अन्य उपन्यासकार ए. सुब्रह्मण्य भारती की रचना 'जटावल्लभन' में अन्ध-विश्वास, दहेज़ की कुप्रथा, अज्ञान आदि का चित्रण हुआ है। भारती का अनुकरण कर व. रा. (१८८९-१९५१) ने अपनी रचनाओं में नारी-उत्थान की चर्चा की है। उन्होंने अपने उपन्यास 'सुन्दरी' में नारी स्वतंत्रता एवं अधिकारों के लिए आवाज़ उठायी है। वै. मु. कोदैनायकि अम्माळ् इस युग में एक सफल लेखिका रहीं, जिन्होंने अपने सौ से अधिक उपन्यासों द्वारा नारी-वर्ग के उत्थान एवं कल्याण के लिए अपना स्वर ऊँचा किया। वे राष्ट्रीय आन्दोलन की सक्रिय कार्यकर्ता रहीं, इस कारण अपनी कृतियों में गाँधीवादी विचारधारा को प्रमुख स्थान दिया। इस प्रकार प्रमुख रूप से पारिवारिक समस्याएँ और गौण रूप से सामाजिक समस्याएँ इस युग के तमिष् उपन्यासों में चर्चित हैं।

राष्ट्रीय स्वतंत्रता संग्राम के अतिरिक्त अन्य अनेक कारणों ने एक नयी सामाजिक चेतना को जगाया था। सन १९३० में राजनीतिक एवं आर्थिक परिस्थितियों में तेज़ी से परिवर्तन दृष्टिगोचर होने लगे थे। बड़े नगरों के जीवन में दुःख, वेदना और जीवन संकट आने लगे थे। छोटे-छोटे गाँवों में जीवन बहुत कुछ परम्परागत और अपेक्षाकृत सुरक्षित एवं शांत रहा। राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर आर्थिक स्वतंत्रता के आन्दोलनों से तमिष् समाज भी पर्याप्त रूप से प्रभावित होने लगा। जन-जीवन में नये विचार फैलने के कारण दृष्टिकोण में परिवर्तन आने लगा।

राष्ट्रीय आन्दोलन से प्रभावित एवं गाँधीवादी चेतना लेकर कतिपय लेखक इस क्षेत्र में आये। के. एस. वेंकटरमणि तमिष् उपन्यास साहित्य में ग्राम-कथाकार एवं गाँधीवादी कथाकार के रूप में चर्चित हैं। उन्होंने देशभक्तन कन्दन्' तथा 'मुरुगन ओरु उळ्वन' (देशभक्त कन्दन और मुरुगन एक कृषक) नामक दो उपन्यासों की रचना की जो कथावस्तु एवं गाँधीवादी विचारधाराओं के समावेश के कारण उस समय अत्यन्त लोकप्रिय रहे। शिक्षित नवयुवकों में दृष्टि-गोचर नयी मानसिकता और विचारधारा को ये उपन्यास प्रतिफलित करते हैं और साथ ही गाँधीवादी आन्दोलनों के प्रभाव को दर्शाते हैं। समाज के नव-निर्माण में लेखक की उत्सुकता, तत्परता, जन-आकाँक्षाओं के सही चित्रण में लेखक की ईमानदारी सरल भाषा, शैली आदि के कारण उनके उपन्यास स्तरीय माने जाने लगे।

स्वतंत्रता-संग्राम काल के एक अन्य प्रतिष्ठित उपन्यासकार 'कल्कि' उपनाम से प्रसिद्ध रा.कृष्णमूर्ति हैं (१८९९-१९५४)। उन्होंने स्वयं भारतीय स्वतंत्रता-संग्राम में सक्रिय भाग लिया। तथा देश के नेता राजगोपालाचार्य के निकट संपर्क में आये। उनके प्रारम्भिक उपन्यास 'कळ्वनिन कादलि' (चोर की प्रेमिका) और 'त्यागभूमि' दोनों में नारी-मुक्ति और अछूतों की

समस्या का कलात्मक चित्रण है। उनका 'अलै ओसै'(साहित्य अकादेमी से पुरस्कृत) सन् १९३० से १९४८ तक दिल्ली, कलकत्ता, कराची, मद्रास आदि नगरों में घटित मुख्य ऐतिहासिक घटनाओं का चित्रण प्रस्तुत करता है, जिसमें नमक-सत्याग्रह, द्वितीय महायुद्ध, भारत-छोड़ो आन्दोलन, हिन्दू-मुसलमानों के दंगे-फिसाद, किसानों का संघर्ष एवं महात्मा गांधी की निर्मम हत्या आदि घटनाएँ समाविष्ट हैं। 'अलै ओसै' में कथा की पृष्ठभूमि के रूप में कथाकार ने इन सबका विषद चित्रण प्रस्तुत किया है। उनके सामाजिक उपन्यास उतने ही सशक्त और सबल हैं जितने उनके ऐतिहासिक उपन्यास।

कल्कि के साथ ही देवन (१९१३-१९५७) एक अन्य उल्लेखनीय उपन्यासकार हुए, जिन्होंने 'मिस्टर वेदान्तम्', 'जस्टिस जगन्नाथन', 'कल्याणी', 'तुप्परियुम् साम्बु' (जासूस साम्बु) आदि कई सामाजिक उपन्यासों की रचना की। उनके उपन्यासों में मध्यवर्ग की आशा-आकांक्षाओं के चित्रण के साथ निराशाओं और असफलताओं का भी चित्रण हुआ है। उनके पात्र जीवन्त और शैली हास्य-मिश्रित होती थी। उनकी रचनाएँ अत्यन्त प्रभावशाली बनी हैं।

कुछ ऐसे उपन्यासकारों का उल्लेख करना यहाँ आवश्यक है, जिनमें आँचलिक या क्षेत्रीय विशेषताओं और तत्वों का समावेश अधिक हुआ है। खास ज़िले या प्रदेश या जातिवालों की सांस्कृतिक तथा बोलीगत विशेषताओं से युक्त जीवन का चित्रण होता है तो वे आँचलिक महत्व के उपन्यास माने जाते हैं। कोयमुत्तूर ज़िले में जन्मे आर. षण्मुखसुन्दरम् ने अपने ज़िले की आँचलिक विशेषताओं और बोलीगत भेदों को प्रमुखता देते हुए 'नागम्माळ्', 'अरुवडै', 'चट्टि सुट्टदु' आदि आँचलिक उपन्यासों की रचना की। 'नागम्माळ्' में संयुक्त परिवार की एक विधवा की व्यथा-कथा चित्रित है जो अपनी इकलौती बेटी के सुखमय भविष्य के लिए अपनी पैतृक सम्पत्ति की रक्षा के निमित्त संघर्ष करती है। 'चट्टि सुट्टदु' में एक छोटे से गाँव के ऐसे विघटनशील परिवार की कथा है, जो आर्थिक दृष्टि से पतनशील है, जिसके सदस्य आपस में झगड़ते-लड़ते रहते हैं। नये युग के परिवर्तनशील गाँव के सामाजिक तथा पारिवारिक परिवेश को लेखक ने मार्मिक ढंग से प्रस्तुत किया है। सामन्ती युग के पतनोन्मुख जीवन और उस वर्ग के दुःख-दर्द का जैसा मार्मिक और यथार्थ चित्रण षण्मुखसुन्दरम् के उपर्युक्त उपन्यासों में मिलता है, वह अन्यत्र दुर्लभ है। इसके साथ आधुनिक युग के औद्योगीकरण के कारण उभरती नयी सभ्यता की ओर लेखक का संकेत स्पष्ट है और उसके साथ एक नये उद्योगपति वर्ग के उभरने का भी। निस्सन्देह इस उपन्यास में यथार्थवाद का पलड़ा भारी है। शंकरराम का 'मण्णासै' भी आँचलिक उपन्यास की श्रेणी में आता है, जिसमें तिरुच्चि ज़िले के ग्रामीण जनजीवन का चित्रण है। उस ज़िले के गाँव के कृषकों की दर्द भरी गाथा वर्णनात्मक शैली के माध्यम से कही गयी है।

पत्र-संपादक एवं कथाकार नारणदुरैकण्णन् ने तमिष् समाज की बुराइयों और दोषों को दिखाने के उद्देश्य से "यान् एन् पेंण्णाय्प्पिरन्देन' और 'उयिरोवियम्' नामक उपन्यास लिखे। आज के स्वार्थ केन्द्रित, सत्तालोलुप राजनीतिज्ञों का भण्डाफोड़ करने वाला उनका उपन्यास 'सीमान् सुयनलम्' (श्रीमान् स्वार्थी महोदय), 'तरंगिणी' अत्यन्त लोकप्रिय बने।

सन् १९३०-४७ का काल-खण्ड राजनीतिक उथल-पुथल, आन्दोलन और समाज-सुधार की दृष्टि से प्रगतिशील काल माना जाता है। समाज-सुधार की ओर तमिष् जनता को आकृष्ट करने के उद्देश्य से स्वर्गीय सी. एन. अण्णादुरै, एम. करुणानिधि, टी. के. श्रीनिवासन्, ए. वी. पी. आसैत्तम्बि, तेन्नरसु आदि लेखकों ने समाज-सुधारवादी दृष्टिकोण से कई उपन्यास लिखे, जिनमें भूमिपतियों, ज़मींदारों के अत्याचार, अन्यायपूर्ण कृत्य, विवाह-सम्बन्धी समस्याएँ,

अन्धविश्वास, निरर्थक रूढ़ियों और दक़ियानूसी परम्पराओं का तीव्र शब्दों में खण्डन किया। अण्णादुरै का 'रंगून राधा', करुणानिधि का 'सुरुळिमलै', 'वेळि्ळक्किळमै' आदि में सुधार का स्वर तीव्र रहा है और इस कारण कथा-संरचना पर इनका ध्यान कम रहा है। प्रचार का स्वर तीव्र होने के कारण कलात्मक अभिव्यक्ति का पक्ष कमज़ोर हो गया है।

स्वतंत्रता-संग्राम काल में ही अखिलन् का प्रसिद्ध उपन्यास 'पेण्' निकला, जिसमें संग्राम काल के एक युवक के प्रेम और कर्तव्य के बीच का मानसिक संघर्ष और अन्तर्द्वन्द्व चित्रित हुआ है। उनके 'नेंजिन अलैगळ्' में नेताजी द्वारा प्रवर्तित 'आइ. एन. ए.' का संघर्ष चित्रित है।

स्वतंत्रता-प्राप्ति के पश्चात् तमिष् उपन्यास ने करवट ली। उसमें नया वेग और नयी चेतना परिलक्षित है। तमिष् साहित्य में स्वातंत्र्योत्तर काल में, अन्य विधाओं की अपेक्षा उपन्यास की विधा द्रुतगति से विकसित होने लगी। अखिलन् ने 'पुदुवेळ्ळम्' में श्रमिक वर्ग के दर्द-भरे जीवन और उनकी समस्याओं का मार्मिक चित्र अंकित कर सामाजिक न्याय की आवश्यकता पर बल दिया है। 'पाल मरक्काट्टिनिले' में अखिलन् मलेशिया के रबड़ के बाग़ में श्रमिकों के रूप में काम करनेवाले तमिषों की दयनीय दशा का मार्मिक चित्रण प्रस्तुत करते हैं।

ना. पार्थसारथी और मु. वरदराजन् इस काल के उल्लेखनीय उपन्यासकार हैं। ना. पार्थसारथी के 'कुरुंजि मलर' और 'पोन् विलंगु' अधिक लोकप्रिय उपन्यास हैं। उन्होंने अपनी रचनाओं द्वारा प्राचीन सांस्कृतिक महत्ता को प्रतिपादित किया है। हाल की रचनाओं में वे समाज के शिक्षित उच्च वर्ग के नकली चेहरे और मुखौटे को फाड़कर उनके कुकृत्यों का भण्डा-फोड़ करने पर तुले हैं। तमिष् साहित्य के मर्मज्ञ एवं शिक्षक मु. वरदराजन् के उपन्यासों का एप्रोच भिन्न रहा। पतनोन्मुख नारी वर्ग को ऊपर उठाने में उनकी विशेष दृष्टि रही। नारी परिस्थितिवश जब पतिता हो जाती है, तो उन्हीं पतित नारियों के मुख से अपनी दर्द भरी कथा कहलवाते हैं। उनका 'नेंजिल् ओरु मुळ्' इसका ज्वलन्त उदाहरण है। मध्यवर्गीय नारियों की समस्याओं का विश्लेषण भी इनकी कथाओं में प्राप्त है। अन्य तमिष् विद्वान कु. राजवेलु अपने उपन्यासों में राष्ट्रीय आन्दोलन का चित्र प्रस्तुत करते हैं। सि. सु. चेलप्पा ने अपने 'जीवनाम्म्' में चेतना-प्रवाह शैली का प्रयोग किया है। प्रसिद्ध आलोचक क. ना. सुब्रह्मण्यम् अपने 'पोय्तेवु' में तंजाऊर ज़िले के जन-जीवन का चित्रण करते हैं। गाँव के जन-जीवन में पीढ़ियों में प्राप्त अन्तराल (गैप) का चित्रण सुन्दर रामस्वामी के 'ओरु पुळियमचरित्तन् कथै' में काफ़ी सशक्त रूप से हुआ है। साथ ही राजनीतिक और आर्थिक मामलों में, ग्रामवासियों में दीखनेवाली सम्बन्ध की कटुता और आपसी वैर का चित्रण भी, इसमें प्रभावशाली ढँग से हुआ है।

तमिष् उपन्यासकारों में ला. सा. रामामृतम् का अपना विशिष्ट स्थान है। उनकी प्रवृत्ति रहस्यवादी-सांकेतिक शैली की है। उनके उपन्यासों में गद्य-काव्य का सा आनन्द प्राप्त होता है। राजनारायणन् के 'गोपल्ल ग्रामम्' में आन्ध्र प्रदेश से आकर, तमिषनाडु में बसे हुए, तेलुगु निवासियों के सामाजिक जीवन को प्रस्तुत किया गया है।

द्वितीय महायुद्धोत्तर तमिष् उपन्यास में बदलाव देखने में आया। उपन्यासकारों की प्रवृत्ति यथार्थवाद की ओर अधिक रही और साथ ही उनमें फ्रायड के मनोविज्ञान का प्रभाव भी परिलक्षित हुआ है। परम्परागत मूल्य, विचार, विश्वास और निष्ठा हिलने लगीं। स्त्री-पुरुष का आपसी सम्बन्ध, सेक्स की जटिलताएँ, उससे उत्पन्न वैयक्तिक सम्बन्धों में तनाव, सेक्स के कारण शरीर और मन के आपसी द्वन्द्व आदि वैयक्तिक एवं सामाजिक समस्याओं की खुली चर्चा इधर के उपन्यासों में अब पायी जाती है। परम्परागत तमिष् समाज में आज तक, सेक्स

एक खुली चर्चा का विषय नहीं रहा। उसके सम्बन्ध में बात तक करना निषिद्ध माना गया था। मगर विचार और दृष्टिकोण में भेद आ जाने के कारण उसे अब उपन्यासों में स्थान मिल गया है। सेक्स सम्बन्धी जटिलताओं की चर्चा को उपन्यासों का विषय बनाना एकदम ग़लत नहीं कहा जा सकता। मगर उसकी एक मर्यादा और सीमा का होना आवश्यक है। सेक्स सम्बन्धी बातों की चर्चा करनेवाले उपन्यासों के मूल्यांकन की कसौटी यह होनी चाहिए कि इन उपन्यासों द्वारा मानव की दृष्टि, विचार और ज्ञान में कितना विस्तार हो पाया है। या ये उपन्यास मन के संकुचित और कुत्सित भावों को व्यक्त कर मानव को दिशाविहीन करने पर तुले हुए हैं। मानव मन को, विशेष कर युवा मन को गुमराह करनेवाले 'घेरे के बाहर' (हिन्दी में) जैसे उपन्यासों की रचना से समाज का क्या प्रयोजन हो सकता है? पहले ही सिनेमा और अन्य साधनों द्वारा युवा मन विषाक्त होता जा रहा है। इस परिस्थिति में साहित्य में भी सेक्स की खुली चर्चा होने से मानव को कौन-सा नया मार्ग दिखाया जा सकता है, यह प्रश्न उठना न्यायसंगत है। भले लोगों की यह चिन्ता युक्तियुक्त है।

तमिष़ में स्त्री-पुरुष सम्बन्धों की जटिलता को कलात्मक ढँग से विश्लेषित करनेवाले स्तरीय उपन्यासों की कमी नहीं है। डॉ. मु. वरदराजन् के 'अल्लि', 'करित्तुण्डु', ति. जानकी-रामन् का 'अम्मा वन्दाळ्', 'मोह मुळ्' अखिलन का 'चित्रप्पावै', कोवि. मणिशेखरन् का 'तेन्नम् कीट्र' आदि इस प्रकार के उल्लेखनीय उपन्यास हैं।

ऐतिहासिक उपन्यासों का विकास

सामाजिक उपन्यासों के साथ-साथ ऐतिहासिक उपन्यासों की भी एक प्रवृत्ति तमिष़ उपन्यासों में पायी जाती है। अंग्रेज़ी साहित्य के ऐतिहासिक उपन्यासों के अध्ययन के कारण तमिष़ साहित्यकारों के मन में भी इस नई विधा की सृष्टि के प्रति प्रेरणा जगी। उन्हें अपने साहित्य में इस विधा का अभाव खटकने लगा। इस देश के अतीतकालीन वीर पुरुषों एवं रमणियों की कथाएँ, विगतकालीन सांस्कृतिक गौरव गरिमा आदि के प्रति भी उनका ध्यान गया तो यह स्वाभाविक ही है।

तमिष़ का प्रथम मौलिक ऐतिहासिक उपन्यास 'मोहनांगी' सन् १८९५ में प्रकाशित हुआ। उन्नीसवीं शताब्दी के काल में न तो ऐतिहासिक उपन्यास लिखने की कोई चेतना लेखकों में थी और न कोई उल्लेखनीय रचना ही प्रकाश में आयी। कल्कि के इस क्षेत्र में आगमन के पूर्व बहुत सीमित ऐतिहासिक उपन्यास ही देखने में आए। आज उनका केवल ऐतिहासिक महत्व ही स्वीकारा जाएगा। पहली बार तमिष़ उपन्यास साहित्य में कल्कि ने ही ऐतिहासिक उपन्यास की स्वस्थ परम्परा का सूत्रपात किया। इस दृष्टि से कल्कि का तमिष़ ऐतिहासिक उपन्यास साहित्य में वही स्थान है जो वृन्दावनलाल वर्मा का हिन्दी ऐतिहासिक साहित्य में है। कल्कि के ऐतिहासिक उपन्यासों का साहित्यिक महत्व असंदिग्ध है।

प्रथम ऐतिहासिक उपन्यास 'मोहनांगी' (१८९५) के लेखक त्रिकोणमलै के शरवण-मुत्तु पिळ्ळै हैं। सत्रहवीं शती के नायक-शासकों का काल इस ऐतिहासिक उपन्यास की पृष्ठभूमि है। इसमें ऐतिहासिक घटनाओं और तथ्यों को विकृत किये बिना इतिहासमूलक कल्पना का प्रयोग हुआ है। औपन्यासिक कला की दृष्टि से यद्यपि इस कृति का महत्व न हो तो भी ऐतिहासिक उपन्यासों की परम्परा में इसका महत्व है। कूड़लिंगम पिळ्ळै का 'राणी मंगम्माळ' (१९०३) इस काल की उल्लेखनीय रचना है। यह भी नायक-युग की प्रिय शासिका रानी

मंगम्माल की जीवनी पर आधारित है परन्तु यह एक सामान्य कोटि की रचना है।

बीसवीं शताब्दी के प्रारंभ में 'पिरिंतुलै' (१९०८), 'विद्यारण्य नगरम् (१९१२) नामक दो उपन्यास लिखे गये। इनमें इतिहास का तथ्य विवरण तो है, मगर औपन्यासिकता का अभाव है। वडलूर रामलिंग स्वामी की ऐतिहासिक रचना 'मनुमुरै कण्ड वाचकम्' (मनुनीति आख्यान) उल्लेखनीय रचना है। इसमें इतिहास और कल्पना का समुचित संयोग है और लेखक का एतिहासिक विवेक श्लाघनीय है। ए. एस. पी. अय्यर के अंग्रेज़ी में लिखे ऐतिहासिक उपन्यास 'बालादित्य' में तमिष् प्रदेश के सोलहवीं शताब्दी के इतिहास प्रसिद्ध वीर पुरुष की कथा चित्रित है। इतिहास-सम्मत घटनाओं और विवरणों के साथ लेखक की सुन्दर कल्पना इस उपन्यास के महत्व का मुख्य कारण है। प्रसिद्ध 'लण्डन टाइम्स' ने इसकी प्रशंसा की है। आर. पी. कुप्पुस्वामी का 'सत्यवल्ली' (१९१०) उपन्यास सोलहवीं शताब्दी के राजस्थान के इतिहास पर आधारित है। तमिष् प्रदेश से इतर प्रदेश के इतिहास पर आधारित यह पहली रचना है।

इस प्रारंभिक काल के ऐतिहासिक उपन्यास केवल नाम-मात्र के लिए ऐतिहासिक हैं। उनमें यद्यपि इतिहास के तथ्यात्मक विवरण प्राप्त हैं, फिर भी युगीन वातावरण का विधान नहीं पाया जाता है। इतिहास का उपयोग केवल नाम मात्र के लिए हुआ है। उनकी कल्पना का प्रयोग मात्रा से अधिक है। ऐतिहासिक रचनाओं के लिए वांछित ऐतिहासिक विवेक का अभाव सा है। कहीं-कहीं इतिवृत्तात्मकता होने से वे जीवनी-सदृश जान पड़ते हैं। अधिकतर लेखकों का इतिहास-ज्ञान भी कम था।

तमिष् ऐतिहासिक उपन्यास को अभूतपूर्व रूप में विकसित करके ऐतिहासिक प्रतिष्ठा प्राप्त करनेवाले लेखकों में कल्कि का नाम उल्लेखनीय है। पहले की अपेक्षा सशक्त ऐतिहासिक आधार ग्रहण कर, मानवीय संवेदनाओं पर विशेष ध्यान रखते हुए सांस्कृतिक दृष्टि के साथ लिखित कल्कि के उपन्यासों के द्वारा तमिष् में ऐतिहासिक उपन्यास की एक सुदृढ़ परम्परा का आविर्भाव हुआ। हिन्दी में वृन्दावनलाल वर्मा के समान तमिष् में कल्कि, युग-प्रवर्तक ऐतिहासिक उपन्यासकार थे। उनके तीन ऐतिहासिक उपन्यासों—'पार्तिपन् कनवु' (पार्थिव का सपना) (१९४१-४३), 'शिवकामियिन् शपदम्' (शिवकामी की शपथ) (१९४४-४६) तथा 'पोन्नि-यिन शेल्वन्' (कावेरी का पुत्र) (१९५०-५४) ने उन्हें पर्याप्त यश दिलाया।

'उन्नीसवीं शताब्दी के प्रसिद्ध यूरोपीय कथाकारों भाँति कल्कि ने भी प्रभावशाली दृश्य-वर्णन और उपकथाओं की सृष्टि की है। बंकिमचन्द्र चटर्जी, हरिनारायण आपटे जैसे बंगला, मराठी कथाकारों में प्राप्त राष्ट्रीय चेतना कल्कि में भी प्राप्त है। इसके साथ डिकेन्स का हास्य, थैकरे का यथार्थ चित्रण आदि के सादृश्य प्रभावशाली ढंग से उपन्यासों की सृष्टि करने में वे अपनी बराबरी नही रखते।'[1] ऐतिहासिक तमिष् उपन्यास की परम्परा में कल्कि के 'शिवकामियिन् शपदम्' का विशेष महत्व है। इसमें इतिहास की गरिमा के साथ कल्कि की औपन्यासिक कला का कौशल प्रदर्शित है। हिन्दी में वृन्दावनलाल वर्मा की भाँति कल्कि की ऐतिहासिक कृतियों में भी स्वाधीनतापूर्व भारत की समस्याओं को अधिक प्रमुखता प्राप्त है। भारत की स्वाधीनता प्राप्ति के लिए जनता को स्फूर्तिदायक संकेत एवं उत्साह देने और उसमें

---

१. के० आर० श्रीनिवास अय्यंगार : कल्कि के बारे में—दि इण्डियन पी० इ० एन० वाल्यूम...१२, नं० ३, मार्च, १९५५...पृ० ८७।

बाधक तत्वों जैसे मिथ्याभिमान, दंभ, घरेलू फूट, कलह, अदूरदर्शिता आदि के प्रति घृणा जगाने में कल्कि अधिक सफल रहे हैं।

शाण्डिल्यन् कल्कि-युग के प्रसिद्ध ऐतिहासिक उपन्यासकार हैं। उन्होंने लगभग ४० ऐतिहासिक उपन्यास लिखे हैं, जिनमें उल्लेखनीय है 'जीवभूमि'(१९५३), 'कडलपुरा'(१९६७), 'राज मुद्रै' (१९७०), 'यवन रानी' (१९६३), 'जलमोहिनी' (१९७५) आदि। जीवभूमि उपन्यास राजस्थान के इतिहास पर आधारित है। शाण्डिल्यन् इतिहास के तथ्यात्मक विवरण की प्रामाणिकता पर विशेष आग्रह दिखाते हैं, पर उनकी रचनाओं में श्रृंगारिकता की प्रवृत्ति मात्रा से अधिक हो गयी है। कल्कि के समान आप भी पुष्ठ कथा-संगठन के प्रति विशेष ध्यान देते हैं। इस कारण उनमें रंजक-प्रवृत्ति अधिक है। पाठकों के बीच वे अधिक लोकप्रिय हुए हैं। बालकृष्ण नायुडु का 'डणाय्वकन् कोट्टै' (डणाय्वकन दुर्ग, १९५५) में अठारहवीं शती के टीपू सुल्तान द्वारा अंग्रेज़ों के शासन को निर्मूल उखाड़ने के प्रयत्नों का चित्रण है।

अरु० रामनाथन् का 'अशोकन् कादलि' (अशोक की प्रेमिका, १९४८) सम्राट अशोक के इतिहास-प्रसिद्ध कलिंग-युद्ध और तत्पश्चात् उसके हृदय-परिवर्तन की घटना का कलात्मक चित्रण है। इसमें इतिहास और कल्पना का समुचित निर्वाह हुआ है। कल्कि ने अपने उपन्यासों में अतीत कालीन तमिष् प्रदेश की सांस्कृतिक गरिमा, वैभव एवं उत्कर्ष को अपनी रचनाओं के माध्यम से प्रदर्शित किया है। उनकी रचनायें पाठकों को तमिष् प्रदेश के इतिहास के मर्म को जानने एवं उसकी अतीतकालीन गरिमा और वैभव से पुलकित होने का अवसर प्रदान करती हैं। इस युग में इतिहास के प्रामाणिक तथ्य-विवरण को प्रस्तुत करने की ओर लेखकों का ध्यान अधिक गया। चरित्र-चित्रण को प्रमुखता देने में भी विशेष प्रयत्न रहा। शाण्डिल्यन अपनी कृतियों में विस्तृत फ़लक एवं तमिष् प्रदेश के बाहर, इतर प्रदेश के इतिहास से प्रेरणा लेकर, भारतीय जीवन की झांकी प्रस्तुत करते हैं।

कल्कि के बाद तमिष् ऐतिहासिक उपन्यास के विकास में योगदान देनेवाले समर्थ लेखक हैं अखिलन, विक्रमन्, शाण्डिल्यन्, ना० पार्थसारथी, कोवि० मणिशेखरन्, ते. प. पेरुमाल् आदि। अखिलन् के 'वेंगेयिन् मैन्दन्' (चीते का पुत्र, १९६२), 'कयल् विलि' (मीन-लोचनी, १९६५), 'वेट्रि तिरुनगर' (विजय नगर, १९६६) आदि उनके प्रमुख उपन्यास हैं। 'वेंगेयिन् मैन्दन्' ग्यारहवीं शताब्दी के इतिहास-प्रसिद्ध चोल नरेश राजराजन् चोलन् की, सिंहल द्वीप और अन्य सुदूर पूर्व देशों पर राजनीतिक विजय तथा उसके शासन-काल की महिमा को चित्रित करता है। लेखक ने राजराजन् के वैयक्तिक गुणों को चित्रित कर 'व्यक्ति' राजराजन् चोलन के चरित्र के उद्घाटन में पर्याप्त सफलता पायी है।

'वेट्रित्तिरुनगर' की रचना में राष्ट्रोत्थान की भावना प्रेरक रही है। विजयनगर साम्राज्य के पतन के कारणों का विश्लेषण मार्मिक ढंग से किया गया है। पतनशील राष्ट्र के लोगों के मन में नयी स्फूर्ति और जोश उत्पन्न करने में यह सफल रहा है। विक्रमन के उल्लेखनीय उपन्यास हैं 'नन्दिपुरत्तु नायकि' (नन्दिपुरम् की नायिका, १९६४), 'कांची सुन्दरी' (१९७८), 'राजादित्तन शपदम' (राजादित्तन की शपथ, १९६६), 'कुलोत्तुंगन शपदम्' (कुलोत्तुंग की शपथ, १९६४), 'परिवादिनी' (१९६०), 'उदय चंद्रन' (१९७८), 'त्याग-वल्लभन' (१९७९), 'आलवाय अरसि' (मदुरै की रानी, १९७७)। 'नन्दिपुरत्तु नायकि' में कल्कि के अन्तिम उपन्यास 'पोन्नियिन शेल्वन' की कथावस्तु के उत्तरार्द्ध का विस्तार है। इसमें इतिहास और साहित्य दोनों का सम्मिश्रण है। ऐतिहासिक तथ्यों और विवरणों के संग्रह

और उसके कलात्मक प्रस्तुतीकरण में विक्रमन् कल्कि से भी आगे बढ़े हैं।

जगचिर्पियन् कल्कि-परवर्ती काल के उल्लेखनीय उपन्यासकारों में हैं, जिनके उल्लेखनीय उपन्यास हैं 'कोमकन् कोसलै' (राजकुमार कोसलै, १९७६), 'मकर याल् मंगै' (मकर वीणा सुन्दरी, १९६१), 'आलवाय् अलगन्' (मदुरै का नायक, १९७३), 'तिरुचिट्रम्बलम्' (१९७४), 'नन्दिवर्मन् कादलि' (नन्दिवर्मन् की प्रेमिका, १९७६) आदि। उनमें कुछ चोल वंश और कुछ पल्लव वंश के इतिहास पर आधारित रचनाएँ हैं। 'आलवाय् अल्गन्' में तेरहवीं शती के प्रथम दशक में इतिहास-प्रसिद्ध मारवर्मन् सुन्दर पाण्डियन् की शासन-कुशलता, धार्मिक चेतना, ईश्वर भक्ति, तमिष्-प्रेम आदि का कलात्मक चित्रण स्पष्ट अंकित है। उनके 'मकर याल् मंगै' में पल्लव काल के इतिहास प्रसिद्ध नरेश, राजसिंहन् द्वारा निर्मित कांचीपुरम् नगर के 'कैलाशनाथ मंदिर' जैसी युगीन सांस्कृतिक हलचलों का चित्रण हुआ है। अपने उपन्यासों में जगचिर्पियन् तमिष् प्रदेश के सांस्कृतिक जीवन, उसके उत्थान को प्रकाश में लाने का प्रयास करते हैं।

ना. पार्थसारथी ने चेर, चोल, पांड्य राजवंशों के इतिहास पर आधारित अब तक पाँच ऐतिहासिक उपन्यासों की रचना की है। उनमें 'पांडिमा देवी' (पाण्डय राजमाता, १९६२), 'वलंबुरि संगु' (दक्षिणपार्श्व शंख, १९६५), नित्तिलवल्लि' (१९७०), 'कपाटपुरम्' (१९६७) आदि पाण्ड्य राजवंश के इतिहास पर तथा 'वंजिमानगरम्' चेर राजवंश के इतिहास पर तथा 'मणिपल्लवम्' (१९६६) चोल राजवंश पर आधारित है। 'रानी मंगम्माल्' (१९८०) उनका नवीनतम उपन्यास है। इसमें पांड्य रानी मंगम्माल के शासन काल का सुन्दर सजीव वर्णन है।

'देवदेवी' (१९६०), 'दक्षिण भयंकरन्' (१९७६), 'रानी वेलुनाय्च्चि' (१९७०), 'चेम्बियन शेल्वि' (१९७१), 'तेन्नवन् पिराट्टि' (१९७२), 'मणिमण्डपम्' (१९७३), 'राजगर्जन्' (१९७९), सम्राट अशोकन्' (१९७९) मणिशेखरन् के कुछ प्रसिद्ध ऐतिहासिक उपन्यास हैं। कल्कि-परवर्ती काल के ऐतिहासिक उपन्यासकारों में उन्होंने संख्या की दृष्टि से सबसे अधिक रचनाएँ लिखी हैं। इसके अतिरिक्त मी. प. सोमु, कण्णदासन् आदि भी उल्लेखनीय हैं।

स्वातंत्र्योत्तर काल में ऐतिहासिक उपन्यासकारों की दृष्टि और इतिहास-ज्ञान इतना विस्तृत हो गया है कि वे तमिष् प्रदेश के इतिहास के अतिरिक्त भारत के इतर प्रदेश के इतिहास से प्रेरणा पाकर ऐतिहासिक उपन्यासों की रचना करने लगे हैं। इन असंख्य उपन्यासकारों ने तमिष् प्रदेश के प्राचीन काल के चेर, चोल, पांड्य राजाओं के काल के जीवन और संस्कृति को अपने ऐतिहासिक उपन्यासों द्वारा चित्रित कर प्राचीन सांस्कृतिक गरिमा को वर्तमान युग के पाठकों के सामने स्पष्ट उभारने का प्रयास किया है। कल्कि-युग की अपेक्षा इन उपन्यासकारों में इतिहास-चेतना तीव्र, साहित्यिक ज्ञान गहरा और औपन्यासिक कला की सजगता अति स्पष्ट परिलक्षित है। इन उपन्यासकारों ने ऐतिहासिक उपन्यासों के माध्यम से विगत कालीन मानवों की संवेदनाओं, आशा-आकांक्षाओं, निराशाओं, सुख-दुखों और विचार-पद्धतियों को कलात्मक ढंग से प्रस्तुत कर, शाश्वत मानव-मूल्यों पर विशेष बल दिया है। कुल मिलाकर यह माना जा सकता है कि भविष्य में ऐतिहासिक उपन्यास के क्षेत्र में गुणात्मक वृद्धि होगी और प्राचीन सांस्कृतिक जीवन समग्र रूप में हमारे सामने स्पष्ट होगा।

निष्कर्ष

पश्चिमी साहित्यिक विधा की नींव यहाँ अब एक शताब्दी के अन्तर्गत पक्की होने लगी

है। उसका तेजी से विकास हो रहा है। अपने पूर्ण विकास के लिए यह आवश्यक है कि प्रारंभिक युग के सांस्कृतिक मूल्यों की पुनर्स्थापना की प्रवृत्ति एवं परवर्ती काल की सामाजिक प्रवृत्ति आदि को विकसित करना होगा। यही नहीं, आनेवाले दशकों में उसे साहित्यिक कौशल से प्रयुक्त करना होगा। वर्तमान उपन्यासकारों के मन में पाठकों की वाहवाही और शाबाशी पाने की कामना से प्रेरित होकर केवल कथा कहने की सीमित प्रवृत्ति पायी जाती है।

तमिष् साहित्य ने काव्य, पुराण, बहुविध प्रबन्धों आदि के माध्यम से अपनी प्राचीन परम्परा को सम्पन्न एवं पुष्ट किया है। उपन्यास और कथा इन दोनों को अर्थात् कथा साहित्य को भी हम साहित्यिक महत्व तभी प्रदान कर सकेंगे जब तमिष् भाषा की शक्ति के समुचित उपयोग द्वारा कथा-साहित्य को पुष्ट कर सकें। दूसरे शब्दों में, उपन्यासकार को मनोरंजन या शाबाशी पाने के सीमित उद्देश्य से कथा कहने के प्रलोभन से बचना होगा और इस नयी साहित्यिक विधा को गंभीर साहित्यिक चेतना और जागृति के रूप में स्वीकार करना होगा। पाश्चात्य देश से आयी इस नवीन विधा के स्वस्थ प्रभाव को स्वीकारने में जहाँ संकोच नहीं करना है, वहीं तमिष् संस्कृति को भूले बगैर, इसकी विविध शैली-शिल्पगत विशेषताओं को आँख मूंद कर स्वीकारना तमिष् संस्कृति एवं तमिष् परम्परा एवं तमिष् जनता के हित में नहीं हो सकता। इस बात का विस्मरण नहीं करना चाहिए कि तमिष् के सर्वोत्तम उपन्यासों के लेखकों को पाश्चात्य साहित्यिक कृतियों को पढ़ने और आत्मसात करने का मौका नहीं था। भारतीय परम्परा एवं जातीय विचारों के अनुकूल चलकर ही इस विधा को स्वस्थ रूप में विकसित किया जा सकता है।
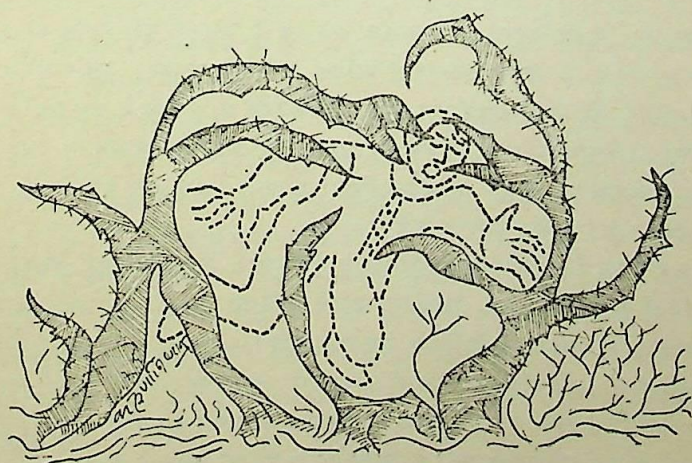
नई तमिष् कहानी

□ अशोक मित्रन

तेरह अप्रैल उन्नीस सौ अट्ठासी को, तमिष् नव वर्ष के अवसर पर मद्रास की इलककिया चिन्तनाई संस्था ने अपना अठारहवाँ वार्षिक समारोह मनाया। इस समारोह का सबसे बड़ा आकर्षण वर्ष की श्रेष्ठ कहानी का पुरस्कार वितरण था। शुरू के कुछ वर्षों में पुरस्कार पाने वाले लेखक का नाम अंतिम क्षणों तक गुप्त रखा जाता था। लेकिन अब पुरस्कार पाने वाले लेखक का नाम आमंत्रण पत्रों पर बाक़ायदा लिखा जाता है। इस तरह समारोह से एक हफ़्ता पहले ही लेखक के बारे में सब जान जाते हैं।

एक महत्त्वपूर्ण बात यह है कि इलककिया चिन्तनाई पिछले अट्ठारह बरसों से हर साल बारह कहानियों का एक संकलन प्रकाशित करती चली आ रही है। हर माह किसी लेखक, समीक्षक, पाठक या किसी दोस्त के जिम्मे यह काम सौंप दिया जाता है कि वह किसी महीने में प्रकाशित होने वाली पत्रिकाओं को पढ़े और उनमें से अपनी पसंद की एक कहानी चुने। इसी तरह साल के बारह महीनों में बारह श्रेष्ठ कहानियाँ चुनी जाती हैं। फिर कोई बुजुर्ग लेखक या समीक्षक उनमें से एक सर्वश्रेष्ठ कहानी का चयन करता है। हो सकता है कि इन अठारह संकलनों की लगभग दो सौ कहानियों का स्तर समान न रह पाया हो, लेकिन इसमें शक नहीं कि इनमें इस पूरे दौर की कई बेहतरीन कहानियाँ हैं। और उससे भी बड़ी बात यह कि यह कहानियाँ एक दौर के लेखकों के सामाजिक सरोकार को रेखांकित करती हैं। इस तरह यह संकलन सही

अर्थों में अपने समय की अक्कासी करते हैं।

तमिष् उपन्यासों की शुरुआत हुए सौ बरस से कुछ ज़्यादा वक़्त गुजर चुका है, लेकिन तमिष् कहानी का इतिहास पचहत्तर बरस से ज़्यादा पुराना नहीं है। अन्य भारतीय भाषाओं की तरह तमिष् भाषा में भी पहले दौर के लेखक अमूमन अंग्रेज़ीदाँ, उत्साही और आदर्शवादी मध्य-वर्गीय लोग ही थे। १९३० तक आते-आते यह लोग नए मिजाज़ की कलात्मक कहानियाँ लिखने लगे थे, जिनका मुक़ाबला विश्व की किसी भी भाषा के साहित्य से किया जा सकता है। पचास का दशक आते-आते इस पीढ़ी के लेखक या तो गुज़र गए या उन्होंने लिखना बंद कर दिया। लेकिन वे इतना कर गए कि नई पीढ़ी को पश्चिम की तरफ देखने की ज़रूरत नहीं पड़ी। अब नई पीढ़ी के पास अपने स्थानीय नायक और आदर्श मौजूद थे। नई पीढ़ी ने जिन मूल्यों को अपनाया वे कहीं ज़्यादा यथार्थवादी थे, और उन्होंने कई मौक़ों पर पुरानी पीढ़ी के आदर्शों को चकनाचूर भी किया। उस दौर की कहानियाँ परम्पराओं को तोड़ती गईं और शुरू में उन्होंने कई पाठकों को चौंकाया भी। यह एक दिलचस्प हक़ीक़त है कि उन चौंकाने वाले लेखकों में आज के कई सम्मानित लेखकों के नाम भी शामिल थे।

आज़ादी अपने साथ नए आयाम, नया परिप्रेक्ष्य और नई आशाएं लाई। जिन कहानीकारों ने पचास के दशक में लेखन की शुरुआत की वे अपने अधिकारों के प्रति ज़्यादा सचेत थे और उन पर क़ायम रहने को तैयार थे। यह वही वक़्त था जब पत्रिकाओं का प्रकाशन बड़े व्यापारिक घरानों की कमाई का धंधा बन गया। सम्पादक अपनी पसंद से लिखवाने लगे। नतीजे में लेखन का स्तर गिरता गया। यहाँ तक कि जिन पत्रिकाओं का अपना इतिहास था, आदर्श थे, परम्पराएं थीं, वे भी समझौतापरस्त हो गईं। उनका बदला हुआ रुख उस दौर की कहानियों के साथ छपने वाली तस्वीरों और रेखांकनों से ही उजागर होता है। यह वही जमाना था जब फ़िल्में लोगों के दिमाग़ को बहुत ज़्यादा प्रभावित कर रहीं थीं। स्वतन्त्र भारत का साक्षरता अभियान प्रारम्भ हो चुका था। नतीजे में शिक्षितों की तादाद बढ़ गई थी और साथ ही पठनीय सामग्री की ज़रूरत भी बढ़ गई थी। ऐसे लेखकों ने, जिनका लक्ष्य कुछ अधिक शिक्षित पाठक हुआ करते थे, अब अपने लेखन को इस तर्ज़ पर ढाला कि वह नव शिक्षित या कम पढ़े-लिखे लोगों को भी आकर्षित कर सकें।

अब लेखक खुद मुख़्तलिफ़ माहौल से आ रहे थे। उनका साहित्य पश्चिमी प्रभावों में डूब कर विकसित नहीं हुआ था। हक़ीक़त तो यह है कि साठ और सत्तर के दशक के कई लेखकों का अंग्रेज़ी से बहुत मामूली-सा सरोकार रहा, और क्योंकि शिक्षा अब केवल बड़े शहरों तक सीमित नहीं थी इसलिए न सिर्फ़ हर इलाक़े में बल्कि दूरदराज़ के गांवों में भी लेखक पैदा हो रहे थे। सदियों से लगातार आर्थिक और सामाजिक ज़ुल्मोसितम का शिकार हो रहे वर्गों से भी लेखक आ रहे थे। इनके परिवार तरह-तरह के कामों में लगे थे। इन्हीं कारणों से नए-नए विषय और नए आयाम सामने आए। इस तरह पाठकों को निजी अनुभव के आधार पर लिखी अनगिनत कहानियाँ, मुख़तलिफ़ चरित्र और उनके माध्यम से विभिन्न मानसिकताओं की झलक देखने को मिली।

तमिष् कहानी अब अकादेमिक शोध के लिए एक अहम विषय हो गई थी। लेकिन शोध के क्षेत्र में शुरुआत करने वाले लोग साहित्यिक खूबियों के बजाय कहानियों को लोकप्रिय बनाने वाले लटकों-झटकों से ज़्यादा प्रभावित हुए। आज भी यह देखा जा सकता है कि उन शोधकर्ताओं ने कई सस्ती लोकप्रिय कहानियाँ लिखने वालों को, महत्त्वपूर्ण साहित्यकारों का दर्ज़ा दे रखा है।

साहित्यिक खूबियों वाली कहानियों और सस्ती लोकप्रिय कहानियों के बीच, फ़र्क न कर पाने की भूल इसलिए हुई, क्योंकि तब तक गद्य के उच्चस्तरीय मूल्यांकन की परम्परा, स्थापित नहीं हुई थी।

इस साठ साल के वक़्फ़े में उपन्यास से कहीं ज़्यादा कहानी ने समय की आकांक्षाओं, समस्याओं और सरोकारों को लोगों के दिमाग़ में संजोए रखा। सच्चाई तो यही है कि अपने समय का सही प्रतिनिधि, उपन्यास नहीं, कहानी ही साबित हुई है। कहानियाँ पत्रिकाओं में छपती हैं, इसलिए वे बड़ी संख्या में लोगों तक पहुँचती हैं। कई पत्रिकाएँ तो तीन लाख से ज़्यादा छपती हैं। जब कि ज़्यादातर कहानी संकलन या उपन्यास एक हज़ार से ज़्यादा नहीं प्रकाशित होते।

नेशनल बुक ट्रस्ट और साहित्य अकादेमी को भारतीय भाषाओं के महत्त्वपूर्ण लेखकों की निर्देशिका माना जा सकता है। पिछले दिनों साहित्य अकादेमी ने तीसरे-चौथे दशक के प्रमुख तमिष् कहानीकार पुदुमै पित्तन पर एक मोनोग्राफ़ प्रकाशित किया है। नेशनल बुक ट्रस्ट ने भी तमिष् भाषा के दो प्रमुख कहानीकारों पुदुमै पित्तन और जयकांतन के कहानी संग्रह प्रकाशित किए हैं। जयकांतन उन लेखकों में से हैं जिन्होंने पाँचवें दशक के अंतिम दौर में लिखना शुरू किया था। साहित्य अकादेमी अब तक तीन कहानीकारों को पुरस्कृत कर चुकी है। इनमें एक स्व. जी. अलागिरीस्वामी हैं जिन्होंने १९४० से १९७० तक कहानियाँ लिखीं। दूसरे स्वर्गीय टी. जानकीरमन हैं जिन्होंने पाँचवें दशक के अंतिम दौर से १९८० तक लिखा और तीसरे स्वर्गीय आदवन जो ४५ वर्ष की उम्र में ही चल बसे। उन्हें यह पुरस्कार १९८७ में मरणोपरांत दिया गया। स्व. आदवन ने अपना सारा साहित्य १९६५ से १९८७ के बीच लिखा। इन तीनों साहित्यकारों के लेखन की संक्षिप्त जानकारी से तमिष् कहानी के विकास की प्रक्रिया का अन्दाज़ हो सकता है।

अलागिरी स्वामी की कहानियाँ क्लासिक की श्रेणी में आती है, और उनमें नैतिकता और संस्कृति हावी होती महसूस होती है। जयकांतन की कहानियों से लगता है कि वे चाहते हैं कि इंसानियत का एक हिस्सा जाए और कमज़ोर वर्गों की गरीबी और बदहाली को दूर कर दे। आदवन की कहानियाँ इंसानी दिमाग के तानों-बानों को टटोलती हैं। उनकी कहानियों में अक्सर या तो पिता-पुत्र या फिर पति-पत्नी के बिगड़े हुए रिश्ते मिलते हैं। इसका अर्थ है कि तमिष् कहानी आन्दोलन परम्परागत मूल्यों से शुरू होकर, जीवन के सम्पूर्ण अस्तित्वात्मक दृश्य के साथ, मौजूदा सामाजिक दर्शन तक आ पहुँचा है।

कहने का मतलब यह है कि तमिष् कहानी की विषयवस्तु अन्य भारतीय भाषाओं से ज़्यादा अलग नहीं है। लेखकों के नाम अलग-अलग हो सकते हैं, लेकिन साहित्य में तवारीख़ी घटनाएँ सभी भाषाओं में लगभग एक साथ, एक ही समय में घटी हैं। यह हैरत की बात ज़रूर है कि बिना किसी कोशिश के तमाम लेखकों ने एक समय में एक ही चीज़ क्यों महसूस की। इसका मतलब है कि देश के सभी अंचलों के लेखकों की सृजनात्मक अभिव्यक्ति में एक निश्चित अनुपात में राष्ट्रीय भावना का संचार होता रहता है।

आधुनिक तमिष़ कविता

□ का. ना. सुब्रह्मणयम

आधुनिक तमिष़ कविता दो निहायत जाइज़ दबावों के बीच पनपी है। यह दोनों दबाव महानतम् कवि सुब्रह्मण्य भारती की देन हैं। सुब्रह्मण्य भारती बहुत कम वक्फ़े (१८८२ से १६०१) में अद्भुत करिश्मे दिखा गए। वे दौलतमंद नहीं थे। उनकी रोज़मर्रा की ज़िन्दगी पत्रकारिता पर टिकी थी, और एक परेशान हाल देशभक्त होते हुए भी उन्होंने दो हज़ार वर्ष पुरानी परम्पराओं को तोड़ा और अपने गद्य व पद्य में नए नए शब्द ईजाद करके भाषा को मालामाल किया। उनका अपना लहजा अलग था। हालांकि १२वीं शताब्दी में कम्बन के बाद से तमिष़ कविता में किसी नई आवाज़ या नए लहजे की गुंजाइश नहीं थी।

भारती ने जोशोखरोश से भरपूर देशभक्त की तरह, तिलक के झण्डे तले अपना जीवन शुरू किया। उन्होंने उन तमाम 'नर्म पंथियों' का मज़ाक उड़ाया जो अपने अंग्रेज़ आक़ाओं से प्रार्थना कर रहे थे कि जब तक हम अपनी खुद की महिलाओं और हरिजनों को आज़ादी न दें, स्वतंत्रता के हक़दार नहीं हैं। सुब्रह्मण्य भारती ने अपने कवित्तों से माहौल में जोश भरा और जो भी राजनीतिक मुद्दे व समाज सुधार की गतिविधियाँ आवश्यक लगीं उन्हें अपनी कविता में उतारा। बेशक उनकी कविता संदेशों से भरपूर थी, लेकिन संदेशों के भार से उनकी कविता डूबी नहीं। उन्होंने भारत को एक मुकम्मिल देश और तमिष़ भाषा को एक महान भाषा की तरह, पूरे यकीन के साथ, दुनिया के सामने पेश किया।

पांडिचेरी में बीते उनके दिन बेशक़ीमती साबित हुए। वहाँ उन्हें वी. वी. एस. अय्यर और अरविन्द का साथ मिला, जिससे वे भारत की आत्मिक और महत्वपूर्ण परम्पराओं से अवगत हुए। वे शक्ति के उपासक थे? लेकिन संकुचित रूप से नहीं। उन्होंने न सिर्फ़ हिन्दू धर्म के सभी देवी-देवताओं के गीत गाये बल्कि अन्य धर्मों के भगवानों की भी अभ्यर्थना की। अल्लाह, बुद्ध और अन्यों को शामिल करके एक नया पंथ बनाया। वे बहन निवेदिता को अपना रूहानी और सियासी गुरु मानते थे। ठीक रवीन्द्रनाथ ठाकुर की तरह भारती ने अपने गीतों को भी संगीत से लबरेज़ किया, उसी से उनकी एक अलग शख़्सियत उभरी? लेकिन जीवन के अंतिम दिनों में उन्होंने गद्य काव्य के साथ भी कई प्रयोग किए। एक साथ दो चीज़ें उनके जेहन में गूँज रही थीं? एक तरफ़ बुनियादी चीज़ों के लिए वेदों की पुकार, दूसरी तरफ़ व्हिटमैन का लयात्मक गद्य और शायद गीतांजली का अंग्रेज़ी अनुवाद भी। उनके उसी गद्य काव्य ने बाद की पीढ़ी के कवियों को प्रभावित किया।

भारती ने भी बंगाल को ठीक उसी निगाह से देखा जैसे कि उनके ज़माने के पुनरुत्थान-वादी साहित्यकार देख रहे थे। उनकी शुरुआत की एक कविता बंकिम के गीत 'वंदेमातरम' का ही गर्मजोश अनुवाद था और उनका अंतिम आलेख रवीन्द्रनाथ ठाकुर द्वारा व्यक्तित्व पर दिए एक भाषण का अनुवाद। इन दोनों के बीच का उनका काम कई श्रेणियों में बँटा हुआ है। बाद के कवियों और कहानीकारों ने उसका भरपूर फायदा उठाया। अपने राष्ट्रवादी गीतों के अलावा उन्होंने श्रीकृष्ण पर कई कविताएँ लिखीं। एबसर्ड अन्दाज़ में बुलबुल पर एक कहानीनुमा लम्बी कविता लिखी। नाटक के अन्दाज़ में महाभारत के द्रौपदी प्रसंग पर भी एक लम्बी और जोशीली कविता लिखी, जिसमें द्रौपदी को भारत माता की तरह जंज़ीरों में बँधा हुआ पेश किया।

भारती के शुरू किए सिलसिले की ज़िम्मेदारी उनके बाद भारती दासन के सक्षम कंधों पर आई। भारती दासन ने ठीक भारती की तरह राष्ट्रवादी कविताओं के साथ धूम मचाई। लेकिन कुछ अर्से बाद वे द्रविड़ क़िस्म की साम्प्रदायिक राजनीति में उलझकर गुम हो गए। इसके बावजूद काव्य-प्रतिभा ने उनका साथ नहीं छोड़ा था। भारती दासन राजनीति और फ़िल्म दोनों में जगह बनाना चाहते थे, लेकिन वे इन दोनों के बीच कहीं अटककर रह गए। हालाँकि भारती दासन सुब्रह्मण्य भारती के मुक़ाबले में कुछ नहीं कर पाए थे फिर भी कवियों का एक वर्ग उनके नक़्शे क़दम पर चला।

भारती दासन और भारती के न रहने पर आम लोगों को अपनी गिरफ़्त में लेने वाली परम्परागत कविता भी ठहर सी गई। बहुत कम कवियों ने इस मैदान में ज़ोरआज़माई की। उस थोड़े से काम में भी इक्के-दुक्के ही हैं जिनके बारे में बात की जा सके। इस फ़ेहरिस्त में सबसे पहला नाम देसिका विनायक पिल्लै का है जिन्होंने बहुत ही सादी और आसान कविताएँ लिखीं, जैसे वे किशोरों से मुखातिब हों। गाँधी युग के राष्ट्रवादी की तरह कविताएँ लिखने वाले नामक्कल रामलिंगम पिल्लै को सुब्रह्मण्य भारती का सही उत्तराधिकारी माना जाता है। पिल्लै ने अपने गीतों में ऐसे युद्ध की कल्पना की जिसमें हथियारों का इस्तेमाल न हो, ख़ून-ख़राबा न हो। वह जंग सच्चाई के हथियार से लड़ी जाए। कोत्तमंगलम सुब्बु ने अपने अनगढ़ अन्दाज़ में महात्मा गांधी और भारती की जीवनियों को काव्य रूप में पेश किया। यहाँ एस. डी. एस. योगिआर का ज़िक्र भी करना ज़रूरी है। योगिआर ने अपनी कविता में कहानियों को बड़ी ख़ूबी के साथ पेश किया। 'अहिल्या और मेरिया मग्दलैन' जैसी ख़ूबसूरत कृति व उमर ख़ैयाम की रुबाइयों के बेहतरीन अनुवाद योगिआर को पहली पंक्ति के कवियों में खड़ा करते

हैं। उनकी मन को छूने वाली कृति 'डार्लिग राजम' है जो उन्होंने अपनी बेटी 'कनमणि' की मौत पर लिखी थी। योगिआर ने परम्परागत 'थैम्माँगु' बैले की तर्ज़ पर 'कम्युनिथैम्माँगु' नामक कविता लिखी। एकदम ग्रामीण लहज़े में लिखी गई दो हज़ार सतरों की यह कम्युनिस्ट विरोधी कविता काफ़ी चर्चित हुई।

अपरम्परागत शैली के कवियों ने सुब्रह्मण्य भारती के गद्य काव्य से काफ़ी प्रेरणा ली। इस संदर्भ में कु. पा. राजगोपालन और ना. पिचामूर्ति भी इनके आदर्श रहे। राजगोपालन और पिचामूर्ति के नाम 'मनिक्कोडी' कहानी आन्दोलन से भी जुड़े हैं। मनिक्कोडी गुट के एक और सदस्य ने अपने लेखन के मुतख़सिर दौर के अंतिम दिनों में कविताएँ भी लिखीं। इन्होंने वस्तुपरक कविताएँ लिखीं और उनमें आधुनिक ज़िन्दगी पर व्यंग्यात्मक सवाल उठाए। जिसमें लिपिस्टिक लगाकर रोज़ शाम को एक नए प्रेमी के साथ फ़िल्म देखने वाली आधुनिक युवती को भी पेश किया। उन्होंने अपने गीतों में आँख मूंद कर अपने पिता का आदेश मानने वाले राम पर भी व्यंग्य किया और राम के सीता की अग्निपरीक्षा लेने के निर्णय का भी मखौल उड़ाया। कीड़े-मकोड़ों की एक भव्य राजधानी पर भी गीत लिखा और उसे महाकाव्य कहा। उन्होंने भगवान मुरुगन को अपना ज़ंग आलूद भाला फैंकने की चेतावनी भी दी। अपने गीतों में उन्होंने आज के युग में भगवानों के लिए भी राशन कार्ड की ज़रूरत की बात कही।

अंतिम क्षणों में मनिक्कोडी गुट में सम्मिलित होने वाले का. ना. सुब्रह्मण्यम ने १९३९ में मुक्त कविता के साथ कई प्रयोग किए। लेकिन १९५८ तक इनमें से किसी एक प्रमुख कवि को भी मान्यता नहीं मिली। मगर १९५८ में मासिक पत्रिका 'सरस्वती' में का. ना. सुब्रह्मण्यम ने एक समीक्षात्मक लेख लिखा और उसमें मुक्त छन्द काव्य को 'नई कविता' का नाम दिया, तब से स्थिति बदल गई। १९५९ में सी. एस. चेलप्पा ने 'एज़ूथु' नामक पत्रिका शुरू की, जिसके माध्यम से कई नए कहानीकार सामने आए। फिर चेलप्पा ने अपनी पत्रिका में मुक्त छन्द कविता को भी जगह दी। ना. पिचामूर्ति ने उसका भरपूर फ़ायदा उठाया। पिचामूर्ति ने एक के बाद एक मुक्त छन्द कविताएँ लिखीं जिससे नए कवियों को काफ़ी प्रेरणा मिली और उन्होंने इस नई विधा में ज़ोरशोर से ज़ोरआज़माइश शुरू कर दी। का. ना. सुब्रह्मण्यम ने भी मुक्त छन्द कविताओं का सिलसिला जारी रखा। देखते-ही-देखते कई परम्परागत कविताएँ लिखने वाले भी उनके साथ आ गए। उनमें से शनमुगा सुब्बय्या, नकुलन, पसुवय्या, वैदीश्वरन, टी. एस. वेणुगोपालन और चारवाकन को नई कविता की पहली पीढ़ी माना जा सकता है।

पिचामूर्ति ने जो कविताएँ लिखीं वे मुक्तछन्द में तो थीं पर उन्हें गद्य-कविता नहीं कहा जा सकता था। दरअसल उनका अन्दाज़ एकदम नया था। इससे पहले उस तरह की कोई परम्परा ही नहीं थी। उन्होंने रिवायती शायरी और आधुनिक अन्दाज़ को मिलाने की कोशिश की थी। का. ना. सुब्रह्मण्यम ने पिचामूर्ति की कविताओं को 'नई कविता' की श्रेणी में रखने पर आपत्ति की। बावजूद इसके पिचामूर्ति का पूरी एक पीढ़ी ने 'नई कविता' के लिए ही आदर किया और नई कविता को अकादेमिक सम्मान दिलाने का सेहरा भी उन्हीं के सिर बाँधा। उनके उपमा और अलंकार रवीन्द्रनाथ ठाकुर व ख़लील जिब्रान की याद दिलाते हैं। लेकिन जो प्रेरणा उन्होंने नई पीढ़ी के मन में फूंकी थी वह सातवें दशक के मध्य में बिखर गई।

आरम्भिक काल के ज़्यादातर कवियों ने जानबूझकर खुद को टी. एस. इलियट के प्रभाव से बचाया। लेकिन १९६० में कविता के क्षेत्र में क़दम रखनेवाले सी. मणि ने पूरी तरह सचेत

होकर ख़ुद को इलियट के ख़ाके में ढाला और कुछ समय तक उस तरह की कविताएं लिखीं। लेकिन उनका प्रभाव कुछ ही समय में हवा हो गया। शण्मुगा सुब्य्या ने इसी अभिव्यक्ति और शैली का झण्डा फहराया, उन्हें छोटे रूप में जारी इस परम्परा का प्रमुख स्वर माना जा सकता है। उन्होंने भी नई कविताएँ लिखनी छोड़ दीं, इसीलिए उन्हें सहयोग मिलने या उनसे प्रेरणा लेने का सवाल ही ख़त्म हो गया। नकुल निहायत बौद्धिक किस्म की कविताएँ लिख रहे हैं। पिछले दिनों उनके दो छोटे-छोटे काव्य संकलन दिखाई भी पड़े हैं जबकि सातवें और आठवें दशक में नई कविता लिखने वालों में, उनके भक्तों की कमी नहीं थी। पसुब्य्या ने शुरू में अच्छा काम किया था, लेकिन अति बौद्धिकता का चोला पहनने से वे कहानी और कविता दोनों से हाथ धो बैठे।

छठे दशक में ये स्वर अपने निजी अन्दाज़ों में गूँज पैदा कर रहे थे तो सातवें दशक में कई लोग मुख़्तलिफ़ लहजा लेकर आए, उनमें ज्ञानकौत्तम काफ़ी प्रभावशाली रहे। थरमु शिवारामू अलंकारों से भरपूर अपनी सोच से अलग तरह की नई कविता गढ़ रहे थे। फिर अचानक वे अपने अलंकारों पर काबू पा लेते थे क्योंकि दरअसल अलंकार पुराने ढर्रे की कविता की पहचान हैं। नई कविता से उनका ज़्यादा सरोकार नहीं है। ज्ञानकौत्तम के रूप में नई कविता ने अपना प्रमुख प्रवक्ता पा लिया था और इस तरह कविता ने बौद्धिक एवं सामाजिक गतिविधि का रूप धारण कर लिया। मौजूदा परिस्थितियों पर टिप्पणी करने वाली उनकी कविताओं में ताज़गी है और वे हर हाल में डब्लयू. एच. ऑडन या डब्लयू. बी. यीट्स की सियासी शायरी का मुक़ाबला कर सकती हैं। नई कविताओं के छोटे-छोटे चार काव्य संकलन उनके खाते में दर्ज हैं हालांकि उन सब कविताओं का एक संकलन उनकी छवि को बेहतर तरीक़े से पेश कर सकता है।

मयन का. ना. सुब्रह्मण्यम नई कविता के साथ अपने तरीक़े से प्रयोग कर रहे हैं। बीच-बीच में उनके समीक्षात्मक वक्तव्य नई कविता के आन्दोलन को आगे बढ़ने में मदद देते हैं। १९७७ में प्रकाशित उनके काव्य संकलन में ९० कविताएँ हैं, जिनमें ज़्यादातर कविताएँ प्रयोगात्मक हैं। तब से वे विभिन्न विषयों पर पूरे आत्मविश्वास से लिख रहे हैं और उनकी कविताओं को नई कविता के रूप में मान्यता भी मिल रही है। उनकी समीक्षात्मक टिप्पणियाँ विधा को उनके लिहाज़ से सही रूप और दिशा भी दे रही हैं। अब नई कविता को अकादेमियों और प्रगतिशीलों ने भी स्वीकार कर लिया है। पहले यह दोनों ही उसके खिलाफ़ थे।

सातवें और आठवें दशक में तमिष् की नई कविता को कई उतारों चढ़ावों से से गुज़रना पड़ा। एक तरफ प्रगतिशील कवियों ने पहले इसका विरोध किया फिर इसे 'सामाजिक बदलाव' और 'दुनिया के मज़दूरो एक हो जाओ' जैसे नारों के लिए इस्तेमाल किया। दूसरी तरफ़ फ़िल्मी गीत लिखने वाले या सस्ती शौहरत पाने वाले कवियों और पश्चिमी अन्दाज़ की पत्रिकाओं ने नई कविता को अपना लिया। फिर वे इसकी ईजाद का सेहरा अपने-अपने सिरों पर बाँधने के लिए लड़ने लगे।

इसी दौर में कण्णनदासन भी मौजूद थे। वह कवि से कहीं ज्यादा तमिषों के लिए सामाजिक व्यक्तित्व थे। उन्होंने कई महत्त्वपूर्ण काम किए, जिनमें उनके बेहतरीन फ़िल्मी गीत भी शामिल हैं। फ़िल्मी गीतों से उन्हें बहुत शोहरत मिली। उनके सभी गीतों की पहली पंक्ति हमेशा बहुत अच्छी होती थी। लेकिन वह पूरे गीत को उसी तरह नहीं कस पाते थे। आज भी वह तमिष् भाषा के कवि के रूप में सबसे ज्यादा चर्चित हैं।

परम्परागत कविता आज भी जीवित है, लेकिन आज के वैज्ञानिक युग, इंसानी बेचैनी और तनाव में उसकी गुंजाइश बाक़ी नहीं बची है। परम्परागत कविता के क़ायदे-कानून निहायत सख़्त होते हैं। किसी ख़ास मुहावरे को ख़ास जगह इस्तेमाल करना है, इस चक्कर में अक्सर विषय हाथ से छूट जाता है। जबकि नई कविता ने आधुनिक जीवन को उसके असली रूप में, पूरी तड़प और बेचैनी के साथ अभिव्यक्त करने की आज़ादी दी है। नई कविता दरअसल परम्परागत कविता की लयबद्धता और मुक्त छन्द के पैमाने (वज़न) का संगम है। यानी ठीक उसी तरह जैसे टी. एस. इलियट ने अपनी कविता में एलिज़ाबेथ युग के रंगमंच की लयबद्ध भाषा का इस्तेमाल किया। नई कविता ने अपने क़दम पूरी तरह जमा लिए है। शण्मुगा सुबय्या की कविताओं से और नकुलन, ज्ञानकौत्तम, मयन का. ना. सुब्रह्मण्यम की जारी कोशिशों से, यह विधा आनेवाले समय में, वेशक तमिष् साहित्य की परम्परा का रूप धारण कर लेगी। आज भी इस विधा में महत्वपूर्ण कविताएं लिखने वाले कवियों की एक लम्बी फ़ेहरिस्त बन सकती है जिसमें स्व० आत्मानाम, विक्रमादित्यन, कलाप्रिया, ब्रह्मराजन, सुकुमारन और कई अन्यों के नाम भी फ़ेहरिस्त में होंगे। अब ज़रूरत इस बात की है कि सुब्रह्मण्य भारती और पुदुमैपित्तन से लेकर आधुनिक कवियों की एक फ़ेहरिस्त बने। उनकी बेहतरीन कविताएँ छाँटी जाएँ। नई कविता को ठीक तरीके से परिभाषित कर, इस पूरे काम की निष्पक्ष समीक्षा की जाए, ताकि भविष्य में यह विधा अच्छी तरह फूले फले।

अव वक़्त आ गया है। जब न सिर्फ़ नई कविता पर वल्कि सम्पूर्ण कविता पर बहस होनी चाहिए। नई कविता ने काव्यात्मक खूबियों के बल पर अपनी अलग पहचान बनाई है। नई कविता बाक़ी सभी कविताओं से अलग है, यहाँ तक कि 'जंगम-कविता' से भी। यानी वल्डुवर, इलंगो और अन्य कवियों की कविताओं से भी अलग। नई कविता ही पूरी पवित्रता और सरलता के साथ अपने समय की सही आवाज़ है।
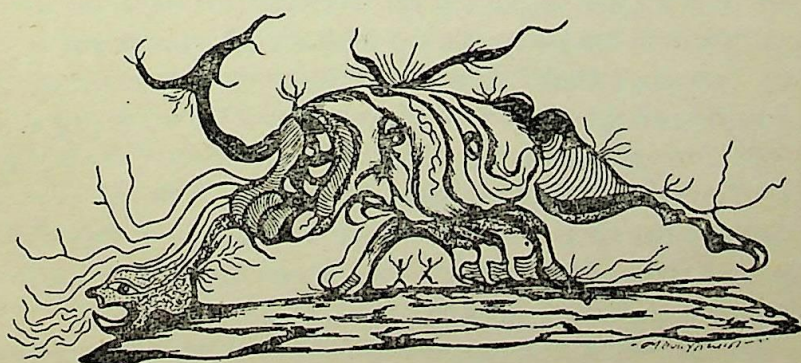
'अकाल में सारस' (कविता संकलन) : केदारनाथ सिंह
प्रकाशक : राजकमल प्रकाशन
१-बी, नेताजी सुभाष मार्ग
नयी दिल्ली ११० ००२
प्रथम संस्करण १९८८
मूल्य रु. ३५.००

उम्मीद नहीं छोड़तीं कविताएँ

□ परमानंद श्रीवास्तव

'अकाल में सारस' में केदारनाथ सिंह की '८३ से '८७ के बीच की कविताएँ संकलित हैं जो **रूप, शिल्प** और **भाषा** की दृष्टि से ही नहीं, **विचारधारा** और **संवेदना** तथा काव्य की **अंतर्वस्तु** की दृष्टि से भी कवि के भीतर की बड़ी बेचैनी और बड़ी **सर्जनात्मक ऊर्जा** को व्यक्त करती हैं। केदार इधर के कवियों में लगभग अकेले हैं जिनके यहाँ इतना स्पष्ट परिवर्तन और इतना सम्यक् विकास दिखाई देता है। कवि-कर्म आज भी केदार के लिए बड़ी चिन्ता है और वह मनुष्य के लिए चिन्ता का लगभग पर्याय है। जिन्हें पहली नज़र में दिखाई देता है कि शायद केदार की कविता का अनुभव-संसार बहुत **सुनहरा** और **चमकीला** है, वे अनुभवों के **मूल स्रोत** तक (कविताओं के सघन पाठ के ज़रिए) अगर जा सकें तो उन्हें केदार की कविता का यथार्थ और दुख सिर्फ़ चटख चमकीला नहीं जान पड़ेगा। वे यथार्थ और दुख की चमक के पीछे का **रूखड़पन, खरापन** और **कठोरपन** भी देख सकेंगे।

इसमें सन्देह नहीं कि सरल अर्थ में सामाजिक यथार्थ की त्रासदी के चित्र केदार के यहाँ विरल हैं। केदार की कविताएँ अधिक गहरे अर्थ में **जीवन की स्वीकृति** की कविताएँ हैं। फिर भी जीवन की जटिलता और उसकी ख़ौफ़नाक सच्चाइयों का अहसास उनकी इस स्वीकृति में ग़ायब नहीं है। उन्हें **समय के चींथते हुए अँधेरे** का अहसास भी है। उनकी कविता में प्रकट **ताकती हुई आँखों का अथाह सन्नाटा** इसी दुनिया की ख़ौफ़नाक सचाई है। **सिवानों पर स्यारों**

के फेंकरने की आवाज़ें इसी संसार में घटित त्रासदी की आहटें हैं। **बिच्छुओं के उठे हुए डंकों** की सारी बेचैनी इसी दुनिया का सच है, जिसे केदार स्वीकार करते हैं और आत्मा में भर लेना चाहते हैं। वस्तुतः केदार के यहाँ आज के कठोरतम यथार्थ का सामना करने की एक ख़ास हिकमत है—**जीवनोल्लास** ! जीवन की भयावह सच्चाइयों का सामना करने का एक ख़ास ढंग ! बहुत कुछ औसत भारतीय किसान जैसा—जो सारे दुखों में इसी **जीवनोल्लास** के लिए जगह बचाये रखता है। यह अबोध क़िस्म का आनंद नहीं है, न यथार्थ से निरा काल्पनिक बचाव ! इसे एक **सम्यक् जीवन दृष्टि** के रूप में देखना चाहिए। इसी में जोखिम उठाने का तीखा साहस भी मौजूद है।

केदार की आरंभिक पहचान एक **बिम्बधर्मी** कवि के रूप में बनी थी। यथार्थ को **चित्रात्मक** बनाने और **सूक्ष्म काव्यात्मक विडम्बना** में ढालने की ओर झुकाव उनके यहाँ तब भी दिखाई देता था। अब उनके यहाँ सच्चाइयाँ जिस तरह मूर्त होती हैं, **काव्य दृष्टि** के साथ **जीवन दृष्टि** का साक्ष्य भी बखूबी मिल सकता है। काव्य विडम्बना के उपयोग में केदार की दिलचस्पी आज भी बनी हुई है पर अब यह महज़ काव्ययुक्ति नहीं, दृष्टिकोण का हिस्सा है। वह पिछला दौर आधुनिकतावाद के उभार का दौर था जब **आंतरिक असहायता, अजनबीपन** और चीज़ों के प्रति **अमूर्त रहस्यमयी जिज्ञासा** को एक विलक्षण काव्य-विधान में अभिव्यक्त करने की कोशिश की जा रही थी। अप्रत्याशित और अकल्पनीय को साधने का वह ढंग दूर की कौड़ी लाने जैसा था। नकार, हताशा पस्ती, परायापन अनुभव के रूप में त्रासद थे और रूप या शिल्प के स्तर पर चमत्कार प्रेरित। इसकी काट एक हद तक **प्रतिबद्ध कविता** ने की, जो '६० के बाद की मुख्य प्रवृत्ति के रूप में जानी गयी और जिसे धूमिल जैसे कवियों ने समय के अनुभव और अपनी ख़ास प्रतिरोधी चेतना के बल पर प्रतिष्ठित किया। केदार ने अपने बाद के इन कवियों से जो ग्रहण किया और उन्हें अपनी ओर से काव्यानुभव को गहरे जीवनधर्मी आवेग से समृद्ध करने की जो प्रेरणा दी, उसका अध्ययन '६० के बाद के अगले डेढ़-दो दशकों की कविता की विचार-संवेदना और भाषा के सूक्ष्म विवेक के आधार पर ही संभव है। धूमिल के समय की कविता बहुत कम समय में अपनी ही बनाई हुई रूढ़ियों में क्यों सीमित होकर रह गयी, इसकी जाँच की जानी चाहिए।

केदार उस पीढ़ी के कवि हैं जिसमें कइयों ने अपनी क्षमता के अनुरूप अधिक निजी **स्वायत्त** पहचान बनायी और देर तक काव्य परिदृश्य में टिक सके। **रघुवीर सहाय और केदारनाथ सिंह** उन कवियों में हैं जिनसे बराबर उम्मीद की जाती रही है कि वे कविता में कुछ ऐसा नया कर दिखायेंगे जो यथार्थ को नया परिप्रेक्ष्य और जीवन को देखने का नया विवेक दे सके। रघुवीर सहाय **शिल्प** पर ज़्यादा भरोसा करते हैं और एक प्रकार से देखा जाए तो निषेध और तनाव में संगठित अराजक विन्यास के ज़रिए भी वांछित प्रभाव पैदा करना चाहते हैं। केदार का अधिक बल **भाषा** पर है और भाषा से यथार्थ को जानने और उसे सघन अर्थमयी अभिव्यक्ति देने का जो विवेक और साहस उनके यहाँ दिखाई देता है वह उसी रूप में अन्यत्र अकल्पनीय है। कविता का संगठन भी उन्हें उतना ही ज़रूरी जान पड़ता है जितना कथ्य, विचार या संवेदना। कठिनतम क्षणों में भी उनकी कविताएँ **उम्मीद नहीं छोड़तीं**— यह एक ऐसा अभिप्राय है, जिसके सहारे उनकी कविता की समूची व्याख्या की जा सकती है।

अपनी पीढ़ी के कवियों में केदार अकेले हैं जिन्होंने **गाँव** और **शहर** के अनुभव और संवेदन का इतना सघन संश्लिष्ट उपयोग किया। सर्वेश्वर के यहाँ 'गाँव' और 'कस्बा' आते हैं तो

अक्सर विचारधारात्मक प्रत्यय बनकर। केदार के लिए गाँव जितना **बाहर** है उतना ही **भीतर** रग-रेशे में समाया हुआ। उनकी संवेदना का मूल स्रोत वही है—जीवन के आधुनिक बोध ने उसे ही अधिक तीखा और प्राणवान बनाया है। केदार के यहाँ बहुत गहरी संवेदना के स्तर पर परिवेश और प्रकृति के साथ, मानवीय निरन्तरता के व्यग्र जीवन्त अनुभव के साथ कविता का नया संगठन बनाने का स्पष्ट प्रयत्न दिखाई देता है। यह **संवेदना विचारधारा** और **जीवनदृष्टि** से प्रगाढ़ होती है। महज़ विचारधारा के बल पर जीवन के यथार्थ को काव्यानुभव में उस तरह बदला नहीं जा सकता, जैसा करने में केदार सफल हुए हैं। **संवेदना** केदार की कविता की बड़ी ताक़त है। संवेदना के बल पर ही यह कविता तुरन्त गिरफ़्त में लेती है और हम पर छा जाती है। केदार की दुनिया में प्रवेश करना सबसे पहले एक सुखद आश्चर्य जान पड़ता है। चीज़ों के आपसी सम्बन्ध और द्वन्द्व को, **जीवन** और कभी उसके बरक्स **मृत्यु** को भी हम अक्सर एक नयी शक्ल में देखने लगते हैं। **यथार्थ** से **नया परिचय**, सम्पर्क या सामना केदार की कविता का ज़रूरी पहलू है।

यह सही है कि केदार से अराजक काव्य रूप की माँग नहीं की जा सकती। केदार कविता से अक्सर मुलायम क़िस्म की छेड़छाड़ करते दिखाई देते हैं। यहाँ भी वे कविता के **रूप** और **संगठन** को सँभाले रहते हैं, जिससे उनकी **जीवननिष्ठा** और **काव्यात्मक ईमानदारी** का पता चलता है। पर देखने की चीज़ यह है कि सिर्फ़ **ललित** और **कोमल** ही नहीं, **उदात्त** और **भव्य** भी केदार की काव्यसंवेदना के ख़ास सरोकार हैं। यह आकर्षण जितना **रूप** का है, उतना ही **वस्तु** का भी। केदार के जीवनानुभव की वास्तविक पहचान के लिए इस दूसरे पक्ष पर ध्यान देना भी ज़रूरी है।

केदार के इस संग्रह की पहली ही कविता **मातृभाषा** संकेत है कि वे अपनी कविताओं की मूल शक्ति किस स्रोत से ग्रहण करते हैं। भाषा की जीवनीशक्ति अपने अनुभवों के मूल स्रोत से जुड़कर ही संभव है :

> जैसे चींटियाँ लौटती हैं
> बिलों में
> कठफोड़वा लौटता है
> काठ के पास
> वायुयान लौटते हैं एक के बाद एक
> लाल आसमान में डैने पसारे हुए
> हवाई अड्डे की ओर
>
> ओ मेरी भाषा
> मैं लौटता हूँ तुममें
> जब चुप रहते-रहते
> अकड़ जाती है मेरी जीभ···

संग्रह में इस कविता के तुरंत बाद **अँगूठे का निशान** कविता की आख़िरी पंक्तियाँ 'अँगूठे' के निशान दुहरे अर्थसंगठन को प्रत्यक्ष करती हैं—

> 'मैंने···मैंने'
> सारे हस्ताक्षरों को

अँगूठा दिखाते हुए
धीरे से बोला
एक **अँगूठे का निशान**
और एक सोख़्ते में
ग़ायब हो गया

'हस्ताक्षरों' को अँगूठा दिखाने में 'अँगूठा दिखाना' महज़ मुहावरा नहीं है, अर्थवान 'निरक्षर' की पक्षधरता भी है। केदार के शब्द दूर तक अर्थ फेंकने वाले व्यंजक शब्द हैं इसलिए उनके प्रति अधिक एकाग्र और उत्सुक होना पड़ता है। ये कविताएँ एकाधिक बार पढ़ी जाकर ही अपना सम्पूर्ण अर्थ खोलती हैं। सीधी सरल जान पड़ने वाली कविताएँ भी अर्थ के मार्मिक अनुषंग छिपाये रहती हैं।

'जड़ों की ओर लौटना' केदार के काव्य संसार का 'क्लीशे' नहीं है। केदार की कविता वहाँ है—जहाँ **'चावल/दाना बनने से पहले/सुगन्ध की पीड़ा से छटपटा रहा हो'**—जहाँ **'तसले नहीं भरेंगे/कटोरे नहीं भरेंगे/लेकिन फिर भी/भर जायेगा/भर जायेगा बहुत कुछ/और अगर आ ही गये···'**—जहाँ होंठों **को बहुत कुछ चाहिए / उन्हें चाहिए 'हाँ' का नमक / और 'ना' का लोहा / और कई बार दोनों/एक ही समय'** – ! जहाँ भयंकर अकाल में **'दूब'** की संभावना शेष रह गयी—वहीं है केदार की कविता :

हाँ-हाँ दूब है—
पहचानता हूँ मैं

लौटकर यह ख़बर
देता हूँ पिता को
अँधेरे में भी
दमक उठता है उनका चेहरा
'है—अभी बहुत कुछ है
अगर बची है दूब···'

केदार अगर **ब्रह्माण्ड** को एक **छोटी-सी साँस की डिबिया** में भर लेने का प्रस्ताव करते हैं तो समझना चाहिए कि यह कविता का रहस्यवाद नहीं बल्कि इसी दुनिया में संघर्ष के लिए साहस जुटाने का उपक्रम है। याद आ सकते हैं– **इक़बाल** की ओर इशारा करते हुए प्रेमचंद कि **'अगर तुम्हें जीवन के रहस्य की खोज है तो वह तुम्हें संघर्ष के सिवा और कहीं नहीं मिलने का !'** केदार का उपर्युक्त प्रस्ताव वस्तुतः जीवन के फैलाव को अपने में समेटने का प्रस्ताव है। अपने परिवेश से अपनी परम्परा से वह समूचा आवेग ग्रहण करते हुए, जो जीने की अनिवार्यता का साक्ष्य है, केदार सब मिलाकर मनुष्य के लिए चिन्तित हैं—मनुष्य के वर्तमान और भविष्य के लिए। **कुछ सूत्र जो एक किसान बाप ने बेटे को दिये**—कविता के सूत्र केदार के लिए **'सच्ची मनुष्यता'** की पहचान कराने वाले हैं जिसके लिए आचार्य शुक्ल ने एक प्रकार के **'रागात्मक सत्त्व'** पर बल दिया था :

और सबसे बड़ी बात मेरे बेटे
कि लिख चुकने के बाद
इन शब्दों को पोंछकर साफ़ कर देना

ताकि कल जब सूर्योदय हो
तो तुम्हारी पटिया
रोज़ की तरह
धुली हुई
स्वच्छ
चमकती रहे

जिस कविता के आधार पर संग्रह का नाम रखा गया है—'**अकाल में सारस**' एक सीधी सादी पर अर्थमयी कविता का उदाहरण है जिसमें लोक-विश्वास, शेष सृष्टि के प्रति गहरी पर्युत्सुकता और विकलता अभिव्यक्ति पाती है। केदार का **वस्तु पर्यवेक्षण लोकसम्पृक्ति** का अनूठा उदाहरण है। कविता एकदम सादे निरावेग ढँग से शुरू होती है—

तीन बजे दिन में
आ गये वे
जब वे आये
किसी ने सोचा तक नहीं था
कि ऐसे भी आ सकते हैं सारस

'कि ऐसे भी'—बस यहीं से कविता में आवेग और उत्तेजना भरने लगती है और सारस ही नहीं आसमान में छा जाते, कविता भी दिमाग़ पर छा जाती है। जो दूसरों के लिए सिर्फ़ कुतूहल का विषय है वह **बुढ़िया** के लिए चिरपरिचित संदर्भ है, अत्यन्त जाना-पहचाना, बरसों से देखा-सुना। **ज़रूर ज़रूर / वे पानी की तलाश में आए हैं।'** 'वह रसोई में गई/और आँगन के बीचोबीच/लाकर रख दिया/एक जलभरा कटोरा।' पर वे थे कि न उन्होंने बुढ़िया को देखा, न जलभरे कटोरे को! उन्हें तो पता तक नहीं था कि 'नीचे रहते हैं लोग/जो उन्हें कहते हैं सारस।' पानी की खोज में दूर-देसावर जाने वालों ने शहर को देखा तो जैसे दया और घृणा की अनिश्चित निगाह से। फिर खो गये। यह 'दया' और 'घृणा' से देखना—आख़िर क्या अर्थ रखता है! समय के संकट का अहसास कविता में मुखर शाब्दिक बयान ही नहीं करता—ऐसी '**छूटी हुई जगहें**' भी कराती हैं जो पाठक की संवेदना को अपनी पकड़ में ले लेती हैं। कविता की यांत्रिक एकरसता के बीच ये अनुभव एक सुखद राहत देने वाले हैं। 'दूध', 'अकाल', 'सारस' शब्दों में जो प्रतीकार्थ भरा गया है वह गहरे काव्य विवेक और जीवन प्रापक्ष का फल है।

केदार के यहाँ **लोक-जीवन** के प्रति ही नहीं, **लोकशैली** के लिए भी आकर्षण बढ़ा है। केदार की कविता में लोक जीवन से जो नयी सम्पृक्ति दिखाई देती है उसकी जांच भी गहरे स्तर पर की जानी चाहिए। बहुत से प्रगतिशील कवियों के यहाँ लोकसम्पृक्ति का साक्ष्य स्थूल युक्तियों पर आधारित है। यहाँ जिस अनोखी ताज़गी के साथ लोकजीवन कविता में जगह बनाता है वह कल्पना समृद्ध संवेदनशील कविता के यहां ही संभव है। लोकशैली भाषा और कविता के लिए एक प्रकार के क्रीड़ाभाव की छूट देती है। पर यह केवल रूपगत प्रयोग के कारण नहीं वस्तु (कन्टेंट) की दृष्टि से भी कुछ नया जोड़ने वाला है और इसीलिए सार्थक है।

गाय को चाहिए बछड़ा
बछड़े को दूध
दूध को कटोरा

कटोरे को चाँद
और मुझे ?
और कविता ख़त्म कहाँ होती है—यहाँ —
ओ मेरी घूमती हुई
उदास पृथ्वी
मुझे सिर्फ़ तुम···
तुम···तुम···

लोककथा शीर्षक कविता में बयान की पूरी पद्धति ही महत्वपूर्ण है। 'रास्ता' की पूरी व्याख्या अन्यत्र (आलोचना : ८३, समकालीन कविता और काव्यमूल्य) हम कर चुके हैं। उसमें एक सार्थक प्रतीकात्मक व्याप्ति भी है और एक दिलचस्प तथा विलक्षण कसाव भी। **'रास्ता'** रास्ता ही नहीं, जैसे एक सूक्ष्म स्तर पर 'विचारधारा' भी है—जिसे बल मिलता है एक बूढ़े किसान से ! **'अब दृश्य बिल्कुल साफ़ था/अब हमारे सामने/गाय थी/किसान था/रास्ता था/सिर्फ़ हमीं भूल गये थे/जाना किधर है !'** कविता की सादगी में भी सघन विचार संभव हैं। **सादगी** यहाँ हिकमत भर नहीं, एक विशिष्ट **जीवन** अभिप्राय है। जीवन की पहचान—केदार बार-बार इस प्रसंग की ओर लौटते हैं। सच पूछा जाय तो **जीवनधर्मिता** को काव्य-मूल्य या साहित्यिक मूल्य मानने की प्रेरणा **नागार्जुन, त्रिलोचन** और **केदारनाथ सिंह** की कविता से ही मिली। **'पूँजी', 'जन्मदिन की धूप में'** और अन्य कई कविताएँ जीवन की स्वीकृति या पहचान के मूल अनुभव से ही स्फूर्त हुई हैं। सारा शहर छान डालने के बाद केदार इस नतीजे पर पहुँचते हैं कि **इस बड़े शहर में**/मेरी सबसे बड़ी **पूँजी है/मेरी चलती हुई साँस**/मेरी छाती में बन्द मेरी छोटी-सी पूँजी/जिसे रोज़ मैं **थोड़ा-थोड़ा/खर्च** कर देता हूँ।' यह पूँजी अक्षुण्ण बनी रहे, इसके लिए जो काव्य-तर्क ध्यान में आता है वह है—**'भूरा-भूरा-सा एक जन बैंक'**। यह वास्तविक तर्क भी है **और** काव्य-तर्क भी। और इसकी अर्थमयता अगाध है। कविता जीवन के नज़दीक आ गयी है, इससे एक प्रकार का बौद्धिक आलस्य ही यह धारणा बना सकता है कि **जीवन के गहरे** आशय कविता के काम के नहीं रह गये हैं। केदार **जीवन के गहरे आशयों के कवि** हैं। कविता का आगे का हिस्सा है—

क्यों न ऐसा हो
कि एक दिन उठूँ
और वह जो भूरा-भूरा-सा एक **जनबैंक** है—
इस शहर के आखिरी छोर पर—
वहाँ जमा कर आऊँ

सोचता हूँ
वहाँ से जो मिलेगा ब्याज
उस पर जी लूँगा ठाट से
कई-कई जीवन

'जन्मदिन की धूप में' कविता **'पूँजी'** का ही विस्तार है। ये कविताएँ साथ-साथ पढ़ी जा सकती हैं। वहाँ जो **'भूरा-भूरा-सा एक जनबैंक'** है यहाँ **'एक उदात्त गरिमामय ब्लडबैंक'** !

कहीं पूरब में है
एक **उदात्त गरिमामय ब्लडबैंक**

जहाँ से हर सुबह
मैं बिना हस्ताक्षर के
निकाल लेता हूँ धूप को
यों वह रोज़ मेरे खाते से निकलकर
चली आती है मेरी ज़िन्दगी में···

कविता के अन्त में यह दार्शनिक युक्ति 'यों सब एक है/पाना भी/खोना भी/'—न भी होती तो कविता का मूलभाव यहाँ सुरक्षित और एकाग्र था ! 'मेरी सारी कोशिश/बस इतनी-सी है/कि बची रहे धूप/और बचा रहे दोना भी।' केदार अपनी कल्पना के लिए किन स्रोतों-सन्दर्भों से शब्द और अभिप्राय लेते हैं, यह देखने की चीज है। जहाँ से हमारा रोज़मर्रा का जीवन जुड़ा है, जहाँ हम हर दिन होते हैं, कामकाज में लगे—वहीं से कविता प्राप्त की जा सकती है।

'सड़क पर दिख गये त्रिलोचन' 'बाघ' सीरीज़ के लम्बे कविता-क्रम का एक हिस्सा है। 'बाघ' की प्रतीकात्मकता से पहले शिशुकल्पना में जो उसका अनोखा रूप या बिम्ब आता है, मूर्त्तता में सम्मोहक, विस्मयकारक—वह महत्वपूर्ण है। 'एक छोटा-सा **सुन्दर** बाघ'। 'सुन्दर' विशेषण **'साहस'** से जुड़कर और अधिक अर्थवान हो उठता है।—'जो तारों से लड़ चुका था/लड़ चुका था चाँद और सूरज और समुद्री डाकुओं से/—।' शिशु-कल्पना को उत्तेजित करने वाली और उसी से स्फूर्ति पाने वाली यह सक्रिय चित्रात्मकता ध्यान आकृष्ट करती है। वही 'बाघ' खन्न से टूट जाता है और बच्चे की ज़िद है कि उसे वही बाघ चाहिए। शास्त्री जी के अदम्य आत्मविश्वास की झलक वहाँ है—जहाँ वे कहते हैं—**'चलो वही लाते हैं।'** जहाँ उन्हें संभावना दिखती है वह संदर्भ या स्रोत महत्वपूर्ण है।

मिलेगा—उन्होंने कहा
कहीं न कहीं
किसी कुम्हार की आँखों मे
वह होगा ज़रूर
जस का तस

'बाघ' की मूल्यवत्ता या प्रतीकात्मक सार्थकता सघन होने लगती है जब इस कविता खंड के अन्त में ये पंक्तियाँ आती हैं—

तब से कितना समय बीता
हम अब भी चल रहे हैं
आगे-आगे कवि त्रिलोचन
पीछे-पीछे मैं
एक ऐसे बाघ की तलाश में
जो एक सुबह
धरती पर गिरकर टूट जाने के पहले
वह था

प्रतीक रहस्य को अर्थसीमित ही नहीं करता, अर्थव्याप्ति भी देता है, उसे यथार्थ के निकट भी लाता है। 'कितना समय बीता' यह सिर्फ़ 'लहजा' या 'अन्दाज़े-बयाँ' नहीं है, संघर्ष की निरन्तरता 'उदात्त' मूल्य की खोज की निरन्तरता का संकेत है। यह एक अविराम प्रक्रिया है। केदार की कविता स्थितियों के चित्रण तक सीमित नहीं है—वह मनुष्य के वृहत्तर संघर्ष को विचार के

केन्द्र में लाती है और कल्पना, अनुभूति तथा संवेदना के बल पर उससे एक नया सम्बन्ध स्थापित करती है। इस लम्बे संघर्ष में अतीत, वर्तमान और भविष्य घनिष्ठ रूप में एक-दूसरे से गुँथे-मिले हैं।

'**आँकुसपुर**' में ट्रेन नहीं भी रुकती हो, कविता रुक सकती है। 'आँकुसपुर' हर तरह से साधारण है, ट्रेनें जिसे छोड़कर चल देती हैं — रुकती है तो सिर्फ़ दसबजिया। अब यह सवाल सवाल भी कहाँ रह गया है - '**फिर पृथ्वी पर क्यों है आँकुसपुर / जब रहा नहीं गया / तो तार पर बैठी एक चिड़िया ने पूछा / दूसरी चिड़िया से।**' '**गंगा**' उसी परिवेश का एक महत्वपूर्ण प्रसंग है जहाँ से केदार को कविता के लिए भी और जीने के लिए भी अक्षय शक्ति और ऊर्जा मिलती है। '**गंगा के जल में कितनी लम्बी और शानदार लगती है / एक बूढ़े आदमी के खुश होने की परछाईं।**' गंगा के प्रति कृतज्ञता का भाव एक सच्ची भारतीय आस्था की अभिव्यक्ति है। गंगा से मामूली आदमी का जो सम्बन्ध बनता है, वह विलक्षण है। '**बालू का स्पर्श**' कविता की ज़मीन भी यही है — बरसों बाद, गंगा में नहाने का अनुभव। यहाँ 'व्यंग्य' पर ध्यान दें —

> खूब खूब अच्छा लगा
> ठण्डा ठण्डा जल
> **पवित्र** जल
> जो **मछली की गंध** से **धुलकर**
> और भी ज़्यादा **पवित्र** हो गया था

बालू का स्पर्श प्रकारान्त से जीवन का ही स्पर्श है। जीवन की सच्ची निसर्ग ऊष्मा का स्पर्श !

केदार की कवि-दृष्टि में एक सचेत कला-दृष्टि भी प्रायः मौजूद रहती है। व्यंग्य विरोध-विडम्बना के काव्योपयोग के प्रति उनकी सजगता महत्वपूर्ण है। '**पर्वस्नान**' की शुरू की पंक्तियों में ही **विरोधात्मक** स्थिति का संकेत है :

> रेत पर
> एक **लाश** रखी थी
> **एक पके खरबूज की** खुशबू
> फैली थी रेत पर

'**लाश**' के विरुद्ध '**पके खरबूज की खुशबू !**' मृत्यु के विरुद्ध **जीवन** ! आगे अंत की ओर बढ़ते हुए पुनः संकेत है—'काँपते हुए जल में / **अमरता की छपाछप होड़** मची थी। और कविता ख़त्म होती है तो, यहाँ—

> लाश टुकुर टुकुर देख रही थी
> जीवन का
> एक अद्भुत उत्सव—
> मनाया जा रहा था
> रेत में

मृत्यु के विरुद्ध जीवन का संघर्ष—यही 'अड़ियल साँस' शीर्षक कविता का विषय है। '**अड़ियल**' विशेषण में ही गहरी जिजीविषा की अर्थध्वनि मौजूद है। 'इस तरह **अड़ियल साँस** को / मैंने देखा / **मृत्यु से खेलते** / और **पंजा लड़ाते** हुए / **तुच्छ** / **असह्य** / **गरिमामय** साँस को / मैंने पहली बार देखा / इतने पास से !' विपरीतार्थक शब्द कैसे एक दूसरे से मिलकर एक अखंडित अर्थ देने लगते हैं—'**तुच्छ**' और '**गरिमामय**' का संयोग इसका उदाहरण है। 'अड़ियल साँस'

निश्चित रूप से इस संग्रह की सबसे महत्वपूर्ण कविता है। इसकी **अंतर्वस्तु** में जीने की विकलता का जो अर्थ मौजूद है वह कविता की **संरचना** में भी सघनतर होता जाता है। वह जो जीने के लिए तड़प रही है, संघर्ष कर रही है, अपनी सम्पूर्णता में किस तरह आकार पाती है यह महत्वपूर्ण है। जीवन के लिए संघर्ष करती हुई वह स्वयं जीवन हो जाती है—'पर अभी सबको उम्मीद थी / कि कहीं कुछ है / जो बचा रह गया है नष्ट होने से / जो बचा रह जाता है / लोग उसी को कहते हैं जीवन !' कविता के अंत में **'मृत्यु से खेलते / और पंजा लड़ाते हुए'**—अत्यन्त सार्थक संकेत है। 'खेलने' पर भी उतना ही बल है जितना **'पंजा लड़ाने'** पर !

मृत्यु की कुछ अन्य कविताएँ इस संग्रह में हैं। **'न होने की गंध'** एक मार्मिक तथ्य, एक मार्मिक अनुभव को सामने लाती है। नदी की निरन्तरता है, नदी के **ऋण** का अहसास है और किसी एक के न होने की गंध है। **'शुद्ध'** शब्द कैसे खालीपन या रिक्तता का व्यंजक हो जाता है -- यह संदर्भ के अनुसार देख सकते हैं—'हम बारी-बारी / आग के पास गये और लोहे के के पास गए / हमने बारी-बारी झुककर / दोनों को छुआ / यों हम हो गए **'शुद्ध'** / यो हम लौट आये / जीवितों की लम्बी उदास बिरादरी में।' **स्त्री** केदार के लिए केवल काव्यात्मक रूढ़ि नहीं है, जीवित सच्चाई है। जीवन में, जीवन के संघर्ष में उसकी उपस्थिति अनिवार्य है। उपलों को बचाने की कोशिश भी स्त्री के संघर्ष का एक सम्यक बिम्ब बनाती है। 'सहसा बौछारों की ओट में / दिख जाती है एक **स्त्री / उपले बटोरती हुई / बूंदों की मार से / जल्दी-जल्दी उपलों को बचाने की कोशिश में / भीगती है** वह **/ बचाती है उपले / कहीं से आती है / उपलों से छनती हुई / फूल की खुशबू।'** अगर किसी को एतराज़ हो कि उपलों से फूल की ख़ुशबू क्यों छन कर आती है, तो उसे कविता पढ़ने का अभ्यास कुछ दिनों के लिए छोड़ देना चाहिए। केदार की कविताएँ सबसे पहले यही प्रभाव छोड़ती हैं कि ज़िन्दगी के संघर्ष या जद्दोजेहद में ज़िन्दगी की सुन्दरता, ज़िन्दगी की चाह, ज़िन्दगी का आकर्षण भी शामिल है।

'बोझे', 'दाने', **'पशु मेला'** केदार की कुछ और कविताएँ हैं जो एक क्रम में पढ़ी जा सकती हैं। **'बोझे'** कविता में श्रम के प्रति काव्यात्मक सम्मान का ही अर्थ नहीं है जहाँ 'मेमने / अपनी सारी सुन्दरता के साथ / चरने में व्यस्त है' और 'वे बाँध रहे हैं बोझे' ! **व्यंग्य** इस तटस्थ मुद्रा पर है, एक **प्रश्ननिहित व्यंग्य**—

मेमने चर रहे हैं
और वे बाँध रहे हैं बोझे
पर मैं
मैं यहाँ क्यों हूँ !

'मैं' को ही जैसे कठघरे में रख दिया गया हो ! उत्पादन के बाद उत्पाद्य वस्तु पर जिन अज्ञात शक्तियों या व्यवस्थाओं का नियंत्रण हो जाता है उसके विरुद्ध एक तीखी पर संक्षिप्त प्रतिक्रिया है -- **'दाने'**। दाने मण्डी जाने से इनकार करते हैं। वे जानते हैं कि गए, तो लौटकर उनके पास वापस नहीं आयेंगे जिन्होंने उन्हें संभव किया और आयेंगे भी, तो पहचाने नहीं जायेंगे। पूँजीवादी अर्थव्यवस्था और बाजार के नियमों पर जिनका नियंत्रण है उन्हें ही कविता सीधे लक्ष्य करना चाहती है। केदार की सीधी कविताएँ भी संकेत का, अधिक अर्थगर्भी संकेत का रास्ता नहीं छोड़तीं। 'होंठ' 'आना' 'भूकम्प जैसी एक रात' अलग-अलग रंगों की मार्मिक कविताएँ हैं जो कवि के अनुभव विस्तार और रूप वैविध्य का पता देती हैं।

मनुष्य के संघर्ष के कभी हल्के और कभी तीखे चित्र केदार की कविता में आते हैं। कहीं रात में सिला जा रहा है, कहीं ईंट पर ईंट रखी जा रही है, लोहे पर लोहा, इंद्रधनुष पर इंद्र-धनुष ! केदार दुख की चमक का अहसास भी कराते हैं। संघर्ष के प्रति **कृत्रिम सहानुभूति** से ज़्यादा मूल्यवान है—उसमें **सौन्दर्य** का आभास, मानवीय **गरिमा** की प्रतीति। केदार की रचनात्मक कल्पना भी अपने ढंग का हस्तक्षेप है। केदार का **इंन्द्रिय बोध** भी **विचार** है—

और मैं
चूँकि ज्यादातर चुप रहता हूँ
इसलिए सिर्फ़ मेरा हाथ बोलता है
जब वह होता है
किसी दूसरे हाथ में

केदार पहले भी रचना-प्रक्रिया पर कविताएँ लिखते रहे हैं। **'अभी बिल्कुल अभी' 'ज़मीन पक रही है'** '**यहाँ से देखो**' और अब **'अकाल में सारस'**—इनसे रचना-प्रक्रिया विषयक कविताएँ चुनी जाएँ तो उनकी संख्या एक दर्जन के आसपास होगी। कभी उन पर सम्मिलित विचार कविता की सौन्दर्यात्मक समस्याओं के अध्ययन की दृष्टि से उपयोगी हो सकता है। इस संग्रह के अंत की तीन कविताएँ—**'ठण्ड से नहीं मरते शब्द' 'उम्मीद नहीं छोड़तीं कविताएँ'** और / **'महान'** कविता की तुलना में वे कविताएँ महत्वपूर्ण हैं जो 'उम्मीद नहीं छोड़तीं।' यह मुग्ध क़िस्म का सरल आशावाद नहीं है। यहाँ वही **'जीवनोल्लास'** बहुअर्थव्यंजक अभिप्राय है।

पर मौसम
चाहे जितना ख़राब हो
उम्मीद नहीं छोड़तीं कविताएँ

केदार जब पृथ्वी के ललाट पर मुकुट की तरह उड़े जा रहे पक्षियों को दूर से देखते हैं और वहीं से चिल्लाकर कहते हैं—बधाई हो, पृथ्वी बधाई हो-तो शोषण और संघर्ष और दुःख का अन्यथाकरण नहीं कर रहे होते हैं, न उन पर रहस्य का पर्दा डाल रहे होते हैं। वे अपनी ख़ास हिकमत से मनुष्य की **अदम्य जिजीविषा** को समर्थन और स्वीकृति दे रहे होते हैं। **यथार्थ** और **प्रकृति** का **समक्षीकरण** (जक्स्टापोजिशन)कई बार इसी **जिजीविषा** को बल देने के लिए है। एक औसत भारतीय किसान के लिए प्रकृति असीम पूँजी होती है। वह कठिनतम स्थितियों में प्रकृति के सहारे जी लेता है। दिल्ली में तमाम वर्ष बिता लेने पर भी केदार के भीतर का यह किसान अपनी समूची रसवत्ता और कड़ियल संवेदना के साथ मौजूद है। एक तार्किक क्रम में चीज़ों को देखते हुए औसत पाठक चौंकता है कि **'हाहाकार'** के बाद **'खुश हूँ'** की क्या संगति हो सकती है ! उसे लग सकता है कि इस जीवन की वास्तविक लड़ाई की कुछ खबरें दबायी जा रही हैं, पर विचारणीय है कि संघर्ष के जटिल इतिहास में क्या वह 'लड़ाई' महत्व नहीं रखती जहाँ सतह पर कुछ घटित होता ही नहीं। विकास के तमाम दावों के बाद भी हमारे देश के ऐसे कोने-अंतरे और सीमान्त हैं जहाँ दुनिया से लगभग कट जाने-जैसी स्थिर शांति है। संघर्ष वहाँ भी है, जिसकी न ख़बर बनती है न कविता। केदार की कविता में उस गुमनाम संघर्ष की ख़बर भी है। यों अधिक सजग पाठक पहली बार ही लक्ष्य कर लेंगे कि 'हाहाकार' के बाद 'खुश हूँ' के बीच का **विरोध साभिप्राय** है। 'खुश होना' हाहाकार का सामना करने का एक सचेत ढंग है—ढंग से अधिक एक सम्यक् जीवन अभिप्राय। **'खुश हूँ'** यह हाहाकार की **अस्वीकृति नहीं, जीवट** का साक्ष्य है। **अकाल में सारस'** में अकाल कई अर्थों में घटित होता है—एक बार जब पैरों के नीचे से **सड़क**

गायब हो जाती है, दूसरी बार, जब देखते-देखते **नदी** ग़ायब हो जाती है और तीसरी बार, जब वह लोगों की तलाश में निकलता है तो मालूम होता है—**'लोगों को तो लोग / जानते तक नहीं थे।'** यह अस्तित्वाद के ढर्रे का अजनबीपन नहीं है, एक समय की क्रूरता का सामना करते लोगों **का परिचय से भरा हुआ अजनबीपन है।** यह अकाल नहीं, **एक और अकाल है** जिसकी अर्थध्वनि भिन्न प्रकृति की है।

समय के त्रासद अनुभवों के बावजूद केदार की कविता का मुख्य स्वर यदि **जीवन की स्वीकृति' 'जीवन-आस्था'** या **'जीवनोल्लास'** का है तो उसके **बहुअर्थव्यंजक चरित्र** को स्पष्ट रूप से रेखांकित करने की जरूरत है। छंद में लिखी गयी कुछ कविताएँ विशेष रूप से जीवन की स्वीकृति के इस विशेष अर्थ को समझने में सहायक हो सकती हैं। 'अकाल में सारस' तक आते-आते केदार की कविता का संसार और व्यापक हुआ है और उसी नियम से उनकी कविता की धार भी तेज़ हुई है। केदार उस परम्परा से क्या रिश्ता बनाते हैं जिसमें **तुलसीदास** भी आते हैं और **निराला** भी, 'अकाल में सारस' की कविताएँ इस विशेष संदर्भ से भी परिचित कराती हैं। **'रक्त में खिला हुआ कमल'** एक छोटी, अपने आप में बहुत अर्थपूर्ण कविता है जिसे लिखने वाले कवि को अपनी ज़मीन के बारे में अलग से स्पष्टीकरण नहीं देना पड़ता—-

मेरी हड्डियाँ
मेरी देह में छिपी बिजलियाँ हैं
मेरी देह
मेरे रक्त में खिला हुआ कमल

क्या आप विश्वास करेंगे
यह एक दिन अचानक
मुझे पता चला
जब मैं तुलसीदास को पढ़ रहा था

मृत्यु के चित्रों के बावजूद केदार की कविता में **मृत्यु** का जो **निरन्तर प्रत्याख्यान** है वह इसीलिए कि मृत्यु प्रचलित अर्थ में भारतीय अवधारणा है ही नहीं—वह भी जीवन ही है, जीवन के लिए संघर्ष, जीवन का ही नया आरंभ।

केदारनाथ सिंह की काव्ययात्रा से परिचित पाठक देख सकेंगे कि हर बार, हर नये संग्रह में वे एक नयी ज़मीन पर होते हैं, एक दूसरी नयी ज़मीन के लिए बेचैन, 'अभी बिल्कुल अभी' नामक पहले संग्रह में कविता के बारे में जो धारणा उनके यहाँ बनी थी, वह टूटते-टूटते भी कहीं बनी रहती है। जैसे अर्थ की जटिलता पहले भी उनकी ख़ास हिकमत थी—कविता में 'आश्चर्यजनक' और 'अभूतपूर्व' को साधने की ! वह अब भी केदार के लिए आकर्षण का विषय है पर अब **'सहज'** और **साधारण'** को कविता में संभव या स्वायत्त करने के लिए। **बिम्ब** पहले **अलंकरण** थे, अब **यथार्थ**-ज्ञान को तीव्रतर बनाने के अर्थपूर्ण साधन। **भाषा** से जितना काम केदार ने लिया है, उनके किसी दूसरे समकालीन कवि ने नहीं लिया। केदार अपने समय के प्रति, समय के विचार कर्म और राजनीति के प्रति भी, अत्यन्त संवेदनशील कवि हैं पर 'तात्कालिक' से कविता के लिए चतुर सनसनी और उत्तेजना जुटाना उनकी रुचि का विषय या क्षेत्र नहीं। **यथार्थ** से भी हमेशा वे एक प्रकार का **द्वन्द्वमूलक सम्बन्ध** बनाते आये हैं। यथार्थ में गहरे धँसने की कोशिश और सतही रूप का अतिक्रमण · यह द्वन्द्व चेतना उनकी काव्य प्रकृति के निर्धारण में

बड़ी भूमिका निभाती है। केदार की कविता बने-बनाये काव्यशास्त्र को निस्संदेह उलझन में डालने वाली है। सब मिलाकर नयी कविता वाले दौर से अब तक की कविता के इतिहास में केदार जो गहरा असर पैदा कर पाये हैं, वह उनकी कविता की बड़ी ऊर्जा और क्षमता का प्रमाण है। जैसा स्फूर्ति उत्तेजक प्रभाव केदार को पढ़ते हुए पाठक के मन पर बनता है वह एक अलग ढँग की चीज़ है। केदार की कविता जहाँ विचार और संवेदना की अनोखी घुलावट की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है वहीं वह अपने समय के प्रति एक सीधा पर अर्थभरा सम्बोधन है। जनपदीय रंग में रची बसी भाषा की ऐन्द्रिकता ही नहीं विचार सम्पन्नता भी ध्यान आकृष्ट करती है।

'अकाल में सारस' पिछले दस वर्षों में प्रकाशित संग्रहों के बीच अपने रंग का अत्यन्त महत्वपूर्ण संग्रह है जिसमें **जीवन** का वृहत्तर सम्पर्क **वस्तु** और **रूप** की अद्भुत **विविधता** के भीतर लक्ष्य किया जा सकता है। केदार उन कवियों में हैं जिनके लिए कविता केवल हुनर या बौद्धिक हिकमत नहीं है। वह सबसे पहले और अंत मैं भी व्यापक **जीवन** और उसकी **संभावनाओं** से **मार्मिक साक्षात्** है। यहाँ ध्यान दिलाना ज़रूरी जान पड़ता है कि छंद में लिखी गयी इस संकलन की कविताएँ लय के आकर्षण से ही नहीं, अर्थ के आकर्षण से भी महत्वपूर्ण हैं। निराला ने गीत के ढाँचे में जितने प्रयोग किये उतने शायद किसी ने नहीं ! पर महत्त्व उनका भी यही है कि वे लय की विभिन्नताओं में अर्थ की नयी-से-नयी संभावना को रूप या आकार देते हैं। **छंद की वापसी** आज कविता में होनी है तो नये ढँग से **यथार्थ** और **जीवन की जटिलताओं** को पहचानकर। 'छोटे शहर की एक दोपहर' छंद या गीत के ढाँचे में एक समय के कठिन अहसास का अनुभव-प्रत्यक्ष है—(समय अपने समूचे निहितार्थों के साथ !)—

हज़ारों घर, हज़ारों-चेहरों भरा सुनसान—
बोलता है, बोलती है जिस तरह चट्टान

सलाखों से छन रही है दोपहर की धूप
धूप मैं रक्खा हुआ है एक काला सूप

तमतमाये हुए चेहरे, खुले खाली हाथ
देख लो वे जा रहे हैं उठे जर्जर साथ

पूछता है एक चेहरा दूसरे से मौन
बचा हो साबुत—ऐसा कहाँ है वह—कौन ?

केदारनाथ सिंह की नई कविताओं का यह संग्रह सच्चे अर्थों में आज की कविता को नया सार्थक मोड़ दे सकता है। वह कवि के **वृहत्तर जीवन सम्पर्क** और **संघर्ष** का साक्ष्य तो है ही, कवि की **विकसित संवेदना** और **गहरे काव्य-विवेक** का सूचक भी है। यहाँ शब्द और अर्थ का सम्बन्ध **निष्क्रिय तारतम्य** का निर्वाह करने वाला नहीं **सार्थक तनावपूर्ण** है जो यथार्थ के प्रति अधिक गहरे स्तर पर उत्सुक या जागरूक बनाता है। भाषा में निहित **ऐन्द्रिकता** यहाँ चीज़ों को और गहरे देखने की प्रेरणा देती है। 'मैं आँखों से सोचता हूँ/कानों से देख लेता हूँ'—यह नया इन्द्रियबोध उलटबाँसी नहीं है, जीवन के अनुभवों को अधिक तीव्रता से पकड़ने और व्यक्त करने की प्रतिज्ञा है। 'वस्तु में **छिपे जीवन-मर्म** को भेद कर देखने की ऐसी अनोखी हिकमत' **बड़े काव्यात्मक साहस के बग़ैर संभव नहीं।**

रचनाकारों से अनुरोध

१. 'समकालीन भारतीय साहित्य' में छपने के लिए भेजी जाने वाली सामग्री सरल एवं सुबोध भाषा में होनी चाहिए।

२. अनुवाद के साथ मूल लेखक की अनुमति एवं पूर्ण परिचय भेजना आवश्यक है।

३. सामग्री कागज़ के एक ओर हाशिया छोड़कर, एक ही ओर लिखी हो। अनुवाद टाइप करा कर भेजने से सुविधा होगी।

४. पत्रिका त्रैमासिक होने के कारण स्वीकृत रचनाएँ प्रकाशित होने में थोड़ा समय लगता है किन्तु निर्णय की सूचना यथाशीघ्र भेज दी जाती है।

५. समीक्षा के लिए पुस्तकों का चयन हम स्वयं करते हैं। कृपया अपने-आप भेजने का कष्ट न करें।

साहित्य अकादेमी
का
एक और महत्त्वपूर्ण प्रकाशन

रामचन्द्र शुक्ल संचयन

"आचार्य रामचन्द्र शुक्ल जैसा गम्भीर एवं स्वतंत्र समालोचक हिन्दी साहित्य में तो क्या अन्य भारतीय भाषाओं में भी दूसरा न हुआ।" पं. हजारीप्रसाद द्विवेदी के इस कथन के स्मरण से गर्व की और साथ ही, आत्मविश्वास की भी अनुभूति होती है। लेकिन सवाल यह है कि हमने अपने इस महान समालोचक की गम्भीरता और स्वतंत्रता को कितना समझा है।

हिन्दी के महान् साहित्य इतिहास लेखक, विश्रुत निबंधकार और श्रेष्ठ समालोचक के रूप में 'हिन्दी साहित्य का इतिहास', 'चिन्तामणि' (दो भागों में) और 'रसमीमांसा' जैसे ग्रंथ उनके पाण्डित्यपूर्ण चिन्तन, मौलिक विवेचन और गहन अनुशीलन के ऐतिहासिक मानदण्ड हैं। महाकवि तुलसीदास, सूरदास और जायसी पर लिखी गयीं विस्तृत समालोचनाओं तथा ग्रंथ भूमिकाओं द्वारा जहाँ उनकी मौलिक, तर्कपूर्ण और अकाट्य स्थापनाएँ प्रकाश में आयीं—वहीं हिन्दी समालोचना की दृष्टि व्यवस्थित और विकसित हो पायी।

प्रस्तुत पुस्तक आचार्य शुक्ल के आलोचनात्मक निबंधों का विशिष्ट संकलन इसलिए बन गयी है कि डॉ. नामवर सिंह ने इनका चयन किया है और अपनी विद्वतापूर्ण भूमिका से एक दृष्टि दी है।

चालीस रुपये

प्रो० इन्द्रनाथ चौधुरी, सचिव, द्वारा साहित्य अकादेमी के लिए प्रकाशित तथा रूपाभ प्रिंटर्स, ४/११५, विश्वासनगर, शाहदरा, दिल्ली ११००३२ में मुद्रित / सम्पादक : शानी